आनन्द-निकेतन

[सुखी गृह और विवाहित जीवन की कुञ्जी]

श्री रामनाथ 'सुमन'

: १ :

गृह-जीवन का सौन्दर्य

आज जब संसार सभ्यता के बोझ से कराह रहा है और इस कोलाहल और गति में व्यक्ति भूला और खोया-सा, असंतुष्ट और अतृप्त होकर भटक रहा है तब बड़ी-बड़ी सफलताओं, और उससे भी अधिक शेखियों, के इस युग में ये घरेलू पचड़े मैंने क्या शुरू किये ? आज का युवक ऐसी बातों मे कोई दिलचस्पी लेना नहीं चाहता। वह तो कल्पना की दुनिया में महल बनाता फिरता है और जब वे झूठे महल आँखों से ओझल हो जाते हैं तब वह लाल आँखो से समाज की ओर देखता है ; तब वह क्राति की बाते करता है, धर्म को अफीम बतलाता है, विवाह को वेश्यावृत्ति कहता है और कुटुम्ब को पूंजीवाद एवं स्वार्थ का मूल कह कर दंभ और अहंकार से अपने साथियों की ओर देखता है।

कल्पना के महल

पर इन सब बातों के होते हुए भी, संघर्ष की इस दुनिया में गृह ही वह स्थान है जहाँ मनुष्य, अपनी दुःख की घड़ियों मे, आश्वासन प्राप्त करता है। जहाँ उसकी असफलताऍ धिक्कार और उपेक्षा की जगह स्नेह और सहानुभूति की पात्री है। हमारे तड़पते, अतृप्त, खोये और घायल हृदय यहाँ प्रेम की अंगुलियों से सहलाये जाते है और यहाँ हमारा उत्ताप शीतलता में धुल जाता है। जीवन की लम्बी यात्रा में, जहाँ मीलों तक चटियल मैदान है, और जहाँ कर्म की धूप असह्य-सी लगती है, थके प्यासे यात्री के लिए गृह मरुभूमि मे मिलनेवाली हरियाली एवं जलस्रोत के समान है। इस चलने, चलने और चलने वाले जीवन मे गृह हमारे विश्राम के स्थान हैं, जहॉ से जीवन का यात्री अपनी अगली मंजिल के लिए शक्ति एवं स्फूर्ति ग्रहण करता है। यह हमारी शक्ति का

जीवन का विश्रामस्थल

उत्स है, हमारी कल्पना की निर्झरिणी है; हमारे साहस का प्रतीक है। यह वह बोझ है जो अन्य बोझों को हलका करता है और जीवन की डगर पर हमारे पाँव फिसलने नहीं देता।

आज हमारा गृह-जीवन बाढ़ से घिरे हुए ग्राम की भाँति खतरों से डावाँडोल है। समाज और देश के सुधार की लम्बी-चौड़ी बातों के बीच, सब उसे भूले हुए है। कोई सुधारक ऐसा नहीं है जो उस पर अपने वाग्बाणों की वर्षा करने का अभ्यस्त नहीं, कोई राजनीतिज्ञ उसकी ओर सहानुभूति की नज़र डालने को तैयार नहीं है। आधुनिकता के वातावरण में पला युवक उसे हेय समझ कर उसकी ओर यों देखता है जैसे विष का प्याला हो। जिस शिक्षण एवं जिस सभ्यता का नशा उसके खून मे बचपन से 'इंजेक्ट' किया जाता रहा है, वह इस घरेलू वातावरण मे चढ़ नही सकता, वे स्वप्निल कल्पनाएँ, जिनको जानने और सुनने का आधुनिक शिक्षित युवक आदी हो गया है, गृह-जीवन के बलिदान और कर्तव्य के प्रकाश में नष्ट हो जाती हैं और

गुदगुदानेवाली तस्वीरें

वासना एवं भोगमय प्रेम की दिल गुनगुदानेवाली तस्वीरें यहाँ धुँधली पड़ जाती है। इसलिए युरोपीय शिक्षण के साथ युरोपीय सभ्यता के उन्मत्त करने वाले रग, जिसमें लूट है, भोग है, विलास है, मे जो आधुनिक युवक रॅंग गया है, उसके लिए स्वभावतः हमारे गृह, जिनकी रंग-बिरंगी दीवारो की नींव में उत्सर्ग और कर्तव्य की कंकरियाँ डाली गई है, कोई आकर्षण देने में असमर्थ हैं; यहाँ तो युरोप के बगीचों मे लहलहानेवाला 'वायलेट' नहीं है; यहाँ तो सीधी-सादी छोटी, अपने ही अन्दर अपने सुगन्ध को छिपाये हुए, नवोढ़ा की लज्जा में लीन हो रही-सी, जुही की कली है। यहाँ चमक नही है और रग नहीं है; यहाँ सत्व है, गुण है, दिल है। इस गृह-जीवन के बादाम पर कर्तव्य का कड़ा छिलका पड़ा हुआ है। श्रम कीजिए और उससे जीवन एवं स्वास्थ्य को पुष्ट कीजिए, पर उमर खैयाम की मधुबालाओं का वह

प्याला, जिस पर नशा तैर रहा है और जिसके चारों ओर स्वप्नों की एक दुनिया हमारी स्त्रैण कल्पना ने रच दी है, यहाँ न मिलेगा। और हमारे आधुनिकता के रंग में डूबे हुए क्रांतिवादी सुधारकों के फेफड़ों की ताकत एवं गले के करिश्मे देखकर भी हम इस अभाव पर लज्जित नहीं है। हम जानते है, यह नशा चन्दरोजा है और सत्य के प्रकाश मे यों उड़ जायगा जैसे प्रबल प्रभंजन से बदलों के झुंड

नशा और चैतन्य बिखर जाते है। हम यह भी जानते है कि मधुबालाएँ वह चीज देती है जिससे नशा हो और प्यास

बढ़े। यह क्षणिक मनोविनोद हो सकता है पर शुद्ध निर्मल जल के बिना,प्याले पर प्याला माँगने वाला उमर खैयाम भी जी नहीं सकतो। उसकी जिन्दगी प्याले को तोड़कर भी जल के लिए तड़पती है और तड़पेगी। उस क्षण मधुबालाएँ न होंगी, अपने ही मे कल-कल करता हुआ बहने वाला प्यार का झरना होगा। एक बेहोश करती है, दूसरा होश लाता है।

हॉ, तो मैं कह यह रहा था कि आज जिन्दगी के साथ हम जो दिल्लगी कर रहे हैं; यदि हमे मर्द की तरह जीना हो तो ज्यादा दिन न चलेगी। यह गृह–जीवन के चारों ओर जो बवंडर

यह दिल्लगी छोडो! उठ खड़ा हुआ है और यह जो उनके बारे मे वक्ताओं, कूटनीतिज्ञों एवं हर तरह के कमजोरनिगाह आदमियों की पलटन हमारे आगे-पीछे दाये-बाये हममे जो कुछ तुच्छ है, खूंखार है और प्रतिहिंसक है उसे जगाती हुई चल रही है इस पर विजय पाकर उठना होगा। गृह–जीवन के सम्बन्ध मे जो गलत दृष्टिकोण, घने कोहरे के समान, हमारे चारो ओर फैल रहा है, उसको ठीक करना होगा।

कहा यह जाता है कि गृह आधुनिक समाज मे पाई जाने वाली बुराइयों की जड़ है। इसने इन्सान मे खुदगर्जी पैदा की; इसने संग्रह के भाव को बढ़ाया, इसके कारण ममत्व एवं विराग का जन्म हुआ, इसके

कारण धन-संग्रह की होड़ समाज में पैदा हुई और पूंजीवाद की सारी इमारत इसी पर खड़ी है। मतलब कि जितनी बुराइयाँ हैं सब इस कौटुम्बिक प्रथा से ही उत्पन्न हुई हैं। इसकी जड़ उखाड़ दो, संसार स्वर्ग हो जायगा। पर ऐ कहने वाले! जरा ठहर। हमारा अनुभव तो यह है कि तेरे दिल में स्वर्ग हो तो कुटुम्ब तुझे अमृत के स्रोत जैसे दिखेंगे। यह तो सवाल देखने का है और देखने-देखने मे अन्तर हो सकता है। जहाँ इसमे तू खुदगर्जी देखता है, मै इसमे त्याग और तपस्या का एक श्रेष्ठ क्षेत्र फैला हुआ देखता हूँ। मुझे इसमे आत्म-निग्रह की पर्याप्त समभावनाएँ दिखाई पड़ती है। निजी स्वार्थ और सुख की भावना लेकर कुटुम्ब और गृह-जीवन कभी सफल नहीं हो सके और न हो सकते है। यहाँ तो कदम-कदम पर दूसरो के सुख और दूसरो की सुविधा को देखकर चलना पड़ता है। यहाँ कोई वस्तु सर्वथा निजी नहीं है। यहाँ स्वार्थ पर अंकुश है। और सच पूछिए तो आधुनिक युवक चाहे जितने क्रातिमूलक शब्दों एवं वाक्यो का प्रयोग करे और कौटुम्बिक स्वार्थ पर हमे चाहें जितने व्याख्यान दे, वह गृह-जीवन के नियन्त्रण और उत्सर्ग मे अपने को खपा देने को तैयार नहीं होता है। यहाँ उसके भोग पर अंकुश है और उसके उड़ते हुए दिल पर बंदिश है। यहाँ वह स्वच्छन्द नहीं है। वह जानता है, यह गृह-जीवन कैसा कठोर कर्तव्यों की शृङ्खला का जीवन है।

गृहजीवन पर आक्षेप

—और मै मुख्यतः यहाँ हिन्दू गृह, भारतीय गृह की बात कर रहा हूँ। हमारी समाज-रचना मे गृह महत्वपूर्ण घटक है। इन्हीं की नींव पर हमारे समाज का विशाल भवन खड़ा है। यहाँ हमें आत्म-नियंत्रण की, जीवन के श्रेष्ठ उपादानों की प्रारंभिक शिक्षा मिलती है, यहाँ पत्नी केवल पत्नी नहीं है और न उसका कर्तव्य केवल पति तक ही सीमित है। वह माता है, वह बहिन है, वह पुत्र-वधू है। उसे सास-

हिन्दू समाज का प्रतीक

श्वसुर के सुख और सुविधा का अपने पति की सुख-सुविधा से कुछ कम ख्याल नही रखना पड़ना। उसे अपने देवरों को खिलाकर तब अपना भाग पाने का अधिकार है। यहाँ पति की कमाई पर केवल उसी का अधिकार नही; सारे कुटुम्ब का अधिकार है। यहाँ जो कुछ है वह सबके लिए है। एक के साथ दूसरे का सुख-दुःख और उत्तरदायित्व लगा हुआ है। यहाँ जीवन एक की नहीं है। एक छोटा-सा प्रजातंत्र, सबके कर्तव्यो एवं श्रेष्ठ भावा को जगाता और विकसित करता हुआ, फूलता-फलता है। यहाँ मनुष्य समाज-सेवा का दृष्टिकोण विकसित कर सकता है, स्वार्थ की जगह श्रेष्ठतर स्वार्थ का भाव अपने अन्दर पैदा कर सकता है और अपने ही सुख एव भोग तक उसके कर्तव्य का अत नहीं हो जाता, यह भी सीख सकता है। इसमे समाज के सब प्रकार के तत्वो (Elements) का सामञ्जस्य है। यहाँ उपदेष्टा एव पथ-प्रदर्शक है, यहाँ योद्धा है, रक्षक है, यहाँ कमानेवाला है, यहाँ सेवक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अथवा ज्ञानदाता, रक्षक, जीविका लाने वाला और सेवक सब, अपने छोटे रूप में प्रत्येक कुटुम्ब मे विद्यमान हैं। इसी प्रकार यहाँ मातृत्व का चिरतन त्याग है; पत्नीत्व का चिरसखित्व है, भगिनीत्व का अक्षय स्नेह है, पुत्रीत्व का सतत आत्मार्पण है, पुत्र की कर्तव्यनिष्ठा है; पिता का अव्यय वात्सल्य है, भाई की शुभाकाक्षा है, पति का अनुरक्त प्रेम है। यहाँ ब्रह्मचारी है, गृहस्थ है, वानप्रस्थी है और सन्यासी है। अपने सक्षिप्त और घनीभूत रूप में यहाँ हिन्दू समाज, अपनी वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था के चिरंतन तत्वो को लिए हुए, व्यक्त हो रहा है। ससार और समाज का यह एक प्रतिनिधि-चित्र है। इसमें वह सब कुछ है जो जीवन में होता है। इसमे दुःख है पर उस दुःख के बोझ को हलका करने वाला स्नेह एवं सहानुभूति का मृदुल स्पर्श भी है। इसमें त्याग है पर वह त्याग औसत मनुष्य की शक्ति के बाहर न हो जाय इसलिए उसको उपयुक्त (बैलेंस) करने वाला भोग भी है। यहाँ सुख है, दुःख है, भोग है, श्रम है,

विश्राम' है; परोपकार है, आत्म-विकास है।

—और इस गृह ने समाज को क्या नहीं दिया है? यह समाज-जीवन की 'नर्सरी' (पोषण या धात्री गृह) है। यहाँ का दूध पीकर समाज पुष्ट एवं विकसित होता है। इसने संसार को

इसकी देन !

योद्धा और कर्मठ पुरुष दिये हैं; इसने दुनिया को उन द्रष्टा एवं महान पुरुषों का दान दिया है जिनके कृत्यो के स्मरण से इतिहास के पन्ने पवित्र हुए है और जिनके जीवन सदियो से मानव-जाति को प्रकाश दे रहे है। इसने वे माताएँ दी है जिनकी गोद में दुनिया का इतिहास फला-फूला है। इसने वे बहिनें दी है जिनकी राखी एवं भ्रातृत्व की पुकार ने शत्रुओ एव विरोधियों के हृदय में स्वर्गीय स्नेह की दीप-शिखा जलाई है। इसने वे भाई दिये जिनको पाकर बहिनें धन्य हुई है। इसने वे पति दिये जिनकी बहादुरी एवं वीर गति के समाचार पाकर पत्नियो की छाती गौरव से भर गई है और वे चिता में बैठकर हँसते-हँसते और शृङ्गार करके मर सकी है। इसने हमारे इतिहास को बार-बार जाग्रत किया है, बार बार गौरवान्वित एवं ऊर्जस्वित किया है।

मै सदा से यह मानता आया हूँ और आज यूरोप की विचार-धाराओं एवं उनके परिणाम के अध्ययन के बाद मेरा यह विश्वास-अचल-सा हो गया है कि समाज के सौख्य एवं शील की उन्नति के लिए श्रेष्ठ, निष्कपट एवं उत्सर्गमय गृह-जीवन अनिवार्य है। इसे तोड़-कर और इसे नष्ट करके कोई सभ्यता पनप नहीं सकती और कोई समाज सुखी एवं तृप्त नहीं हो सकता। यह वह नींव है जिसपर समाज का ढाचा खड़ा है। इसको लेकर मनुष्य मे जो ममत्व है उसका संस्कार हुआ है। इसको पाकर मनुष्य मे जो त्याग है उसे बल मिला है। इसके द्वारा पुरुष का पौरुष ओजस्वी हुआ है और नारी इसे पाकर स्नेह से मृदुल एवं संसार के घोर कर्म और त्यागमय जीवन के कष्टों को सहन करने में समर्थ हुई है। यह समाज के नारी एव पुरुष, बाल,

वृद्ध एवं युवक, शक्तिमान और अशक्त, प्रत्येक वर्ग का आश्रय है और प्रत्येक के लिए सर्वोत्तम बीमा है। बच्चे को यहाँ विकास की जो सुविधाएँ मिल सकती है वे स सार के सर्वोत्तम बालगृहों मे अलभ्य है। यहाँ समष्टि में व्यक्ति है और व्यक्ति मे समष्टि है। यहाँ समाज को लेकर भी व्यक्ति अपने को भूला नहीं है और अपने को लेकर भी समाज सतत उसके (व्यक्ति के) सामने है।

फिर सबसे बड़ी बात, जिसकी ओर ऊपर जरा-सा संकेत ही मै कर पाया हूँ, यह है कि यह हमारी सभ्यता और स स्कृति का प्रश्न है।

सस्कृति का प्रश्न

आत्म-निरीक्षण, आत्म-स स्कार और आत्मानुभव के सिद्धान्त पर बनी हुई हमारी स स्कृति मे व्यक्ति समाज-यंत्र का एक पुरजा-मात्र नहीं है। उसका अपना स्वतत्र अस्तित्व है और वह स्वयं, अपने मे, परिपूर्ण है। इन स्वतत्र व्यक्तियों ने व्यापक स्वार्थों की रक्षा के लिए, मिलकर, समाज एवं उसकी व्यवस्था का निर्माण किया। यहाँ प्रत्येक अवस्था मे समाज का निर्माता एव मूल व्यक्ति है, व्यक्ति का मूल या निर्माता समाज नहीं। यहाँ व्यक्ति की अपनी चेतना है, अपना सत्ता है। व्यक्ति चेतन शक्ति है और समाज जड़ शक्ति है। पहला पुरुष एव दूसरा प्रकृति का प्रतिरूप है। इसलिए व्यक्ति का पूर्ण विकास हमारी स स्कृति का प्रधान उद्देश्य है। व्यक्ति की चेतना के इस विकास-कार्य मे समाज तो उपयुक्त वातावरण एवं अनूकूल परिस्थिति लाने के लिए निर्मित सहायक मात्र है। व्यक्ति के

व्यक्ति की सामाजिकता का प्रतीक

विकास मे गृह एव कुटुम्ब पहली पूर्ण इकाई ('यूनिट') है। कुटुम्ब व्यक्ति की चेतना का सामाजिक पक्ष है। व्यक्ति में आत्म-प्रसार की, आत्माभिव्यक्ति की केंद्रापसारी (Centrifugal) प्रवृत्ति है; कुटुम्ब उसी का परिणाम है। यह व्यक्ति और समाज का मिलन-स्थल है।

इसलिए यदि हमे अपनी सस्कृति की रक्षा करनी है तो हमे इस व्यक्ति की स्वतत्रता एवं श्रेष्ठता को भी रक्षा करनी पड़ेगी। हमे व्यक्ति

के अन्तःकरण का सत्व जाग्रत करना पड़ेगा और व्यक्ति के विकास के लिए गृह-जीवन एवं कुटुम्ब की उन सब अ क्रमणों से रक्षा करनी पड़ेगी जो आज भले-बुरे विविध नामों से हमारा अपना सर्वश्रेष्ठ जो कुछ है उसका विनाश कर रहे है। आज जब हम युरोप की मायाविनी सभ्यता के उन्मदस्पर्श से अचेत हो, उसकी धारा मे तिनके-सा बहे जा रहे हैं और जब उसने हमारा बल एवं पौरुष,पतनशील भावनाओं को ठोकर मारकर अचल-सा खड़ा रहने का साहस और आत्म-विश्वास हर लिया है तब हमको जागना होगा, सोचना होगा, उठना होगा और चेष्टा करनी होगी।

यह जो हम केवल ऊपर-ऊपर की चीज़ों को देखकर झट से हार मान लेने के आदी हो गये है और यह रूप-रग, ये आवरण, ये शोखियाँ जिनको लेकर हम अपने अन्तःसत्व, अपनी गुण-गरिमा और अपने सौन्दर्य को बेचने को तैयार है, इन्हें भूलना होगा। कष्ट हो तो भी भूलना होगा। आत्म-निग्रह के बिना आज तक कोई महान् कार्य नहीं हुआ। इसके बिना समाज के सस्कार एवं सुधार की आशा करना स्वप्न-मात्र है; इसके बिना जीवन में स्फूर्ति नहीं; सुख नहीं। यह जो जीवन है, आरंभ से अत तक फूलों का रास्ता नहीं है। इसमें तो बहाव में, प्रवाह में बहना नहीं है। यहाँ प्रवाह के तोड़ को काटकर ऊपर चढ़ना है।

तब जरा जीवन को सुस्थ कर लेने की आवश्यकता है और दिमाग़ को जरा कष्ट देना पड़ेगा। बाहरी गुलकारियों के इस युग में

क़लई की चीज़ो से बचो!

केवल देखकर ही भूलना नहीं होगा; जरा सोचना होगा। यहाँ निष्क्रिय एवं प्रतिरोधहीन बनकर बैठ जाने से काम न चलेगा। दुनिया का यह जो बाजार है इसमें आजकल क़लई की हुई चीजे बहुत हैं। इन्हें खरीदने के पहले सँभलो। इनकी चमक तुम्हें धोखा न दे। अपनी आँखो को इतनी कमजोर न होने दो कि वे चाँदी पर कलई को

तरजीह दें। आज जब दुनिया को विज्ञापन की कला नचा रही है और जब सबसे जोर से चिल्लाने वाला बाजार में अपनी चीज जल्द से जल्द

अपनी आँखों को इतनी कमजोर न होने दो कि वे चाँदी पर क़लई को तरजीह दें।

बेच लेता है तब इस प्रकार के युग में होश-हवास दुरुस्त करके चलने की जरूरत है। तब दिल को इतना तरल बनाने से काम न चलेगा। तब कलेजा फौलाद का करना होगा।

प्राचीन बनाम नवीन !

मैं यह नहीं कहता कि जो कुछ प्राचीन है वह अच्छा ही है। मै यह भी नहीं कहता कि सभ्यता के नाम पर, संस्कृति के नाम पर, धर्म और आचार के नाम पर दूसरों के अस्त्र बनो, गुमराह हो और न मै यह चाहता हूँ कि भावनाओं की आँधी मे तुम उड़ते फिरो। मै कहना यह चाहता हूँ कि जो कुछ प्राचीन है वह अनिवार्यतः असत् नहीं है और न जो कुछ नवीन है वह निश्चय ही उचित और सच्चा है। मैं कहता हूँ, युग और समय के नाम पर जो कुछ कहा जाता है और अप टू-डेट विचार-प्रवाह एव आधुनिकता के नाम पर जो कुछ हो रहा है, वह सब सच्चा ही नहीं है। मै कहता यह हूँ कि इस प्रलोभनों के बाजार मे,

निर्णय करने के पूर्व जरा आँखें बन्द करके अपने अन्तःकरण को जगा लो और उसकी वाणी, जिसे तुमने निरंतर की आत्म-वंचना से दबा रखा है, को ऊपर उठने दो; मन में गूँजने दो; जीभ पर आने दो। फिर तुम सोचो और निर्णय करो।

मै मानता हूँ, इस गृह-जीवन मे उन होटलों का वैभव नहीं है जहाँ परियाँ नाचती है और मधुशालाएँ मनोरंजन के लिए हर समय, प्रस्तुत हैं। मै यह भी मानता हूँ कि यहाँ दिल को जरा छेड़कर तमाशा देखने वालियाँ और फिर उस मचलते हुए दिल को लेकर अच्छा सौदा कर लेने वाली मोम की पुतलियाँ न मिलेगी। मै यह भी मान लेता हूँ कि यहाँ प्रेम की कुंजगलियाँ नहीं हैं, यहाँ सौन्दर्य पाउडर एवं पोमेड, लिपस्टिक एवं लवेंडर से आलोड़ित एवं आच्छन्न नहीं है। पर मै यह जानता हूँ कि यहाँ स्वास्थ्यकर भोजन, अत्यन्त स्वस्थ हृदय से शुभाकांक्षाओ के साथ, परोसा जाता है। यहाँ दिलों की दुनिया छिछली नहीं है, उसमे स्नेह का अथाह जल भरा हुआ है। यहाँ स्नेह के दीपक जलते हैं, जो अपने को देकर जल रहे है और जब तक स्नेह का दान समाप्त नही होता जलते रहेगे। यहाँ दिलो का सौदा नहीं है, शुद्ध आत्मा-र्पण है। यहाँ प्रेम नशा, एक उत्तेजक द्रव्य—'स्टिमुलेंट—नहीं है, यहाँ वह जीवन का पुष्टिकर खाद्य है और जीवन में ओतप्रोत है। यहाँ भावना की आँधियाँ नही है; विवेकोज्ज्वल स्नेह का शीतल, मंद, सुगध समीरण है। यहाँ वह प्रेमालाप नही जिसका जीवन की कठिनाई के एक झटके मे अन्त हो जाता है, यहाँ कर्तव्य से धुला हुआ उज्ज्वल स्नेह है जो सुख मे, दुःख मे, विलास मे, त्याग में सर्वत्र तुम्हारा साथी है। संभव है, तुम्हें ऐशोइशरत की, या दिल-बहलाव की उत्तेजक सामग्री न मिले जिसके लिए यह 'मेक-अप' मे पटु सभ्यता में पला हुआ तुम्हारा मन छटपटा रहा है पर तुम्हे दिल का वह धुआँ भी न मिलेगा जो तुम्हारे अनजाने धीरे धीरे उठता है और एक दिन सारे जीवन को अंधकार से भर देता है—ऐसे अंधकार से

विद्युत-दीप बनाम स्नेह-दीप

जहाँ प्रकाश की कोई रेखा नहीं, आशा की कोई किरण नहीं और जिसमे मृत्यु का विष है और नरक की ज्वाला है।

मै पूछता हूँ—तुम क्या चाहते हो?

तुम्हारा जीवन अशांत क्यों है ?

कहा जाता है, और मै मानता हूँ, कि आधुनिक सभ्यता ने अनेक नवीन सुविधाएँ हमारे जीवन में पैदा कर दी है। यातायात के द्रुत साधनों ने संसार को बहुत छोटा कर दिया है। यात्रा बहुत सुखद हो गई है। रेल में आप घर का सुख प्राप्त कर सकते है; जहाज पर टेनिस खेल सकते और सिनेमा देख सकते है, घर बैठे हुए दुनिया के समाचार सुन सकते हैं। प्रत्येक कार्य के लिए मशीन बन गई है। प्रेम की परीक्षा मशीन से होने लगी है। टेलिविजन ने मेघदूत को व्यर्थ बना दिया है। शहरों में बिजली की मोटरें दौड़ने लगी है और अत्यन्त सस्ता

भौतिक विज्ञान की सफलता

प्रेम की परीक्षा मशीन से होने लगी है। टेलिविज़न ने मेघदूत को व्यर्थ बना दिया है।

मनोविनोद, सिनेमा एव टाकी के रूप में, हमारे सामने है। विज्ञान ने शरीर-तत्वों की पूरी खोज कर ली है और कल चिकित्साशास्त्र जिन

बातों को असंभव कहता था, वे संभव हो गई हैं। बुढ़ापे मे यौवन की कलम लगने लगी है और बड़े गर्व के साथ विज्ञान ने दावा किया है कि वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य मृत्यु पर विजय पा लेगा और कामचलाऊ आदमी भी बनाये जा सकेंगे। मामूली काम करने वाले मशीन के आदमी तो बन भी गये हैं।

पर जहाँ नित्य नये-नये आविष्कार हो रहे हैं और विज्ञान ने प्रकृति पर विजय पाने की घोषणा की है और जहाँ आराम की सारी सुविधाएँ
हैं वहाँ यह मनुष्य इतना अशान्त क्यों है, ऐसा
फिर भी संतोष नहीं असन्तुष्ट क्यों है ? इतना प्यासा क्यो है ? उसके
अन्दर शान्ति क्यों नहीं, तृप्ति क्यो नहीं ? वह इतना
खोया-खोया कैसे है और उसका संतोष एव सुख बढ़ता क्यों नहीं है ? आधुनिक सभ्यता एवं विज्ञान के सामने यह सवाल एक चैलेंज है।

पाश्चात्य सभ्यता ने जीवन को उन्माद से भर दिया है। लोग एक नशे में, जल-धारा के तिनके की भाँति, बहे चले जा अपनी
शक्ति से नहीं, एक प्रबल धारा के वेग से। मनुष्य
यह मूर्च्छना ! मशीन बन गया है। उसने अपना आत्म-विश्वास,
अपना ईश्वरत्व खो दिया है और असहाय-सा, पर
अपनी शक्ति के दंभ का प्रदर्शन करते हुए, न जाने कहाँ जा रहा है। पाश्चात्य सभ्यता ने सबसे बड़ा अकल्याण—जिसे पाप कहने मे अत्युक्ति न होगी—जो किया है वह यह कि उसने मनुष्य को बिलकुल अचेत कर दिया है और उसकी असीम दैवी संभावनाओं (Possibilities) को हर लिया है। आज किसी से ब्रह्मचर्य की बाते करो, वह अविश्वास की हँसी से हँस देगा—"यह हम-जैसे साधारण मनुष्यों का काम नहीं।" जीवनहीन, मूर्च्छना से भरे हुए ये शब्द क्यों ? मनुष्य, जो जगत् का श्रेष्ठ प्राणी है, उसके मुख से ऐसे दीनता, दुर्बलता और विवशता के शब्द क्यों ?

बात यह है कि जीवन की बाहरी गुलकारियों में हम भूल गये;

आधुनिक सभ्यता के विष ने, हमारे अन्दर जो दिव्य ईश्वरीय देन थी, उसे गदा मारकर चकनाचूर कर दिया है। उसने

निष्प्राण मानव

हमें रेलगाड़ियाँ दीं, हवाई जहाज दिये। उसने घर में बैठे हुए पृथ्वी के उस छोर तक हमारी आवाज मिनटों —क्या सेकंडों—में पहुँचाई। उसने सुबह कलकत्ता तो शाम को हमे बगदाद में ले जाकर बैठाया। यह मायाविनी बिजली में चमकती है; वायुयानो पर हवा खाती है; मोटरों में दौड़ती है, तोपों मे दहाड़ती और अट्टहास करती है। इसकी मुस्कराहट पर हम भूल बैठे; इसके आलिंगन ने हमारा विवेक हर लिया। हम इसकी सुविधाओं का गान गाते है पर हम यह भूल गये कि हमारा जो कुछ परम तत्व था, हममें जो *जीवित* मनुष्य था, वह निष्प्राण हो गया है। इसने हमे विश्व के संग्रहालय में, संसार की प्रदर्शनी में, मोहक रूप मे सजे हुए मुरदे की भाँति, रख छोड़ा है! सुविधाएँ ज़रूर बढ़ीं पर सुख न बढ़ा, जीवन न बढ़ा, शान्ति न बढ़ी। उलटे हमारी चिंताएँ ज्यादा हो गई हैं; हमारे दुःख बढ़ गये हैं, मानसिक, नैतिक और शारीरिक शक्तियाँ बरफ की भाँति गल गई है। मानवता दुःख-दंभ, ईर्ष्या-द्वेष के अन्धकार मे भटक रही है।

समाचारपत्र है और पुस्तके है। ज्ञान के साधन सुलभ कर दिये गये हैं। भाषण और लेखनी की स्वतन्त्रता का अधिकार मनुष्य को मिल गया है। संसार लेखकों की ओजस्वी लेखनी और वक्ताओं के शक्तिमान भाषणों का स्वाद लेता है। तब भी असंतोष है और बेचैनी है। मनुष्य प्रत्येक गृह मे, अपनी अपूर्ण आकाक्षाओं एव अतृप्त दिल को लिये हुए, छटपटा रहा है। सुविधाओं के इस युग मे यह इतना दैन्य क्यों है? विज्ञान की विजय-यात्रा के इस जमाने मे यह अज्ञान क्यों है?

बात यह है कि हमने सुविधाएँ देखी पर प्रकाश ग्रहण न किया। दुनिया के बाजार जीवन की शृंगार-सामग्री से भरे हुए हैं पर हमको

जीवन को पुष्ट करने वाला खाद्य नहीं मिल रहा है; इस चमक-दमक मे उस चीज को हम भूल गये है जिससे मनुष्यता महत्वशाली है और जिसका प्रकाश अन्धा नहीं करता वरन् अंधकार में देखने की शक्ति उत्पन्न करता है। आज हमे अपने अन्तर की बिल्कुल सुध नहीं है। हमारा जीवन ऐसे बंधनों मे बँध गया है जो अन्तःकरण की आवाज़ को दबाते हैं और आत्मा को मूर्छित करते है। जीवन के प्रति सारा दृष्टिकोण अत्यंत स्थूल स्वार्थ-भावनाओं से भर गया है। फलतः समाज मे, गृह में, व्यक्ति मे कृत्रिमता भर गई है। इस कृत्रिमता ने मनुष्य के अंतःकरण को शून्य, शक्तिहीन और मृतप्राय कर दिया है और उसमें अवाछनीय वासनाओ के लिए होड़ पैदा कर दी है। फलतः मनुष्य श्रेय को भूलकर प्रेय के पीछे दौड़ रहा है। इसीलिए यह दुःख है और इसीलिए यह अतृप्ति है।

मूर्च्छित आत्मा

व्यक्ति मे (और व्यक्तियों द्वारा निर्मित समाज मे भी) दो प्रवृत्तियाँ सदा से रही है। एक वह जो उसमे प्राकृत भावों को जाग्रत करती है, मनुष्य मे जो पशुत्व है उसे लेकर चलती है। भोग, दूसरों को गिराना और उच्छृंखल काम इसी प्रवृत्ति के परिणाम है। दूसरी वह जो मनुष्य में देवत्व को जाग्रत करती है, उसमे जो कुछ श्रेष्ठ, जो कुछ साधारण पशु के अतिरिक्त है, जो चैतन्य उसमें दबा पड़ा है, उसे विकसित करती है, उसे बल देती है। मनुष्य का सारा जीवन इसी प्रेय से श्रेय की ओर अग्रसर होने के उद्देश्य से प्रदीप्त है। यह प्रेय से सतत युद्ध करता चलनेवाला और उसको दबाकर, अपने मे अपनी पूर्णता को खोज लेने वाला जो चेतन हममे है, उसे जगाकर, उसे बलवान बनाकर ही जीवन तृप्त हो सकता है।

दो प्रवृत्तियाँ

जगत् में ऐसा कौन है जो सुख नहीं चाहता ? पर ऐसे कितने है जिनको सुख मिलता है ? ऐसी बात नही कि सुख कोई अत्यन्त अलभ्य

वस्तु है। आनन्द मनुष्य के लिए अत्यंत स्वाभाविक है और जिसकी खोज में, जिसकी साधना में, जिसकी प्राप्ति के लिए सृष्टि के आरम्भ से मनुष्य लगा हुआ है; जिसके लिए उसने समाज की रचना की और सभ्यता का विकास किया और ज्ञान मे, अज्ञान मे प्रति क्षण जिस आनन्द की खोज और यात्रा जारी है उसे हम पाते क्यों नहीं है ? उसका आज इतना अभाव क्यों हो रहा है ? गृह-गृह मे कलह क्यों है ? स्त्रियाँ पुरुषों को दोष देती हैं और पुरुष स्त्रियो को ताना देते हैं। युवक बूढ़ो को कोसते है और बूढ़ों का कहना है कि वह सारी आफत युवकों की लाई हुई है। पुत्र का कहना है, ज़माना पिता की आज्ञा के विरुद्ध जाने को प्रेरित करता है। पिता का चार्ज है कि पुत्रों में गुरुजनो के प्रति अवज्ञा की भावना फैलती जा रही है। पति स्त्री को पाकर तृप्त नही है और अभाव का अनुभव करता है, स्त्री पति से असंतुष्ट है और स्नेह के स्थान पर अधिकार उसका लक्ष्य बन गया है। बहू सास की सेवा में अपनी गुलामी एवं दासता का अनुभव करती है और सास की शिकायत है कि आजकल की बहुएँ तो तस्वीरों की तरह केवल दर्शन की चीज़ रह गई हैं। मतलब यह कि समाज शरीर का प्रत्येक अंग बेचैन एवं अतृप्त है। सर्वत्र अशान्ति है, सर्वत्र असंतोष है, सर्वत्र पीड़ा है।

इसका पहला कारण यह है कि हमने सुख एवं आनन्द की पहचान में भूल की है। हम जीवन की बाहरी सुविधाओं को सुख समझ बैठे और उनके पीछे दौड़ने लगे। फलतः हमारी गलत धारणा अतृप्ति बढती गई। आज एक शिक्षित युवक से मिलिये। उससे पूछिए, उसकी आकाक्षाएं क्या है ? बहुत करके आप सुनेगे कि वह एक अच्छी नौकरी चाहता है, जिसमें अधिकार एव पद-गौरव का भाव हो और रुपया इतना मिले कि सुंदर बँगला खरीदा जा सके; मोटरें पास हों, बैंक में काफी धन जमा होता रहे और एक 'मिसेज' हों जो मित्रों का स्वागत कर सकें, टेबुल पर चहक सकें,

दिलों को जरा छेड़ दें, जो क्लबों की शोभा हों, पार्टियों का शृंगार हो; जिनको देखकर मित्रों के कलेजे में हूक पैदा हो और जिनकी चर्चा से मित्र-मंडलियाँ गूँजती रहें। इस आकांक्षा को लेकर आज का युवक जीवन की यात्रा आरंभ करता है। आधुनिक युग में धन का महत्व इतना बढ़ा दिया गया है कि जीवन के अन्तःसत्वों के स्थान पर उसे ही हमने अपना लक्ष्य बना लिया है। जीवन के इस संघर्ष में, इस आकांक्षा की कृत्रिमता एवं असंभव रूप के कारण, ९९ प्रतिशत तो यों ही गिर जाते हैं और तब एक ओर उनको असफलता निर्जीव कर देती है और दूसरी ओर दूसरों के वैभव के प्रति सहज विद्वेष का दंश उनके कलेजे में चुभ जाता है। यों जीवन सदा के लिए विषाक्त और भार-रूप हो जाता है। एक प्रतिशत जो सफल होते हैं, वे भी कुछ दिनों बाद खोये एवं भ्रमित हो पतित होते हैं। क्योंकि रूप एवं धन की तृष्णा में बँधा हुआ उनका मन जो कुछ है उसे लेकर तृप्त होने को तैयार नहीं। इस होड़ एवं दौड़ में 'मिसेज' वह नहीं पातीं जिसके बिना नारीत्व सदा अपूर्ण है और पति महोदय 'मिसेज' में ही अपनी कामना को केन्द्रित करके जीवन मार्ग में चलने को तैयार नहीं है। जहाँ रूप का सौदा करने वाली, दिल को जरा गुदगुदाने वाली, कलेजों को तोड़ने एवं आँखों में नशा पैदा करने वाली कामिनियों से घिरा हुआ चलने को जी करता हो तहाँ एक नारी को लेकर तृप्ति कैसे हो सकती है ? फल यह होता है कि दिलों में गाँठ पड़ती जाती है और अन्त में शगल और शौक की यह जिन्दगी बड़े करुण रूप में खतम होती है। दिल टूट जाते हैं और सब जानते हैं कि टूटा शीशा चाहे जिस मसाले से जोड़ा जाय, उसके टूटने का निशान स्थायी होता है।

मतलब यह है कि सुख को पहचानने में जो भूल आज हो रही है उससे सुख चाहने एवं सुख प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होने पर भी, हम अतृप्त हैं। हमने सुख को वहाँ समझ रखा है, जहाँ वह नहीं है। हम भूल गये हैं कि आनन्द बाह्य सुविधाओं में नहीं, अन्तःतृप्ति में है।

हम भूल गये है कि आनन्द का स्रोत प्रत्येक व्यक्ति के अतंर में ही है। भ्रमित कस्तूरी मृग की नाईं हम सुख की सुगंध में पागल, उसकी खोज में फिर रहे हैं जब आनन्द हमारे अन्दर ही भरा पड़ा है। हमने उसका मुख ढक रखा है। यदि उसके मुख पर से ढक्कन हटा दें तो स्रोत निर्बन्ध होकर बह निकले और आनन्द का फौआरा हमारे जीवन को ओत-प्रोत कर दे।

आनन्द का स्थान

अवश्य ही दुनिया में धन का भी महत्व है; उन चीजो का भी महत्व है जो वैभव के सामूहिक नाम से पुकारी जाती हैं। मै यह नहीं कहता कि तुम धन की उपेक्षा करो और न मैं यह कहता हूँ कि तुम दुनिया और उसकी गुलकारियों की ओर से आँखें बन्द कर लो। मै कहता केवल यह हूँ कि ये सब चीजें अपनी अपनी जगह पर ठीक हैं और इनका अपना उपयोग है। मै कहता यह हूँ कि इन चीजों को उतना ही महत्व देना चाहिये जितने की वे अधिकारिणी हैं। मैं यह नहीं कहता कि धन उपेक्षणीय है और उसका कोई उपयोग नही। मै कहता यह हूँ कि धन ही सुख नहीं है। केवल धन से ही सुखी होने की कल्पना करना मिथ्या है। आनन्द वह चीज नहीं जो चाँदी के टुकड़ों से खरीदा जा सके। आनन्द तो दिल की चीज है; वह बाजारो में नहीं बिकता, दिलों मे बसता है। वह आत्मानुभव की चीज है; वह अपने में-अपनी परिपूर्णता को देख लेने का परिणाम है।

कहा यह जायगा कि क्या दुनिया पागल है जो धन के पीछे दौड़ रही है; जो अधिकारों के लिए बेचैन है? मै जोर देकर कहना चाहता हूँ कि हाँ, दुनिया यदि धन के पीछे लगकर सुख प्राप्त करना चाहती है तो पागल है। हम देखते है और रोज देखते है कि संसार मे कितने ही साधारण स्थिति के आदमी बड़े सुखी हैं। उनके जीवन में अशांति नहीं; अतृप्ति नही, वितृष्णा नहीं। सब ठीक-ठीक चल रहा है। मामूली गृहस्थी है; पैसा अधिक नहीं है पर उनको धन का अभाव इतना नहीं

खलता कि सारे जीवन को विषमय कर दे। घर मे हॅसी का दरिया बहता रहता है और दिलो में प्रेम और तृप्ति भरी हुई है। यहाँ पत्नी यह अनुभव नहीं करती कि वह दासी है और काम करते-करते मरी जा रही है। यहाँ जीवन का मार्ग प्रेम के फूलो से मृदुल है और उसमें सर्वत्र आनन्द की सुगध है।

इसके विरुद्ध समाज मे ऐसे आदमियो की कमी नहीं है जिनके पास वैभव का सम्पूर्ण विलास थिरक रहा है, सब प्रकार की सुविधाएँ उनके लिए एकत्र है। मोटरें है, बगले है, नौकर हैं, भरा-पूरा कुटुम्ब है। अच्छा व्यापार या जमींदारी है। धन की कोई चिन्ता नहीं। कल क्या होगा इस चिंता के तीव्र दश का उनको कभी अनुभव नहीं हुआ। फिर भी जीवन अतृप्त है, अशात है। वैभव का बोझ ऐसा लद गया है कि जीवन दिन-दिन अचेतन होता जाता है, जीवन का सौख्य धन एवं वैभव की वितृष्णा मे, और उससे पैदा होनेवाले नानाविध प्रलोभनों मे डूब गया है। सब कुछ है पर न जाने क्या नहीं है जिससे सब कुछ फीका, सब कुछ बेस्वाद हो गया है। रात-दिन एक नशे मे भूली हुई आत्मा जीवन-यात्रा पूरी कर रही है। सुख नहीं, शान्ति नहीं, तृप्ति नहीं, आनन्द नहीं।

यह स्पष्ट है कि मनुष्य का आनन्द उसकी अपनी चीज है जो उसके अन्दर ही समाई हुई है। इसे खोजने कहीं दूर नहीं जाना है और यह धन अथवा सुख के नाम पर बाजार में बिकनेवाली सुविधाओं पर निर्भर नहीं करता। यह आकाक्षाओ को निर्बन्ध छोड देने से न कभी मिला है, न मिलेगा क्योंकि जहाँ शाति और तृप्ति नहीं है तहाँ सुख और आनन्द भी नहीं है।

इसलिए यदि तुम सुख चाहते हो तो पहली बात यह कि जहाँ वह है वहाँ उसको देखने एवं पाने की ओर ध्यान दो। यह जो सुख की छाया है और जिसको तुम रुपयो से खरीदना चाहते हो उसे भूल जाओ। परछाईं के पीछे दौडने मे कोई लाभ नही है। इससे तुम्हारी

पीड़ा बढ़ेगी; तुम्हारी अशांति अधिक होगी। आनन्द का सौदा रुपयों से नहीं हुआ करता, यहाँ तो दिल का सिक्का चलता है, दिल निर्मल, विशुद्ध, खरा होगा तो आनन्द की धारा तुम्हारे जीवन को ओतप्रोत कर देगी।

दूसरी बात यह कि जहाँ आज लोग सुख के ठीक स्रोत को भूल गये हैं तहाँ उसका पूरा मूल्य चुकाने को भी तैयार नहीं हैं। उसके प्रति

'शार्टकट' का लोभ

अनुत्तरदायी से बने वे घूमते फिरते हैं। उनको सुख की चाट है, उसकी भूख नही है। जो जीवन कृत्रिम भोजनों का अभ्यस्त हो गया है और जिसे बनाये रखने के लिए प्रति पग पर उत्तेजक द्रव्य—'स्टिमुलेएट'—आवश्यक हो गये है, कोई आश्चर्य नहीं कि सच्चे आनन्द का मार्ग उसे शुष्क लगता हो। बात यह है कि आज मानव प्रत्येक क्षेत्र में 'शार्टकट' (नजदीक का रास्ता) चाहता है और आनन्द का 'शार्टकट' नहीं है। उसका सबसे सरल मार्ग यह है कि हमारा दिल जो दुनिया के चित्रपट पर शीघ्रता से उठती और मिटती हुई परछाइयों मे लिपटा-लिपटा चलने को उत्सुक है और जो केवल उड़ना और भागना चाहता है उसपर हम अपना नियंत्रण स्थापित करें। आनन्द के लिए अपने को अन्तःमुखी करना पहली शर्त है। अनुभव करो कि आनन्द का झरना तुम्हारे अन्दर बह रहा है और संसार की कोई कठिनाई और शक्ति तुमको दुखी नहीं कर सकती। तुमको करना केवल यह है कि जिस चीज के लिए बाहर यो भटक रहे हो और जिसकी खोज में इतना कष्ट तुमने उठाया है उसे अपने ही अन्दर खोजो। तुम्हें मिलेगी। यह समझ लो कि जब तक तुम अपने को लेकर सुखी और शात न होगे, संसार की कोई शक्ति तुमको सुखी नहीं कर सकती। याद रखो, आनन्द को प्राप्त करना बिलकुल तुम्हारे बस की बात है। यह मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। जरूरत है कि वह अपने इस अधिकार को पहचाने और निश्चय करले कि मैं आनन्द प्राप्त करके रहूँगा। इसके लिए संसार से भागने वाले

दिल पर काबू रखो और वासनाओं एवं कामनाओं के रक्तबीज का नाश कर दो। कामनाओं की बेल को इतना न बढ़ने दो

कामनाओं पर संयम

कि वे इस जीवन-वृक्ष का सारा रस चूस लें और वह सूख जाय। याद रखो, कामनाओं की बाढ में अपने को छोड़ देने मे सुख नहीं है, उसमे चिन्ताएँ है और चिन्ताएँ है, अशांति और अतृप्ति है। सुख कामनाओं पर अपना प्रभुत्व, अपना राज्य स्थापित करने मे है; उनके नियत्रण मे है।

× × ×

पर इस जीवन-यात्रा मे, जहाँ हमें विविध मार्गो से गुजरना है और जहाँ प्रलोभन भी हैं, अंधकार भी है, काँटे भी है, और जहाँ चलना ही चलना है, स्वभावतः ही हम लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाते हैं। कर्म और सघर्ष से भरे हुए जीवन में बोझ एवं चिता का अनुभव होता है। इसलिए जीवन-यात्रा मे साथियों की आवश्यकता होती है, जिनके साथ मिल कर यह मार्ग पूरा किया जा सके। स्वभावतः अकेली यात्रा ज्यादा श्रमसाध्य एवं जल्द थकाने वाली होती है। जीवन के विकास में विवाह एवं कुटुम्ब की आवश्यकता यहीं है। यह व्यक्ति और समाज को जोड़ने-वाली शृङ्खला है। इसमे व्यक्ति के चरम विकास का राजमार्ग खुला हुआ है पर समाज के अभ्युदय एवं कल्याण का पथ रुद्ध नहीं होता है।

जीवन मे विवाह की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि पुरुष को एक रोटी बनाने वाली और सेवा करनेवाली की ज़रूरत है या स्त्री को

विवाह की आवश्यकता

विवाह किये बिना स्वर्ग नहीं मिल सकता, बल्कि इसलिए है कि उसके द्वारा स्त्री-पुरुष ऐसे साथी पा जाते हैं जो यदि अपने उद्देश्य एवं कर्तव्य को समझें तो, एक दूसरे मे तन्मय होकर, एक दूसरे को उठाते, बढ़ाते, विकसित एवं सुखी करते हुए चलते हैं, जिनसे एक-दूसरे के लिए जीवन-व्यापी हिस्सेदार होने की आशा की जा सकती है। विवाह व्यक्ति की सामाजिकता की, और समाज के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करने की,

पहली श्रेणी है। यहा से पति और पत्नी, पुरुष और स्त्री केवल अपनी सुविधा का ध्यान छोड़कर चलते हैं। यह त्याग और कर्तव्य की पहली सार्वदेशिक शाला है जिसे प्रकृति ने हमारे बीच अपने आप और अत्यन्त स्वाभाविक रूप में जाग्रत कर रखा है।

इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि हमारे गृह-जीवन का परिष्कार एवं सुधार कर दिया जाय तो व्यक्ति, समाज, सभ्यता और संस्कृति सबका कल्याण हो सकता है। क्योकि यही वह स्थान है जहाँ समाज पनपता है और जहाँ भावी पीढ़ियाँ पोषण पाती है। यही वह स्थान है जहाँ घोर कर्म की तीव्र धूप में चलने वाला मनुष्य दो क्षण के लिए दम लेता है, शीतल होता है और अगली मंजिल की यात्रा आरम्भ करता है। जीवन के मरुस्थल में गृह वह निर्झर है जहाँ प्यासा और थका मानव शीतल जल पीकर अपनी प्यास बुझाता है और जहाँ उसके थके पैर धुलकर फिर आगे चलने की शक्ति प्राप्त करते है।

मैने अनेक जन-सेवको को देखा है जिनका समाज में आदर है, जिनके व्याख्यान सुनने के लिए हजारों उत्सुक रहते हैं पर उनका जीवन अशान्त, अतृप्त है। उनके दिल मे शान्ति नहीं, छटपटाहट है। दुखी गृह-जीवन ने उनकी जीभ तीखी कर दी है और उनके विचारो में कटुता का संचार किया है। जब तक इनका गृह—जीवन मधुर था, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे विवेक और सामञ्जस्य था। कुटुम्ब एवं गृह के मृदुल स्पर्श ने जीवन के चक्र को सरलता और मृदुलता प्रदान की थी; वे हलकेपन से घूम सकते और जंग लगे पहियों की भाँति उनमे आवाज नहीं होती थी। आज उस स्निग्धता और मधुरता को खोकर जो घाव हो गया है वह विषाक्त फोड़े की तरह उनके ध्यान को अपने मे केन्द्रित किये हुए है। इसलिए जीवन अतृप्त, अशात, विषाक्त और कटु हो रहा है। इसीलिए दूसरों को निबाहने एवं दूसरों के साथ स्वयं निबह जाने की उनकी शक्ति कुंठित हो गई है। इसीलिए जरा सी बात भीषण मतभेद का ताण्डव खड़ा कर देती है।

इन सब बातों का एक ही निष्कर्ष है कि जबतक गृह-जीवन अतृप्त, विकल एवं अशात है तबतक व्यक्ति एवं समाज के बीच का सम्बन्ध सुखकर न होगा और एक व्यक्ति प्यासा-प्यासा रह जायगा और दूसरी ओर समाज मे दलबन्दी, गुटबन्दी, स्वार्थों के संघटन और अकल्याण-कर प्रवृत्तियों को उत्तेजन मिलता रहेगा।

इसे हम पग-पग पर अनुभव कर सकते है और हर जगह देख सकते है। बिना नींव के मकान की तरह हमारे सारे प्रयत्न आज शिथिल, दुर्बल और विकम्पित हैं। करना कुछ चाहते है, होता कुछ है। सुख चाहते है, पर दुःख भोग रहे है, कल्याण चाहते है पर यन्त्रणाओं और विपत्तियों में फॅसते जाते हैं। सम्पूर्ण वातावरण अस्वास्थ्यकर हो रहा है और सम्पूर्ण परिस्थिति जटिल और अश्रेयस्कर है। न व्यक्ति सुखी है, न समाज सुखी है। दोनो निर्बल और अचेतन है।

संसार मे आन्दोलन तो बहुत से हो रहे है पर हमारा सुख जो बढ़ नहीं रहा है, उसका कारण यही है। गृह-जीवन का सघटन बिलकुल अस्त-व्यस्त हो गया है और व्यक्ति अपने को खोया-खोया-सा अनुभव कर रहा है। उसकी शान्ति बढ नहीं पाती है और बिना शान्ति के सुख पाने की आशा की कैसे जा सकती है ? व्यक्ति के आनन्द की शिक्षण-शाला आज तोड़ी जा रही है और हमारे जीवन की नीव मे घुन लग रहे हैं। तब आनन्द कैसे मिले ? शान्ति कैसे प्राप्त हो ?

इसके लिए तो प्रत्येक को सोचना होगा; प्रत्येक को अपने कर्तव्य की ओर देखना होगा। इसके लिए तुमको दिल पर काबू रखना होगा और गृह-जीवन को ठीक आधार पर स्थापित करने का निश्चय करना होगा। इसके लिए तुम्हे जानना होगा कि दाम्पत्य जीवन सुखी कैसे हो सकता है और उसमे प्रेम एवं कर्तव्य का उचित सामञ्जस्य कैसे करना होगा। इसके लिए तुम्हे जानना होगा कि यह जो जवानी है तुम पर बड़ी जिम्मेदारी लेकर आई है। उसे समझो और तब दिल को पहले परिष्कृत कर लो, फिर जीवन की यात्रा आरम्भ करो।

: ३ :

यौवन की खिलती हुई कलियाँ !

किसी अंग्रेजी कवि ने कहा है :—

Glorious it was to have been alive,
But to be young was very Heaven.

अर्थात् जीवित रहना अवश्य श्रेष्ठतापूर्ण था पर युवक होना तो साक्षात् स्वर्ग ही था।

निश्चय ही जवानी जीवन का वसत है। बाहर पेड़ पर बैठी कोयल तो बोलती ही है, अन्दर प्राणों में भी एक कोयल बोलने लगती है।

जुही की कली

कोमल डाली पर सोई हुई उस जुही की कली को देखो जो समीरण की थपकियों से अपनी उनींदी आँखें खोल रही है; जिसके मृदुल पटल खुलते जा रहे हैं। एक अँगड़ाई है—मानो लज्जा की अरुणिमा हो। हवा लगने
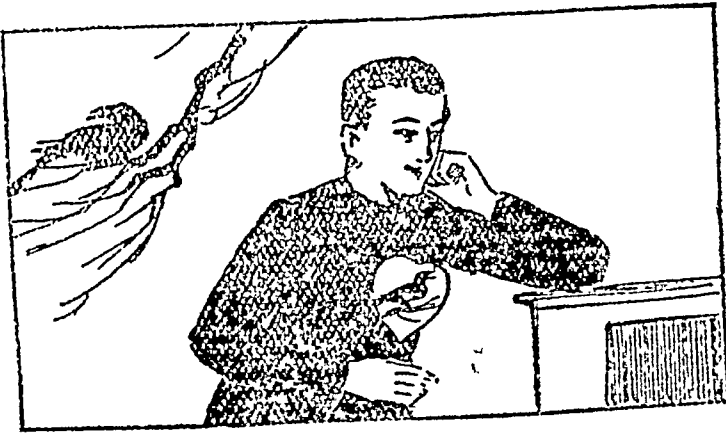
बाहर पेड़ पर बैठी कोयल तो बोलती ही है, अन्दर प्राणों में भी एक कोयल बोलने लगती है।

से हृदय का आँचल उड़ रहा है। और अन्तःपराग संसार में अपने को

लुटा देने को व्याकुल है ।

आदमी में जब जवानी आती है तब कुछ ऐसा ही होता है । 'छुटी न शिशुता की झलक, झलक्यो जोबन अग' । लड़कपन गया नहीं है पर अंगों में यौवन झाँकने लगा है । मन उमग पर है, दिल में एक नशा, एक सरूर है । आँखें शर्मीली सी झपती है । अन्दर एक बेचैनी का अनुभव होता है । जैसे कोई चीज जग रही हो, करवट लेकर उटने और बाहर आने को छटपटाती हो ।

यह यौवनागम ! जीवन मे इससे महत्वपूर्ण दूसरा समय नहीं । इसमे प्रकृित की विजय का प्रकाश है । इसमें नूतन स्फूर्ति, नूतन साहस, नई लगन, और वह हौस जो कठिनाइयों को कुचल कर आगे बढती है, पैदा होती है । कली खिलने लगती है और पराग उड़ने लगता है । दिलों मे एक स्वप्न, दिमाग मे एक नशा, कलेजे मे महत्वाकाक्षा और रगो एवं पुट्ठों में गरम-गरम खून लिये यह यौवन चलता है । इसने दुनिया के इतिहास पलट दिये है, इसने समाज का नक्शा बदल दिया है; इसने आदमी को आदमी रखा है । यह भग्न स्मृति-स्तंभों में नाचता, हिमालय की चोटियों पर अट्टहास करता और समुद्र की छाती चीर कर, उसे चुनौती देता हुआ, निकल जाता है । इसके रक्त से मानवता के इतिहास के पन्ने लिखे गये है, इसके भ्रू-सचालन से समाज मे भूकप आया है, इसकी हँसी मे बिजली का नृत्य, इसके क्रोध मे ज्वालामुखी की हुंकार, इसके नशे मे ताडव है ।

यौवन का आगमन

निश्चय ही जवानी का आगमन मानव-जीवन मे स्वर्ग के समान सुखद एव महत्वपूर्ण है । इसमे हम अपने अस्तित्व का अनुभव करते है । इसमें जीवन के अन्दर एवं आकाक्षाओ की तृप्ति करने की शक्ति की अनुभूति होती है । यह जवानी दुनिया के प्रति एक कौतुक भरी आँख से देखती है पर उसे विजय करने की हौस भी रखती है । मानव-जीवन में यौवनागम वह समय है जब हमे क्षितिज आनन्द एवं आशा

के प्रकाश से पूर्ण दिखाई देता है और जब जीवन मधुर स्वप्नों एवं आकाक्षाओं से स्निग्ध एव मृदुल होता है।

किन्तु—; यह सब जहाँ है तहाँ एक महत्वपूर्ण किन्तु भी लगा हुआ है। यह जवानी जहाँ आशा और आनन्द का सदेश लेकर आती है तहाँ यह महान उत्तरदायित्व भी लेकर आती है। इस पुष्प मे सुगंध है पर काँटे भी हैं और जो पराग प्राणों को मुग्ध एवं शिथिल किये डालता है उसमे प्रायः कीटाणु भी होते हैं। इसलिए आपका सारा सुख एवं आनन्द इस बात पर निर्भर है कि इस जवानी के खिलते हुए फूल का उपयोग आप कितनी सावधानी और कैसी योग्यता के साथ कर सकते है।

किन्तु दायित्व भी है !

१६ वर्ष से लेकर २५ वर्ष तक की आयु का समय जीवन मे अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह कौमार से यौवन तक की मंजिल अगर ठीक तरह से पार कर दी जाय तो सामने नंदन-कानन लहलहाता हुआ दिखाई देगा। शक्ति एवं स्फूर्ति से जीवन बलवान एवं वेगवान होगा परन्तु यदि यह समय चुहल एवं राग-रंग में लग गया; अगर मजिल के बीच, मार्ग के प्रलोभनों ने तुम्हें फँसा लिया, अगर तुम्हे याद न रही कि अँधेरा होने एवं कठिनाइयों तथा आपदाओ के बादल फूटने के पूर्व ही, होश हवास मे एवं अगली यात्रा के उपयुक्त जीवन-प्रवाह से पूर्ण स्वास्थ्य के साथ, मंजिल पर पहुँच जाना है; अगर तुम दिल गुदगुदाने-वाली क्षुद्र वस्तुओं मे उलझकर रह गये तो याद रखो कि यह जरा-सी भूल जीवन-भर दिल मे काटे की तरह चुभती रहेगी, यह तुम्हारे स्वास्थ्य को चौपट कर देगी; महत्वाकाक्षाओ के गले घोंट देगी और समग्र जीवन अशाति एवं अतृप्ति से भरे हुए उस मार्ग के समान हो जायगा जो मरुभूमि के बीच से गुजरता है और जिसमे सिर्फ थकावट है; जलना है और जलना है।

यह वह अवस्था है जब जीवन का निर्माण होता है। यह जीवन के संचय का काल है। इस समय शरीर एवं मन दोनों मे जबर्दस्त

निर्माण का काल

परिवर्तन होते है। किशोर स्वय कुछ सोचना, कुछ निर्णय करना चाहता है। उसकी भावनाओ मे एक प्रवाह, दिल में एक रवानी होती है। उसकी आँखो में एक धुंधला स्वप्न आता है और एक अस्पष्ट आदर्श उसके मस्तिष्क मे बनने लगता है। किशोर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व, अपने एक अलग अस्तित्व, अपने निजत्व का अनुभव करता है। वस्तुतः यह कुमार का नवीन जन्म है। इसमे प्रसुत—सोई हुई—, प्रच्छन्न शक्तियाँ विकसित एव मूर्त्त होने लगती है और अनेक नवीन चेतनाएँ एवं अनुभूतियाँ उत्पन्न होती है। पर जहाँ किशोरावस्था संचय एव निर्माण का काल है तहाँ यह खतरे का समय भी है।

इन खतरो एवं प्रलोभनों को कुचलकर चलने वाला ही सच्चा युवक, सच्चा मर्द है। वही दुनिया मे कुछ कर सकता है क्योंकि वह छाती मे आँधी का साहस, नेत्रो मे बिजली का प्रकाश एव हाथों मे वज्र की शक्ति लिये चलता है। इसलिए इस समय सँभलने, अपने मे अपने को संचित रखने और जीवन-द्रव से चारों ओर जबर्दस्त बाँध बाँध रखने की जरूरत है।

पर इसके लिए जरूरी है कि प्रत्येक कुमार उन सब परिवर्तनों के रहस्य से परिचित हो जो इस अवधि मे उसके अन्दर हो रहे है। हम देखते है कि स्कूलों एव कालेजो के अनेक कुमार जिनके गालो से गुलाब लज्जित होता था, साल दो साल मे अत्यन्त कुरूप और अस्वस्थ हो उठते है। ऐसा नहीं कि अपने सौन्दर्य को यो खो देने का उन्हे कोई शौक रहा हो पर उनको यह ज्ञान न था कि उसकी रक्षा कैसे की जा सकती है। वे दुष्टों एवं राक्षसो के षड्यन्त्र के शिकार हुए और तुच्छ प्रलोभनो में फँस गये। आज कल मित्रता और बन्धुत्व के वेश मे चलनेवाली पशुता एवं राक्षसी वृत्ति उस समय इन गुलाब से लहलहाते कुमारों पर आक्रमण करती है जब वे बिल्कुल अचेत होते है। समाज के राक्षस उनका जीवन-सत्व चूस लेते है। ऐसे राक्षस मित्रों से सावधान रहने की जरूरत

है। ये वे घुन हैं जिन्होंने लक्ष-लक्ष कुमारों की आत्मा को छलनी कर दिया है और उनको दुनिया मे सदा रोने के लिए छोड़ दिया है। ऐसे मित्र तुम्हारे लिए और समाज के लिए जबर्दस्त खतरा है। ऐ भाई, इसके पहले कि तुम्हें सदा के लिए निकम्मा बनकर पछताना पड़े और तुम्हारी महत्वाकाक्षाओ की कोमल टहनियाँ तुषारपात से झुलस जायँ, तुमको चेतना होगा, कर्तव्यनिष्ठ होना पडेगा।

तुम्हें उन सब परिवर्तनों का ज्ञान होना चाहिए जो तुम्हारे अन्दर हो रहे है। तुम्हें उन आकाक्षाओं और प्रवृत्तियों से सावधान रहना चाहिए जो तुम्हारे मन में पैदा हो रही है। इस बात को कभी

प्राणमय जीवन

न भूलो कि सचय और संयम, न कि अपव्यय और असयम, से जीवन गढ़ा जायगा—वह जीवन जो मार्ग की कठिनाइयों को देखकर हँसता है और आपत्तियों की चट्टानों को अपने पदाघात से चूर-चूर कर सकता है।—वह जीवन जो नहीं जानता, दुःख क्या है और बीमारी किसे कहते है। वह जीवन जिसमें दुनिया पर छा जाने का हौसला और दुनिया को कुछ बना देने की आकाक्षा है।—जीवन जिसमें प्रति पग पर गति है, जिसके प्रत्येक श्वास में कप है, छाती मे आँधी-सा साहस है और जिसके प्राण मानवोचित पौरुष एवं उदारता के अमृत से धुले हुए है!

और वे परिवर्तन? उनकी संक्षिप्त चर्चा हम यहाँ कर लें तो अच्छा होगा।

———

: ४ :

कैशोर से यौवन

१. शारीरिक परिवर्तन

१५ वर्ष से लेकर २५ वर्ष की अवस्था तक प्रत्येक कुमार के शरीर में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। उसके अन्दर कुछ रासायनिक पदार्थ बनने लगते हैं। जीवाणुओं की क्रिया शरीर मे ग्रंथियाँ बदल जाती है और फलतः शरीर में एक रस, एक द्रव, भीतर ही भीतर, पसीजकर रुधिर में मिलने लगता है। यह रस शरीर की उन ग्रंथियों या गिलटियों (Glands) से निकलता है जो अभी तक प्रसुत थीं पर किशोरावस्था में उभर आई हैं। हमारा शरीर अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथियों से पूर्ण है। शरीर एवं मन का समुचित विकास इन्हीं के ऊपर निर्भर करता है। कुछ ग्रंथियाँ ऐसी हैं जिनसे पसीजने वाला द्रव बाहर निकल जाता है। आँसू, पसीने, मूत्र इत्यादि की ग्रंथियाँ ऐसी ही हैं पर जिन विशेष ग्रंथियों का उल्लेख यहाँ किया गया है वे इनसे भिन्न हैं। उनके द्वारा पसीजनेवाले रस मे बाहर निकलने की प्रवृत्ति नहीं है। यह रस भीतर ही भीतर रुधिर में घुलकर सम्पूर्ण शरीर में फैलता है। यह रस अमूल्य है और इसकी रक्षा एवं सदुपयोग पर ही जीवन की सम्पूर्ण उठान निर्भर है। इसे ही शरीर शास्त्री जीवन-रस कहते हैं। यह जीवन-रस यदि शरीर में खपा लिया जाय तो प्रत्येक अग को शक्ति मिलती है। इससे पुट्ठे मज़बूत होते है, स्नायुओं को शक्ति मिलती है। यह इसी रस का प्रभाव है कि "किशोर या नव-युवक की आँखों मे इतनी ज्योति है; मुख पर लावण्य है; छाती मे अकड़ और चाल मे गर्व है; अग-अंग में सुघराई और

और चुलबुलापन है।"१ यह कमनीयता, यह स्फूर्ति, यह सौन्दर्य यह उठान, यह जोम और अकड़—सब उस रस का प्रसाद है जो १४-१५ वर्ष की अवस्था से तुम्हारे शरीर में, भिन्न-भिन्न ग्र थियों से पसीजकर, घुलने-मिलने लगा है। यह जीवन-रस ही वीर्य है। यह रस सम्पूर्ण शरीर में दौड़कर मिल रहा है और उसके कारण एक चंचलता, एक बेचैनी का अनुभव होता है। इस रस का उपयोग शरीर या मस्तिष्क को शक्तिशाली बनाने में किया जा सकता है। यदि शरीर और उसके पुट्ठो की मजबूती की दृढ़ इच्छा करोगे तो वे पुष्ट होंगे, यदि सुन्दर और स्वस्थ विचारों मे मन को लगाओगे तो मस्तिष्क शक्तिमान होगा। मतलब यह कि तुम्हारी प्रवृत्ति जिधर जायगी, उसी ओर यह जीवन-रस दौड़ेगा। इससे स्मृति, मेधा, पुट्ठे सबका विकास किया जा सकता है पर इसी के दुरुपयोग से वासना की वह आग भी भड़क सकती जो है तुम्हारे जीवन को जलाकर राख कर देगी। तुम्हारे अंदर जो चञ्चलता है और इद्रियों मे जो स्फुरण है वह प्रकृति की ओर से इस बात की चेतावनी है कि यह अत्यन्त सावधानी का समय है और तुम्हे जो शक्तियॉ प्राप्त हुई है उसका सदुपयोग करो। क्षणिक उत्तेजना में उसको नष्ट न होने दो। यदि तुम इस रस को उर्ध्वगामी रखोगे, यदि उसकी गति हृदय और मस्तिष्क की ओर होगी और उनके विकास मे उसका उपयोग होगा तो तुम्हारी बुद्धि से संसार चकिता होगा और तुम्हारे मुख पर वह लावण्य एवं ओज होगा जो सच्चे ब्रह्मचारी में ही संभव है।

ज्यो-ज्यो किशोरावस्था बढती है कंठ-स्वर में गंभीरता आती जाती है। ठुड्ढी, गालों और ओठ के ऊपर हलकी लोम-राशि उगने लगती है। सीने की हड्डी फैलती है और कंधे चौड़े एवं पुष्ट होते हैं। यह सब उस रस का ही करिश्मा है। इस रस को उत्पन्न करने वाली मुख्य

---

१ 'किशोरावस्था' : गोपालनारायण सेन सिंह। पृष्ठ २१।

परिवर्तन के लक्षण

ग्रन्थि अंडकोष से मिली हुई है। इसलिए जननेंद्रिय का अनुचित या असमय प्रयोग इस जीवन-रस को विकृत कर देता है और जो अमृत शरीर और मन के विकास में लगना चाहिए था, बाहर निकल जाता है।

खिलवाड मत करो

इसलिए यदि तुम अपने शरीर को फौलाद-सा बनाना चाहते हो, यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी आँखों मे बिजली हों, तुम्हारे शरीर मे स्फूर्ति हो, तुम्हारे मन में साहस हो तो तुम्हें इस रस से होने वाले परिवर्तनों को समझ लेना चाहिये और अपने शरीर के निर्माण और विकास मे उसका पूर्ण सदुपयोग करना चाहिये। याद रखो, यह स्फूर्ति जो आज तुम्हे अनुभव हो रही है, कल नष्ट हो जायगी यदि रस का वह स्रोत तुमने सुखा दिया। यह लावण्य जो तुम्हे परमात्मा ने दिया है बहुत जल्द नष्ट हो जायगा यदि तुम भ्रम-वश इस जीवन-रस को नष्ट करने या उससे खिलवाड़ करने मे प्रवृत्त हुए। यदि तुम चाहते हो कि यौवन की वह स्फूर्ति जीवन-भर बनी रहे तो इसे कभी न भूलो कि यह तुम्हारे संचय का काल है। यह वह काल है जब प्रकृति तुम्हारे शरीर को प्रचुर जीवन-रस दे रही है। आवश्यकता इसकी है कि तुम इस जीवन-रस को कृतज्ञतापूर्वक, उसका सच्चा मूल्य, उसका महत्व समझकर ग्रहण करो और उससे शरीर के प्रत्येक अवयव को स्निग्ध होने दो; शक्ति प्राप्त करने दो और विकसित होने दो।

२. मानसिक परिवर्तन

किशोरावस्था में जैसे मनुष्य के शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं वैसे ही उसके मस्तिष्क और मानसिक निर्माण मे भी अनेक नवीन प्रेरणाओ एवं प्रवृत्तियों का जन्म होता है। यदि बारीकी से देखा जाय तो ये मानसिक परिवर्तन भी शारीरिक परिवर्तन के ही अन्तर्गत आ जाते हैं परन्तु स्पष्टता और सरलता के लिए इनका अलग वर्णन किया

जा रहा है।

किशोरावस्था में मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट बदलने लगती है; हड्डियों और ज्ञान-तंतुओं में वृद्धि और परिवर्तन होने लगता है।

मस्तिष्क का विकास

साधारणतः मनुष्य के मस्तिष्क को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इन्हे अंग्रेजी में सैरिब्रम एवं सैरिबेलम कहते हैं। सैरिब्रम मस्तक के अगले भाग में स्थित है। हिंदी में इसे 'बड़ा दिमाग़' कह सकते है। हमारे मस्तक या खोपड़ी का बहुत-सा अगला भाग इस बड़ा दिमाग़ से घिरा हुआ है। आँखों के ऊपर भौहों की हड्डियों से लेकर शिखास्थान के नीचे तक यह बड़ा दिमाग़ फैला हुआ है। और मस्तक के दाहिने और बायें बाजू में अर्द्धवृत्ताकार बॅटा हुआ है इसकी सतह उभारदार होती है और इनमें अनेक दराड़ें होती हैं। ये दराड़ें बड़ी महत्वपूर्ण है और दिमाग़ को अनेक भागों में विभाजित करती है। ये जितनी गहरी होती हैं मस्तिष्क की शक्ति उतनी ही विकसित होती है और मेधा उतनी ही तेज होती है।

सैरिबेलम अर्थात् छोटा दिमाग बड़े दिमाग के नीचे होता है। यह गले के ऊपर और बड़े दिमाग़ के नीचे, दोनों कानो के बीच में, फैला

'छोटा दिमाग़'

हुआ है। बड़े दिमाग़ की तरह यह भी दाहिने बाये दो अर्द्धवृत्तों में विभाजित है। यह गले के पिछले हिस्से की उस हड्डी से, जहाँ से मेरुदंड का आरम्भ होता है, मिला हुआ रहता है। इसमे भी बड़े दिमाग की तरह दराड़ें होती हैं। इन दोनों दिमागो की रक्षा एवं पर्याप्त वृद्धि के लिए ही ईश्वर या प्रकृति ने खोपड़ी को इतना दृढ़ बनाया है। मानव-शरीर का यह सबसे रहस्यमय एवं विचित्रता से भरा हुआ भाग है और इसके समुचित विकास पर ही जीवन का उत्थान निर्भर है।

शरीर के समस्त कार्यों के संचालन में 'सेरिब्रम' या बड़ा दिमाग़ सबसे ज्यादा भाग लेता है। यदि यह न हो तो हमें किसी विषय की

अनुभूति न हो। आँख, कान, नाक, जिह्वा इत्यादि ज्ञानेन्द्रियों के कार्यों का ज्ञान इस मस्तिष्क के ही कारण होता है। आँख देखती है, नाक सूंघती है, कान सुनता है, जिह्वा स्वाद लेती है और चमड़ी या त्वचा-द्वारा स्पर्श का कार्य होता है पर आँख खुली रहने पर भी तब तक द्रष्टव्य वस्तु का ज्ञान नहीं होता जब तक इस बड़ा दिमाग की आज्ञा न हो। बहुधा हम जब किसी ध्यान में मग्न होते है हमारी आँखें खुली रहती है पर हमे किसी चीज के देखने का अनुभव नहीं होता अथवा उस अवस्था में कोई हमसे कुछ कहता है तो भी हमे सुनाई नहीं देता। इसका कारण यही है कि इस बड़े दिमाग से इन कार्यों का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता, वह उस समय दूसरे काम में लगा होता है। आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा के कार्य दृष्टि, श्रवण, घ्राण, रस, स्पर्श अवश्य है, इन कार्यों का ज्ञान या अनुभव हमे इस बड़ा मस्तिष्क के द्वारा ही होता है। बड़ा दिमाग ही इन्द्रियो के ज्ञान का केन्द्र है। प्रत्येक इन्द्रिय के साथ दिमाग का सम्बन्ध है। दोनों के बीच ज्ञानतन्तु-रूपी तार लगे हुए है। इन्द्रियां जो कुछ करती है सब की जानकारी तुरन्त मस्तिष्क को हो जाती है। इन ज्ञान-तंतुओं मे बिजली से भी अधिक शीघ्रता से सूचना या सन्देश पहुँचाने की शक्ति है। बिना मस्तिष्क की जानकारी हुए हमे किसी बात का अनुभव नहीं हो सकता। यह बड़ा मस्तिष्क हमारी चेतना-शक्ति का केन्द्र है।

बड़ा दिमाग

सैरिबेलम अर्थात् 'छोटा दिमाग' का कार्य शरीर की विभिन्न आतरिक प्रवृत्तियों और आदोलनो को नियंत्रित और व्यवस्थित करना है। यह शरीर-राज्य का गृह-सचिव (होम सेक्रेटरी) है। शरीर के पुट्ठों (मसल्स) पर इसी का अधिकार है और शरीर के विभिन्न अंगों से यथोचित काम लेना भी इसी के वश की बात है। प्रेम-सम्बन्धी प्रेरणाएँ एवं गृह, कुटुम्ब तथा मित्रों के प्रति निजत्व की भावनाएँ इसी छोटे दिमाग की क्रिया-

छोटे दिमाग का प्रभाव

शीलता के परिणाम हैं। मतलब यह कि शरीर पर इस छोटे दिमाग़ का ही अधिकार एवं नियंत्रण है। जब हमें चलना होता है तो इसी दिमाग़ की आज्ञा से हमारे पाँव सीधे और दृढ़तापूर्वक आगे पड़ते जाते हैं। वृद्धावस्था अथवा अन्य कारणों से जब यह दिमाग़ शिथिल एवं निर्बल हो जाता है तब मनुष्य का अपने शरीर अथवा उसके अंगों पर यथोचित नियंत्रण नहीं रह जाता, वे अवश हो जाते है। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि प्रेम काम इत्यादि का सम्बन्ध इस छोटे दिमाग से ही है। इसलिए प्रेमातिरेक में या कामान्ध होने पर यह दिमाग़ ठीक-ठीक काम नहीं करता, अनेक बार मनुष्य की अवस्था पागल या शराबी सी हो जाती है। शराब, भाँग तथा अन्य मादक द्रव्यो का प्रभाव ज्यादातर इसी मस्तिष्क पर पड़ता है इसीलिए शराब इत्यादि का सेवन करनेवाले कितने ही व्यक्तियों में प्रतिभा तो होती है पर चरित्र नहीं होता। छोटा दिमाग़ कमजोर हो जाने के कारण किसी कार्य की बुराई को जानते समझते हुए भी वे उसे करते जाते है और अन्त में उस व्यसन के शिकार हो जाते हैं। उनका उनके मन या शरीर पर नियंत्रण नहीं रहता।

इस संक्षिप्त वर्णन से यह समझा जा सकता है कि हमारे शरीर एवं मन की क्रिया-प्रणाली मे सैरिबेलम (छोटा दिमाग) का कितना महत्व है। वस्तुतः गृहस्थ-जीवन का सम्पूर्ण सुख इसी के स्वस्थ एवं सुविकसित होने पर निर्भर है। "यह सासारिक प्रवृत्तियों का केन्द्र है। प्रेम-भाव, समाज-प्रेम, दाम्पत्य-स्नेह, वात्सल्य-भाव, मैत्री भाव, गृह-निवासेच्छा, तत्परायणता सभी का संचालन इससे होता है और इसका काम शरीर की भिन्न-भिन्न गतियों को वश में करना, उन्हें सीमित तथा नियंत्रित रखना भी है। चलना, फिरना, बैठना, उठना, खड़े रहना, हाथ घुमाना, अँगुलियाँ चलाना, उड़ना—इन सब का संचालन भी इसी से होता है।"*

---

*ब्रह्मचर्य-संदेश : श्री सत्यव्रत सिद्धांतालंकार : पृष्ठ २१—२२

बचपन में सैरिबेलम (छोटा दिमाग) बहुत अविकसित होता है इसीलिए बच्चा उठना चाहता है पर गिर पड़ता है; कहना कुछ चाहता है पर कहता कुछ है। आयु के साथ-साथ इसकी भी वृद्धि होती है और २५-३० वर्ष की अवस्था तक वृद्धि का यह क्रम बराबर जारी रहता है—यहा तक कि जहा बचपन में यह सारे मस्तिष्क के लगभग बीसवे हिस्से के बराबर होता है तहा प्रौढ़ यौवन (२५ से ३० वर्ष) की अवस्था में कुल मस्तिष्क के सातवें हिस्से के बराबर हो जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि स्नेह और आत्मीयता-सम्बन्धी समस्त प्रवृत्तियों का राजा यह सैरिबेलम—छोटा दिमाग़—ही है इसलिए ज्यों-ज्यों यह पुष्ट एवं विकसित होता है किशोर में मानसिक परिवर्तन का चक्र जोरों से घूमने लगता है। उसके मन मे स्नेह, मैत्री एवं प्रेम की भावनाएँ विकसित होने लगती हैं। वह अपने अलग व्यक्तित्व का अनुभव करता है और उस अनुभव को दूसरों के प्रेम एवं सहयोग से पुष्ट एवं विकसित करना चाहता है। मतलब यह कि स्नेह, प्रेम, दया, सहानुभूति इत्यादि मन की जितनी सामाजिक एव कोमल प्रवृत्तियाँ है, उनका सैरिबेलम (छोटा दिमाग) के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है इसलिए इसके स्वास्थ्य पर ही मनुष्य की प्रेम-सम्बन्धी भावनाओं की उठान निर्भर है।

इससे दो बातें बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। पहली यह कि कुमारावस्था से शरीर की ग्रन्थियों-द्वारा जो जीवन-रस निकलने लगता है उसकी शरीर की समुचित वृद्धि एवं जीवन की उठान के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। शरीर का ओज, स्फूर्ति बाढ़ सब उसके संकलन एवं सदुपयोग पर निर्भर है। जीवन के विकास के लिए इस रस का शरीर के अन्दर ही उपयोग होना बहुत जरूरी है।

दूसरी बात यह कि सैरिबेलम (छोटे दिमाग़) की समुचित पुष्टि के बिना आदमी की अवस्था उस नशेबाज, पागल या वृद्ध के समान हो जाती है जिसका अपने अंगो पर कोई नियन्त्रण नहीं है, जो प्रत्येक

अर्थ में परवश एवं परमुखापेक्षी है, जिसमें अपने व्यक्तित्व का उन्मेष नहीं; मर्द की साहसिकता नहीं और न अपने को इच्छानुकूल बनाने या गढ़ लेने की यौवनोचित क्षमता है। ऐसा व्यक्ति अपने जीवन पर एक ऐसे बोझ का अनुभव करता है जो मृत्यु तक उसकी छाती पर लदा रहेगा। वह संसार की प्रत्येक श्रेष्ठ और महान् बात की ओर अत्यन्त कातर दृष्टि से देखता है। इसलिए जो सच्चे अर्थ में जीवन का सुख उठाना चाहता है, उसके लिए आवश्यक है कि वह प्रत्येक संभव उपाय से 'छोटा दिमाग़' को पुष्ट करे। जीवनद्रव एवं सैरिबेलम (छोटा दिमाग़) के विकास का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। याद रखो, यौवन के आगमन से इस काल में तुम्हारे अन्दर जो चंचलता है, जो स्फूर्ति है और जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं उनका

'छोटे दिमाग' का महत्व
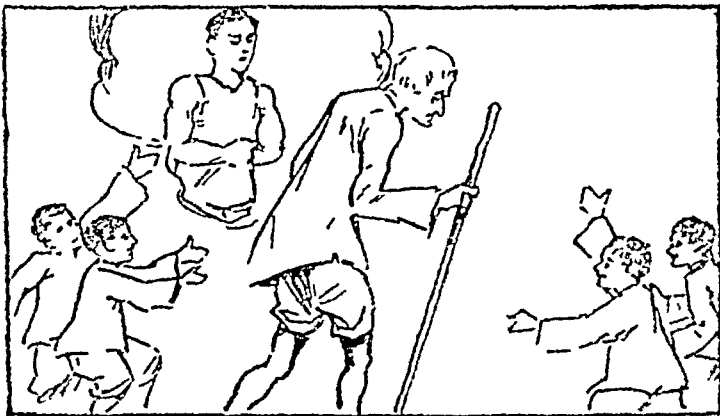
यह बुड्ढा भी कभी तुम्हारे जैसा था—

कुछ गूढ तात्पर्य है, उनकी जीवन के विकास में उपयोगिता है। तुम्हारे सम्मुख प्रकृति ने सच्चे सुख एवं अमृत का भाण्डार खोल दिया है। अब यह तुम्हारा काम है कि तुम उसके महत्व को समझो और उसका सदुपयोग करो। उस आदमी को देखो जो सड़क पर लाठी टेकता

चला जा रहा है और जिसे देखकर बच्चे हँस रहे हैं। कभी वह भी तुम्हारे-जैसा था पर उसने अपने साथ खिलवाड़ किया। देखो, कहीं ऐसा न हो कि बाद में तुम्हें भी रोना पड़े—वह रोना जिस पर दुनिया हँसती है और जिसकी फिर दवा नहीं। प्रकृति ने तुम्हारे हाथ में अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्र दे दिये हैं। इनसे तुम अपनी रक्षा कर सकते हो; दूसरों की सेवा कर सकते हो। पर इसके साथ यह भी सत्य है कि तुम असावधानी, उत्तेजना और पागलपन में अपना गला भी काट सकते हो। इस शक्ति ने जहाँ तुम्हारे अंदर सुख की असीम संभावनाएं उत्पन्न कर दी है तहाँ तुम्हारे भीतर-बाहर चारों ओर खतरे भी बढ़ा दिये गये है। प्रकृति तुमको असीम शक्तियाँ देकर यह देख रही है कि तुम अपने को इस जिम्मेदारी के उपयुक्त, बुद्धिमान सिद्ध करते हो या अपनी अयोग्यता से अपने मूर्ख होने का ढिंढोरा पीटते हो।

यौवनागम के इस शुभ मुहूर्त्त में तुम्हारे सामने जीवन एवं मृत्यु, अमृत एवं विष एक साथ उपस्थित हैं।

बोलो, तुम क्या लोगे?

: ५ :

जवानी के खतरे

किशोरावस्था एवं यौवनागम काल में शरीर और मन में जो परिवर्तन होते हैं उनका उल्लेख करने के बाद हम नवयुवक को उस पार्श्वचित्र के बीच खड़ा करते हैं जिसमें वह अपने को पाता है।

अन्दर और बाहर से उसका शरीर अनेक प्राकृतिक परिवर्तनों एवं क्रियाओं द्वारा पुष्ट हो रहा है। उसको अपने व्यक्तित्व के उन्मेष का अनुभव होता है। अपने पुट्ठे, अपने निखरते हुए लावण्य की ओर वह मुग्ध दृष्टि से देखता है। अपने अन्दर एक गुदगुदी, एक चञ्चलता को खेलता पाता है। छोटा दिमाग़ पुष्ट हो रहा है और उसने स्नेह एवं निजत्व की भावनाएँ किशोर के अन्दर उत्पन्न कर दी हैं। जीवन-रस प्रचुर मात्रा में बन रहा है और उसके कारण शरीर मे एक विद्युत्प्रवाह चल रहा है। कभी-कभी जब जीवन-रस पूरी तरह शरीर के ऊपरी अंगों में नहीं खपता तो पेड़ू के पास एकत्र हो जाता है जिससे एक विशेष प्रकार की गुदगुदी, और कभी-कभी उत्तेजना, का अनुभव होता है। उसका मन कौतूहल से भरा होता है।

जीवन-रस की प्रचुरता

जब किशोर अथवा नवयुवक की यह अवस्था होती है तब वह, असहाय-सा पथ-प्रदर्शन के लिए चारों ओर देखता है। उसे इसका ज्ञान नहीं कि उसके शरीर में क्या क्या परिवर्तन हो रहे हैं और उनका तात्पर्य क्या है? माता-पिता से उसे कोई जानकारी प्राप्त नहीं हुई क्योंकि आज-कल हमारे माता-पिता और अभिभावक बच्चों का पालन-पोषण तो इस ढंग से करते हैं कि असमय ही पके फल की तरह उनमें जवानी के

दिग्मूढ

लक्षण शीघ्र प्रकट होने लगते हैं पर यह बताने में उनके सदाचार का नाश होता है कि जवानी क्या है और उसमे शरीर में जो परिवर्तन होते हैं उनका मतलब क्या है। फल यह होता है कि किशोर अवाञ्छनीय सूत्रों से इनका ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश मे लग जाता है। घर के नौकर-चाकर, यार-दोस्त उसका यह काम मजे से कर देते हैं और युवक को सदैव के लिए कुएँ में ढकेल देते है।

दूषित वातावरण

आधुनिक सभ्यता ने हमारे चारों ओर भोग और विलास का ऐसा विषैला वातावरण उत्पन्न कर दिया है कि बचपन से हमारे फेफड़े दूषित वायु से भरने लगते हैं और दिल के सुकुमार पौधे को वासना की अमरबेल घेर लेती है। सारा वातावरण गंदगी से भरा हुआ है और हमारे अंगों का, हमारे शरीर और मन का प्राकृतिक विकास हो नहीं पाता है। बचपन की चंचलता बीतने नहीं पाती कि जवानी की कामुकता का इंजेक्शन हमारे मानस को विकल कर देता है। शीघ्रता से बढ़ते एवं आमूल बदलते हुए किशोर के चारों ओर विलास का वातावरण है। साहस और आत्म-त्याग से पूर्ण मातृत्व का अनुभव आज के युवक को दुर्लभ हो गया है। उसके सामने माताओं की पवित्र मूर्तियाँ नहीं है, रमणियों एवं कामिनियों के काफले घूम रहे हैं जिनके पास सद्गुण एवं सुरुचि की पूँजी का दिवाला है पर जो मानव-शृंगार, आकर्षण एवं विलास की सामग्री से अपने रूप को सजाने में विकल और व्यस्त हैं। मातृत्व की श्रद्धा की जगह अधिक से अधिक लोगों में आकर्षण उत्पन्न करने की होड़ मे लगी हुई इन कामिनियों के गर्भ से राम और कृष्ण, प्रताप एवं शिवाजी, रामकृष्ण एवं विवेकानन्द उत्पन्न होंगे, इसकी आशा करना मूर्खता है। आश्चर्य तो यह है कि एक ओर आज का सम्पूर्ण वातावरण नारी के गर्व से भरे हुए स्वतत्रता के स्वर से व्याप्त है और दूसरी ओर इस विक्षिप्त नारी ने पुरुषवर्ग के मन में श्रद्धा एवं पवित्रता का भाव जाग्रत करने की जगह उसकी प्रसुप्त वासनाओं की

आग को फूँक कर जगा दिया है और उनके बीच अपने को गेंद की तरह, अथवा दिल-बहलाव की सामग्री की तरह, छोड़ दिया है।

इन कामिनियों के गर्भ से राम और कृष्ण, प्रताप और शिवाजी उत्पन्न होंगे ?

ऐसी नारियों के बीच, उन्हीं के गर्भ से, उनके संस्कारों को लेकर जो बच्चे पैदा हो रहे है उनके सामने जीवन एक थकानेवाली मंजिल के रूप मे फैला हुआ है। बचपन में माता-पिता उन्हें अनुचित दुलार से अथवा शिशु-विज्ञान का समुचित ज्ञान न होने के कारण बिगाड़ देते हैं। फिर नौकरों से जितना संभव है वे अधःपतन के मार्ग पर ले जाये जाते हैं। यार-दोस्तों के क़हक़हों और चटपटी बातों में संयम की शिक्षाएँ दक़िया-नूसी—'ओल्डफैशंड'—मालूम होने लगती है। और आजकल की शिक्षा ! इसने तो विषकन्या की भाँति न केवल शरीर वरन् मानस एवं मस्तिष्क को भी विष से भर दिया है और हम प्रतिक्षण पतन एवं मृत्यु के पथ पर इंच-इंच अग्रसर होते जाते है। इस अन्धकार में कोई ध्रुवतारा वर्तमान युवक के सामने नहीं है। उसके चारों ओर जो साहित्य बिखरा हुआ है और जिससे वह कुछ सीखना, कुछ पाना

पतन का मार्ग

चाहता है वह विकृत काम-समस्या और सस्ते प्रेम की रगरलियों या विषाद के शोषक तत्वों से भरा हुआ है। बहुत ही थोड़ी पुस्तकें ऐसी हैं कि जिनको पढकर भटकते हुए, दिग्मूढ़ युवक को रास्ते का ज्ञान हो; गुमराह करनेवाली चीजों से मार्केट पटा हुआ है। जब रोगी के फेफड़ों में आक्सिजन जाने की जरूरत है तब गैस से उसका दम घुट रहा है।

पथ-प्रदर्शन का अभाव

मतलब यह कि जीवन के मार्ग पर जिस युवक ने अभी यात्रा आरम्भ ही की है उसके लिए आशा एव पथ-प्रदर्शन की कोई सामग्री नहीं, उसके चारों ओर अधकार है, गड्ढे है और मार्ग काँटों से भरा हुआ है। सामने कोई प्रकाश नहीं। ऐसी विकट परिस्थिति मे यह कोई आश्चर्य नहीं कि हमारे किशोरों एव नवयुवकों की शारीरिक और मानसिक स्थिति इतनी विषम, इतनी दयनीय हो गई है। यह घुना हुआ सीना, ये बैठी हुई आँखें, ये टूटे हुए बाजू और यह मुर्दा-सा बिना हौंस का दिल लिये हुए जो युवक जीवन-मार्ग पर चल रहा है, उससे किस महत्ता की आशा की जा सकती है? इनके समाज मे वह आदमी जो चाय का शौक न करे, जो सिगरेट के धुएँ से जलाकर कलेजे को निर्जीव करने से इन्कार करे, जो आदर्श एव सिद्धान्त की बाते निकाले, जो बिना किसी हिचकिचाहट के सब बुरी-भली बातों मे शामिल होने को तैयार न हो और जो कालेज की छात्राओं अथवा आस-पास की कुमारियों को घूर न सके और घूर कर एक हलकी साँस लेकर दो-चार बेहूदे, बेमतलब शेर न पढ सके वह अप-टुडेट औसत युवकों के समाज मे असस्कृत और असभ्य, मूर्ख और मनोरञ्जन की चीज़ है। इनसे सयम और आदर्श की बातें करो, ये हँस देंगे जैसे आत्म-संयम उस जमाने की चीज़ हो जिसे आज का इतिहास बर्बर युग के नाम से पुकारता है अथवा यह कि वह साधारण आदमियों के लिए बिल्कुल ही असभव एव अव्यावहारिक हो। आश्चर्य तो यह है कि जो आधुनिक युवक विज्ञान

के विजय-नाद को लेकर साहसिकता के स्वप्न देखता है वह भी ब्रह्मचर्य एवं संयम को असंभव और अव्यावहारिक कह बैठता है। जैसे हमारा मन इतना दुर्बल, इतना शिथिल हो गया है कि हम संयम कर ही नहीं सकते।

पर बात यह नहीं है कि युवक चाहे तो संयम कर नहीं सकता। वह कर तो सब कुछ सकता है। वह दुनिया का इतिहास बदल सकता है; वह अपने अट्टहास से संसार को कम्पित कर सकता
दिल तोड़नेवाली बातें है और अपनी साहसिकता एवं वीरता की कथा-
ओं से अगली सन्ततियों के लिए जीवन के मार्ग
की रचना कर सकता है पर वह भूल गया है कि वह अमित शक्तियों का भण्डार है। परिस्थिति, शिक्षा, वातावरण और साहित्य उसको कदम-कदम पर याद दिलाते है कि तू कुछ नही कर सकता, तू कंधा डाल दे; संयम तेरा काम नहीं है, यह सब महात्माओं और विरक्त पुरुषो के लिए है। शेर अपने को भूल गया है; फलतः गीदड़ बन गया है।

मै यह कहता हूँ कि ऐसी पतनशील प्रवृत्तियो के युग मे, जब तुम्हारे चारों ओर प्रलोभन है; जब कृत्रिम, झूठी कलई की हुई घातक
वस्तुएँ तुम्हारा ध्यान बँटाने एवं तुम्हें पथ-भ्रष्ट
सँभलने का वक्त करने को चारों ओर सजाई गई है, जब झूठे,
कुचक्री और दग़ाबाज मित्र तुम्हारे हृदय में अपना
विषैला डंक चुभो देने की ताक मे है और जब स्वार्थी गिद्ध तुम्हारे कलेजे को नोच डालने की ताक में बैठे हैं तब विपत्तियों की इस दुनिया में तुम केवल अपनी ओर देखकर, अपनी आत्मा को पाकर ही बच सकते हो। जब तक तुमको अपने अन्दर विश्वास है; जब तक तुम समझते हो कि दुनिया को, इस प्रलोभन से जर्जर दुनिया को लात मारकर चूर कर दोगे और संयम एवं ब्रह्मचर्य की उस ऊँचाई पर पहुँच जाओगे जहा कोई राक्षसी हाथ नही पहुँच सकता तब तक तुम निश्चय

ही सुरक्षित हो। याद रखो, तुम्हारे चारों ओर खतरे है; शरीर के परिवर्तन के कारण, जीवन-रस से पूर्ण होने के कारण जो गुदगुदी एवं उत्तेजना तुम्हें अनुभव हो रही है वह इस बात की चेतावनी है कि वह वक्त आ गया है जब तुम्हें बहुत सँभलकर चलने की जरूरत है और जब ज़रा-सी गलती तुम्हे पहाड़ की चोटी से एकदम घाटी में पटक देगी। याद रखो कि जब ऊँचाई से पाँव फिसलता है तब आदमी बीच में टिक नहीं सकता। 'एक बार और, फिर सँभल जाऊँगा' यह भावना तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देगी। तुम्हारे अंदर जो बल, वीर्य, जीवन-रस संचित हो रहा है उसका उपयोग है। यह व्यर्थ खिलवाड़ के लिए नहीं

दुरुपयोग मृत्यु है !

है। उसका अन्तःउपयोग केवल शरीर एवं मन के पोषण का है। बाहरी उपयोग भी है। यह प्रजनन का, सन्तानोत्पत्ति का, समाज को श्रेष्ठ संतति देने का कार्य है पर यह कार्य जितना महान् है उसके लिए उतनी ही महती तैयारी करनी पड़ती है। असमय में, बिना उचित समय आये, इसका बहिर्स्राव, फिर चाहे वह सतानोत्पत्ति के लिए ही हो, अत्यन्त अनुचित है और उस थाती का दुरुपयोग है जो तुम्हें प्रकृति से मिली है। यह न केवल तुम्हें निकम्मा कर देगी वरन् ऐसा करके तुम भावी संतति को दुर्बल, निकम्मी, समाज मे स्थान पाने में अशक्त बना दोगे। याद रखो यह वह भूल है जिसका प्रायश्चित्त अत्यन्त कठोर है।

मै तुमसे कहना चाहता हूँ कि इस थाती, शक्ति एव स्फूर्ति के इस स्रोत को खोकर तुम उस भिखारी से भी बुरे हो जाओगे जिस पर सब

सबको भूलकर इसे बचाओ

हँसते है और जिसको ठोकर मारने को प्रत्येक पाँव उत्सुक है। यह वह स्रोत है जहाँ से जीवन का सम्पूर्ण वैभव तुमको मिलेगा। यह ऐसी चीज नहीं जो कल फिर खरीद ली जायगी। यह अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है। यदि तुम ससार में सफलता चाहते हो, यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे सामने, जीवन के सघर्ष में, कठिनाइयों की जो चट्टानें आवें उन्हें तुम अपने

पदाघात से चूर-चूर कर दो; यदि तुम्हारी इच्छा है कि लम्बी से लम्बी एव थकाने वाली मंज़िलें तुम यों पार कर जाओ जैसे तुम्हारे लिए वह एक खिलवाड हो, तो तुम्हें इन खतरों एव प्रलोभनों से, जो तुम्हारे चारों ओर कदम-कदम पर फैले हुए है, सावधान रहना चाहिए। यदि कोई मित्र तुम्हें इनकी ओर खींचे तो ऐसी मित्रता का गला दबोच दो; यदि कोई पुस्तक तुम्हारे दिल में गन्दी प्रवृत्तियाँ जाग्रत करे तो तुम उसे जला डालो; यदि कोई कामिनी या कुमारी मातृत्व या भगिनीत्व के अतिरिक्त और कोई कुत्सित आकर्षण या भाव तुम्हारे मन में पैदा करती है तो अपने दिल पर पड़ने वाली इन बेड़ियों को ठोकर मार कर चूर कर दो। अपने दिल को धोका मत दो; दूसरों को धोका न खाने दो और यह याद रखो कि कम से कम २५ वर्ष तक तुम्हारा शरीर अछूता एवं तुम्हारा मन निर्दोष हो।

मत कहो कि यह असम्भव है। मत कहो कि ये सपने है। मत कहो कि उपदेश देने में क्या रखा है? यह याद रखो कि तुममें उससे कहीं अधिक शक्तियाँ छिपी है जितनी तुम समझते हो और यह कि तुम असम्भव को सम्भव कर दोगे और सपने सत्य में परिणत हो जायँगे। मत कहो कि तुमसे यह न होगा। ऐ युवक, तेरा फौलादी निश्चय वह कवच है जिसे भेदकर कोई वासना तेरे कलेजे तक न पहुँच सकेगी। यह हमारा आश्वासन है। शर्त इतनी कि तू अपने को पहचान और आँखें खोलकर चल।

: ६ :

विवाह का निश्चय और तैयारी

विवाह के विषय में आजकल अनेक प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हो रही हैं। इनमें एक यह भी है कि 'विवाह एक अप्राकृतिक संस्था है' (Marriage is an un-natural institution) परन्तु इसमें सत्य को विकृत करके कहा गया है। बात यह है कि शताब्दियों के अपने जीवन में अनुभव से, मनुष्य ने बहुत कुछ सीखा है और उन अनुभवों के प्रकाश में वह प्राकृतिक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित करता गया है। यही मनुष्य की विशेषता है और इसी विशेषता से उसकी सम्पूर्ण संस्कृति एवं सभ्यता का जन्म हुआ है। इसे ही आध्यात्मिक भाषा मे पशुता के निराकरण एवं दैवी गुणो के विकास का क्रम कहते हैं। इसलिए विवाह इस अर्थ मे तो अवश्य अप्राकृतिक है कि वह हमें प्राकृतिक प्राणियों—पशुओं, पक्षियों—की भाँति केवल काम-प्रवृत्ति की तृप्ति कर लेने की आजादी नही देता। वह इसके साथ कुछ बंधन, कुछ जिम्मेदारियाँ और कुछ नियन्त्रण भी उपस्थित करता है। मानव-समाज पशु-समाज की भाँति केवल प्राकृतिक प्रेरणाओं से ही शासित नहीं है। वह सदा सोचनेवाला है। सदा विचार के अनुसार, स्थिति की आवश्यकता के अनुसार अपने को बदलने और बदल सकने वाला है। उसकी जिम्मेदारियाँ कुछ अपने तक ही सीमित नहीं हैं, अपनी जाति तथा अन्य प्राणियों के साथ भी उसका एक व्यवस्थित, कर्तव्य-निष्ठा से युक्त सम्बन्ध है। इसलिए शुद्ध प्राकृतिक प्राणी तो वह कभी न रहा और कभी रह भी न सकेगा।

क्या विवाह अप्राकृतिक है ?

मानव जाति का इतिहास मनुष्य और प्रकृति के निरतन्र संघर्ष

का इतिहास है। मनुष्य ने, इन हजारो वर्षों में, सतत चेष्टा और परिश्रम से प्रकृति पर, अंशतः, विजय प्राप्त की है और उसे अपने अधिक अनुकूल और अपने लिए अधिक उपयोगी बना सकने में समर्थ हुआ है। उसने प्रकृति को स्वीकार किया है पर उसे अपना बनाकर, उसे अपनी आवश्यकता एवं जिम्मेदारियो के अनुसार ढालकर। इसलिए जब कहा जाता है कि विवाह एक अप्राकृतिक संस्था है तब इसमें मनुष्य के लिए शर्म की कोई बात नहीं हो सकती। हा, गौरव की बात हो सकती है। निश्चय ही जो कुछ प्राकृतिक है वह सब उसी रूप में, मनुष्य के लिए कल्याणकर नहीं।

मनुष्य और प्रकृति का संघर्ष

इसी प्रकार आजकल के अर्द्धशिक्षित युवकों के मुँह से, अनुभव एवं गम्भीर विचार से संस्कृत नहीं पर कहीं पढ़ ली गई और तोते की तरह उगल दी गई, यह बात भी अक्सर सुनने में आती है कि 'विवाह कानून-सम्मत व्यभिचार है' (Marriage is legalised prostitution) पर सच्ची बात तो यह है कि जीवन के विषय में जो अधकचरे विचार हममे प्रचलित हो रहे है और जीवन को टुकड़े-टुकड़े करके देखने की जो विश्लेषक (Analytical) दृष्टि हममें पैदा हो रही है, यह उसी का परिणाम है। इसने जीवन और जगत् के विषय में हमारा सामञ्जस्यात्मक, समन्वयात्मक (Synthetical) दृष्टिकोण शिथिल कर दिया है। अब नारी की बहुत ही ऊपरी धारणा हममें रह गई है और उसी को लेकर अब हम नारी और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करने के अभ्यस्त हो रहे है। दृष्टि की गहराई नष्ट हो गई है और अब वह केवल शरीरगत स्वार्थों तक ही जाती है।

अनेक भ्रमपूर्ण धारणाएँ

ऐसी अवस्था में कोई आश्चर्य नहीं कि 'विवाह कानून-सम्मत व्यभिचार' प्रतीत होने लगे। अन्यथा शुद्ध शरीरिक दृष्टि से भी वह व्यभिचार का लाइसेंस नही, व्यभिचार पर एक नियन्त्रण, एक रोक,

एक बन्धन था और यदि हम मानना चाहे तो आज भी है। अनेक जिम्मेदारियों एवं सामाजिक सम्बन्धों तथा उनकी माँग और दबाव के कारण यह कामप्रवृत्ति को संयत, सुसस्कृत करता है और उसे व्यक्तिगत स्वार्थ एवं तृप्ति की अँधेरी रजनी से बाहर निकाल कर समाज-हित एवं सामूहिक कर्तव्यों के प्रकाश में ले जाता है। वह मनुष्य में अत्मोत्सर्ग की भावना जाग्रत करता है और उसके जीवन की स्वार्थ-धूमिल वासनाओं को मृदु एव कोमल भावनाओ के रूप मे बदलने का प्रयत्न करता है। उसने काम-वृत्ति को प्रेम में परिवर्तित किया है और उसे जीवन की सृष्टि तथा आत्माभिव्यक्ति की अनुभूति एव आनन्द से पूर्ण कर दिया है।

विवाह का उपयोग

मै कहना यह चाहता हूँ कि विवाह में आत्म-रक्षण, आत्म-प्रसारण, आत्म-परिष्करण और आत्म-निवेदन की मानवी एव प्राकृतिक प्रवृत्तियां को पूर्ण प्रकाश मिलता है और पूरी अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। इसमे मनुष्य पग-पग पर अपनी वासनाओं से युद्ध करता और अपने स्वार्थ के साथ दूसरों के स्वार्थ का सामञ्जस्य करने पर विवश होता है। विवाह व्यक्ति की सामाजिकता का प्रतीक है। व्यवहार की दृष्टि से यह जीवन मे एक साथी प्रदान करता है—प्रत्येक अवस्था में एक साथी। अतः मनुष्य-जीवन की अनेक क्षणिक झंझटों से अपने को बचा लेता है और एक प्रकार की स्थायी व्यवस्था, एक 'सिक्यूरिटी' (निश्चिन्तता) का अनुभव करता है। काम-प्रवृत्ति (सेक्स इन्सटिंक्ट) को सस्कृत एव कल्याणकारी होने का मौका मिलता है। और इसके द्वारा जाति (race) का प्रवाह अविच्छिन्न और निश्चित गति से बहता रहता है।

इसलिए सच तो यों है कि विवाह सामान्य मानव जीवन मे एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। वह दो व्यक्तियों का व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है, जैसा आजकल समझा जा रहा है। वह अपने लिए और दूसरों के हित और विकास के लिए परस्पर एकत्र होकर दुःख मे, सुख में,

सर्वदा कार्य करते रहने की एक प्रतिज्ञा का द्योतक है। इसलिए जो युवक विवाह करने की मनोदशा एवं अवस्था को

पहली शर्त

प्राप्त कर चुके हों उन्हें इस विषय में पूरी तरह विचार करके तब जीवन की अगली मंजिल की यात्रा आरम्भ करनी चाहिये। सबसे पहली शर्त तो यह कि इस पवित्र यात्रा के आरम्भ के पूर्व उसे शरीर और मन से पूर्ण स्वस्थ होना चाहिये। विवाह की सफलता के लिए शारीरिक स्वास्थ्य से भी अधिक मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता है। आजकल जो हमारा विवाहित जीवन इतना निरानन्द हो रहा है उसका प्रधान कारण हमारी मानसिक स्थिति है। इसने हमको बड़ा ही तुनुकमिजाज (Touchy) और असहिष्णु बना दिया है और विवाहित जीवन की सुखद धरातल पर जीवित रखने की शक्ति को शिथिल एव निकम्मो कर दिया है। इसने दूसरों का सुख और हित देखने की हमारी आँखें फोड़ दी हैं और केवल अपने क्षणिक मौज की भावना को प्रबल कर दिया है।

इन सब का मूल कारण तो यह है कि हमने आज जीवन की आध्यात्मिकता खो दी है। अब आत्मोत्सर्ग और आत्म-परिष्कार की जगह हममें भोग और स्वाद, मौज और शौक की प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं। विवाह के समय युवकों और युवतियों, दोनों, के मन उन स्वप्निल आकांक्षाओं से भरे होते हैं जो यों देखने में और कल्पना में तो बड़ी लुभावनी लगती है पर जिनके अन्दर भावी दुःख के डङ्क छिपे होते है। जब दुःख की घड़िया आती हैं तब हमें आश्चर्य-सा लगता है कि क्या हो गया ! वह स्वर्ग कैसे नष्ट हो गया ?

इस दुःख और दुःखप्रद स्थिति का कारण यह होता है कि पति और पत्नी दोनो अलग-अलग अपने सुख और अपनी आकाक्षाओं एवं स्वप्नों का संसार लिये फिरते हैं और उसकी पूर्ति के लिए एक-दूसरे से बहुत ज्यादा पाने की इच्छा और आशा कर लेते हैं। अधिकार और भोग की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है और संयुक्त जीवन का दृष्टि-कोण नष्ट

हो जाता है। फलतः दोनों अतृप्त और असंतुष्ट, प्यासे से छटपटाते रहते हैं।

इसलिए जिनको विवाहित जीवन मे प्रवेश करना है और सुखप्रद विवाहित जीवन बिताने की जिनकी इच्छा है उनको विवाह के पूर्व इस प्रश्न पर भली-भाँति विचार कर लेने की आवश्यकता है। यदि विवाह को एक नाटक, एक मनोविनोद, राग-रंग का एक साधन समझते हों तो मै उनसे कहूँगा कि वे भूल कर रहे है और अच्छा हो वे विवाह न करें।

सोचकर विवाह करो

जहाँ राग-रग का भाव है, वहाँ स्वभावतः मनुष्य बहुत नीची नैतिक सतह पर होता है; वहाँ उसमें अधिकार की, अपने सुख की, भोग एवं शोषण की भावनाएँ प्रधान रहती है और वह दूसरे के दृष्टिकोण, दूसरे की आकांक्षाओं और सुख-दुःख के प्रति उदार नहीं हो सकता। जहाँ आत्म-सुख और भोग की प्रवृत्तियों की प्रबलता है तहा आत्म-निमज्जन सम्भव ही नहीं है और बिना आत्म-निमज्जन के प्राण को, आनन्द से पूर्ण करने वाली और जीवन का प्रत्येक अँधेरा कोना प्रकाशित कर देने वाली अनुभूति हो नहीं सकती।

इसलिए विवाहार्थी को अपने आसमान पर उड़ते हुए मन को जमीन पर उतार लेने की आवश्यकता है और यह कि उसे पूर्ण स्वस्थ चित्त से इस प्रश्न पर सोचना चाहिये। उसे अपने सामने विवाहित जीवन का वह चित्र रखना चाहिए जिसमें उसे कर्तव्य और कल्याण का एक लम्बा और सयुक्त जीवन आरम्भ करना है; जिसमें उसे सुखी एवं तृप्त जीवन के लिए कदम-कदम पर अपने पर लगाम रखना होगा, जहा समझौता और सामञ्जस्य के बिना काम नहीं चलता। उसे अपने सामने विवाह का यह बहु-प्रचलित और लोकप्रिय, पर झूठा और दगा देनेवाला, चित्र नहीं रखना चाहिए जहा नारी हमारे स्वप्नो को पूर्ण करती जायगी और जहा जीवन हास्य, विलास और उल्लास से पूर्ण होगा; जहा यौवन

विवाह के झूठे सपने

की शोखियाँ और शरारतें सदा जीवन को मृदुल एवं रसपूर्ण करती रहेंगी। अकसर यह स्वप्न ही हमारे दुःखों का कारण होता है क्योंकि वह ज्यादा देर तक इस संघर्ष से पूर्ण जीवन की गरमी में ठहर नहीं सकता। संसार में, समाज में, कुटुम्ब में, हम अनेक बन्धनों एवं मर्यादाओं से बँधे हैं और हमारी शक्तियाँ सीमित है, इसलिए नारी कामधेनु की तरह सदा सब कुछ देती जाकर भी नित्य नवीन और युवा बनी रहे, यह संभव नहीं है। जीवन का चक्र एक क्षण के लिए भी नहीं ठहर सकता। उसके साथ शरीर भी प्रतिक्षण बदल रहा है और उसका यौवन अक्षय नहीं इसलिए उसका सर्वोत्तम उपयोग तो कर लें पर जीवन की जड़ों को शरीर में ही नियोजित करके न रखें अन्यथा जब शरीर शिथिल हो जायगा या जब रोग, शोक एवं विपत्ति की घड़ियाँ आयेंगी तो आप आकाश से एकाएक ज़मीन पर होंगे और कोई अनुभव इतना दुःखद नहीं होता जितना आकस्मिक परिवर्तन एवं एकाएक जगा दिये जाने का (अनुभव) होता है।

इसलिए विवाहार्थी युवक के लिए एक ओर तो यह आवश्यक है कि वह अपने शरीर को पूर्णतः नीरोग एवं मन को स्वस्थ रखे और दूसरी ओर उस स्त्री से, जिसके साथ विवाह-बन्धन में सहयोग का जीवन बँधने जा रहा है, बहुत अधिक आशाएँ न कर ले। वह समझे कि वह जो उसके साथ जुड़ने आ रही है मनुष्य ही है और उसकी ही भाँति उसमें भी आशाएँ और आकांक्षाएँ, दुर्बलताएँ और अपूर्णताएँ होंगी। युवक को इन सब के साथ उसे ग्रहण कर लेना है और यह कि जहाँ वह अन्धा न होगा तहाँ वह अपनी जीवन-सङ्गिनी के दोषों को देखने पर ज़ोर भी न देगा और यह भी कि उसे निभा लेने की सहिष्णुता अपने से पैदा करेगा। विवाहित जीवन की सफलता के लिए सबसे ज़रूरी शर्त यह है कि पति और पत्नी वादी-प्रतिवादी के रूप में अपने को अनुभव न करें वरन् यह

सोचकर चलें कि हमे एक दूसरे को अपना लेना है और एक दूसरे के हाथ में अपने को दे देना है तथा एक-दूसरे को उठाते हुए, जीवन-यात्रा मे एक-दूसरे का बोझ हलका करते, एक-दूसरे को उन्नत और कल्याण-मार्ग पर अग्रसर करते चलना है। यह भी कि यहाँ से एक नवीन मार्ग चुनना है। वस्तुतः कुमारावस्था ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर मन एवं शरीर को इसी जीवन के लिए स्वस्थ, विकसित एव तैयार करने के लिए है। यह व्यक्ति के निर्माण और सञ्चय का काल है। यह (विकसित जीवन) व्यक्ति से समाज के प्रस्फुटन का, व्यक्ति में समाज को पल्लवित एवं पुष्पित करने का समय है। वस्तुतः यह समाज एवं व्यक्ति का सङ्गमस्थल है। यहाँ से व्यक्ति अपने सामर्थ्य का लोक-कल्याण मे उपयोग करना आरम्भ करता है। उसके हित के साथ समाज का हित जुड़ता है।

व्यक्ति में सामाजिकता का तत्व

हमारे यहाँ विवाहित जीवन में प्रजनन को जो महत्व प्रदान किया गया था उसका एक गम्भीर कारण यही था। आर्य सस्कृति ने सदा रमणी पर माता को प्रधानता दी है। माता में नारी समाज को सर्वश्रेष्ठ दान करने वाले प्राणी के रूप मे प्रकट होती है और विवाह अपनी सामाजिकता एवं जाति (रेस) के प्रवाह को अविच्छिन्न रखने के आदर्श को पूर्ण कर देता है। यह स्वार्थो के सामाजिक, वृहत्तर एवं श्रेष्ठतर रूप (स्वार्थों के Socialisation) का निर्माता है। यह नही कि रमणी का दान हमारे समाज के विकास में कुछ कम है। नहीं, उसने कर्कश पौरुष को मृदुलता की अँगुलियों से सहलाया है और जीवन में कोमल भावनाओं का प्रवेश किया है। उसके आकर्षण ने पुरुष के पौरुष को सदा दुस्साहसिक कार्यो की ओर प्रेरित किया है। उसने हमारे जीवन के कठोर एवं ठोस तत्वों के ऊपर कोमलता एवं मृदुलता की चाशनी चढा दी है। उसने हमारे साहित्य को जाग्रत किया है और अन्ध प्रकृति को रमणीय एवं मानव-सापेक्ष्य रूप मे देखने मे हमारी सहायता की

मातृत्व का महत्व

है । वह समाज का शृङ्गार है और समाज की कला-भावना की जन्म-दात्री है परन्तु मातृत्व मनुष्य के व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ पर समाज के सुख एवं कल्याण की विजय है । वह हमारे जीवन को संस्कृति प्रदान करता है । मातृत्व निज को समाज के चरणों में समर्पित कर देने का एक क्रम है । इसीलिए हमारे यहाँ नारी की, मानव जाति की माता के रूप मे, इतनी अर्चना—पूजा की गई है ।

नारी के इस मातृत्व की प्रधानता के कारण ही विवाहित जीवन मे भोग एवं विषय-सुख पर एक महत्वपूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो सका था । और चूँकि पति-पत्नी का सम्बन्ध केवल विषय-सुख पर आश्रित न था इसलिए नारी अपनी स्वतंत्रता और अपने व्यक्तित्व को न केवल कायम रख सकी थी वरन्, अपने ढङ्ग पर, उसने उसका विकास भी किया था ।

ग़लत दृष्टिकोण

जहाँ विषय- भोग के दृष्टिकोण—रमणी दृष्टिकोण की प्रधानता है तहाँ स्वभावतः पति-पत्नी का सम्बन्ध बिल्कुल निजी रह जाता है और समाज की धारा के साथ उनका सम्बन्ध शिथिल और गौण होता जाता है । वे समाज-जीवन के प्रवाह से कटकर संकुचित क्षेत्र में सीमित रह जाते हैं और सारा जीवन गड्ढे के जल की भाँति दूषित और विषाक्त हो जाता है । फिर विषय-भोग की शक्ति सीमित होंने के कारण उसमें अन्तः-तृप्ति सम्भव नहीं, फलतः कुछ ही दिनों मे पति-पत्नी दोनो एक दूसरे के प्रति असन्तुष्ट और पिपासित रह जाते हैं और सामने कोई व्यापक लक्ष्य न होने से जीवन खीझ, अतृप्ति एवं एक प्रकार की प्रतिहिंसा से भर जाता है ।

आश्चर्य तो यह है कि आज जब नारी ने अपनी स्वतंत्रता और व्यक्तित्व की आवाज़ उठाई है और उसका दावा है कि वह संकुचित सीमा से निकल कर जीवन को व्यापक दृष्टि-कोण प्रदान करने जा रही है तब ये बातें उसकी दृष्टि में नहीं आ रही हैं । वह एक भयानक

लघुता का भाव

प्रतिक्रिया और प्रतिहिंसा का शिकार हो रही है। यह प्रतिहिंसा और प्रतिक्रिया पुरुष के अन्याय और ग़लत दृष्टिकोण के कारण उत्पन्न हुई है पर इसमे अपनी लघुता का अनुभव (inferiority complex) भी कुछ कम नहीं है। क्या अच्छा होता कि नारी इस विद्रोह में अपने विशेष गुणों और अपने व्यक्तित्व को कायम रखती और अपने सम्पूर्ण ओज एवं तेज के साथ मानव जाति की माता के रूप मे हमारे सामने प्रकट होती। उसी ममता और तेजस्विता, उसी सतत आत्मार्पण और दान, उसी मृदुता और मानव जाति के निर्माता के रूप में आती जो युगों से उसकी अपनी विशेषता रही है और जिस रूप में उसे पाकर संसार की सभ्यता पल्लवित और पुष्पित हुई है। उस अन्नपूर्णा के रूप में जिसका दान कभी चुका नहीं और जिसके स्तनों से अक्षय जीवन-धारा, युग और स्थिति के बन्धनों को तोड़कर, बहती रही है और

जिसके स्तनों से अक्षय जीवन-धारा, युग और स्थिति के बन्धनो को तोड़कर, बहती रही है

अन्धकार मे, प्रकाश में, दुःख में, सुख में, सर्वत्र सब काल में मनुष्य जिसका दूध पीकर जी सका है, मनुष्य रह सका है, और उसमे जो कुछ सर्वोत्तम है, उसका विकास कर सका है।

आज तो मुंह से नारी का जो दावा हमने बार-बार सुना है, यह दावा कि वह पुरुष का गुलाम होकर नहीं रहेगी वह उसके जीवन में कहीं कार्यान्वित होता दिखाई नही देता; उसका मुँह और कार्य जीवन उस दावे के विरुद्ध एक हास्यास्पद उदाहरण हो रहा है। मातृत्व का लोक-कल्याणकारी और मानव जाति पर शासन करनेवाला पर उत्तरदायित्वपूर्ण और कष्टकर रूप और आदर्श उसके सामने से दिन-दिन लोप हो रहा है और उसकी जगह रमणी रूप प्रधान होता जाता है। नारी यह भूल बैठी है कि उसके गौरव की स्वतंत्रता रमणी रूप मे कभी अक्षुण्ण नहीं रह सकती क्योंकि नारी के रमणी रूप की सार्थकता पुरुष के बिना नहीं है ; वर्तमान नारी लघुता के अनुभव के कारण प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष का अनुसरण करने में व्यस्त है। नारीत्व नहीं, पौरुष उसका आदर्श हो रहा है। पुरुष के अनुकरण मे उसने जीवन की स्वतंत्र धारणा का नाश कर दिया है। एक ओर लघुता के भाव से पैदा हुआ यह अनुकरण है और दूसरी ओर रमणीत्व की सिद्धि का प्रयत्न है। फैशन, बनाव, शृङ्गार, प्रसाधन की बाढ़ में नारी ने अपना आन्तरिक सत्व, (intrinsic worth) भुला दिया है और बाह्य मूल्य (acquired value) के लिए छटपटा रही है। यह प्रतिदिन के अनुभव का विषय है कि आधुनिक युवती में पुरुष को अपनी ओर आकर्षित करने की प्रवृत्तियाँ अधिक सजग हो रही है और उसे इसके लिए अपने को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने की चिन्ता नारी बनाम रमणी मे बहुत समय एवं शक्ति खर्च करनी पड़ रही है। शरीर को जीवन मे बहुत अधिक प्रधानता मिल गई है और इन सबके कारण रमणी ऊपर आ गई है और पनप रही है जब माता बोझ के नीचे दब गई है। इसका जो फल होना था वही हुआ है। नारी के स्वतंत्र विकास का दावा मिथ्या के गर्त्त मे डूब गया है और जीवन में सर्वत्र भोग और अधिकार की स्वार्थ-पूर्ण

वासनाएँ जग गई हैं। क्या पुरुष, क्या स्त्री दोनों का स्वाभाविक ओज और स्वाभाविक विकास नष्ट हो गया है और लघु आमोद एवं तुच्छ क्रीड़ा-विलास से जीवन पङ्किल हो उठा है। उनके मुखमण्डल पर यौवन की कान्ति क्षणस्थायी होती है। प्राण पंगु से, मद्यप की भाँति, अपने में शिथिल एवं गतिहीन, हो रहे हैं।

इस परिस्थिति मे विवाहार्थी को अपने कर्तव्य के प्रति पूर्णतः जाग्रत होकर चलना होगा तभी वह जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकता है। विवाहित जीवन आनन्द का जीवन तो है पर उससे भी अधिक वह कर्तव्य-पालन एवं उत्तरदायित्व का जीवन है। वह सयुक्त जिम्मेदारियों, संयुक्त प्रयत्नों, सयुक्त उत्थान का जीवन है।

आज के युग मे, और पहले भी, ये बाते कही अनेक बार गई हैं। पर सवाल कहने का, आज, उतना नही है, जितना करने का है। युवक नारे तो बहुत बुलन्द करते हैं पर करते कुछ नहीं हैं। यही हाल पतियों का, या विवाहार्थी, युवकों का भी है। उनकी आशाओं और आकाक्षाओं की कोई सीमा नहीं रह गई है। वे अपनी पत्नियों को उपदेश भी काफी देते है, उनको न जाने क्या-क्या बनाना चाहते है। पर स्वयं शायद कुछ बनना जरूरी नहीं समझा जाता। मानो वे जैसे भी हैं पूर्ण है या स्त्रियों के लिए काफी है। ये बने-बनाये पतिदेव ही विवाहित जीवन के लिए सबसे बड़ा खतरा हैं।

ऐ युवक! एक और बात भी याद रखकर चल। पुरुष समाज ने अपने मानसिक ह्रास के पिछले लम्बे युग में, नारी के साथ सामूहिक रूप से, जो अनुचित और अयोग्य व्यवहार किये हैं उनके कारण आज के युग में उसकी भीषण प्रतिक्रिया और प्रतिहिंसा के स्वर से वातावरण कम्पित है। इस विद्रोह के युग में, आश्चर्य नही यदि नारी ठीक-ठीक विचार न कर सकती हो। सभव है वह नारी जिससे तुम्हारा जीवन जुड़नेवाला है, अपना पार्ट अपनी सच्ची शालीनता के साथ न खेल सके; संभव है उसमें नारीत्व की मृदुलता कुछ कम हो, मातृत्व की ममता

दब गई हो और युग के आवाहन का विद्रोहपूर्ण कर्कश स्वर ऊपर उतरा आया हो। इस अवस्था में तुम्हें अधीर न होना होगा। उसके पीड़ित पक्ष का होने के कारण उसके साथ व्यवहार करते समय तुम्हें अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु बनने की आवश्यकता है। आज के युवक में उन सब अन्यायों के प्रति पश्चात्ताप का भाव होना चाहिये जो पुरुष समाज ने, अज्ञान की एक लम्बी अवधि में, स्त्री-समाज के प्रति किये हैं। यदि तुमने उत्तेजना के क्षणों में भी सच्चे वीर की भाँति शांत, स्थिर-चित्त और उदार रहने की तैयारी कर ली हो तो दाम्पत्य जीवन, अपने काँटों एवं विष के साथ भी, सुखद होगा। इस तैयारी के साथ, युवक, इस जीवन में हम तुम्हारा अभिनन्दन करते हैं!

: ७ :

किससे विवाह करोगे ?

यदि तुम उन विवाह-विज्ञापनों पर नज़र डालते रहो, जो आजकल समाचारपत्रों में निकलते है तो तुम्हें कई मनोरंजक बातें मालूम होंगी।

विवाह के विज्ञापन

लड़कों की आवश्यकता के जो विज्ञापन निकलते हैं उनमें लड़के की शिक्षा और उसकी अथवा उसके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर सबसे ज्यादा ज़ोर दिया जाता है । इसके विरुद्ध लड़कियो में रूप की खोज सबसे पहले की जाती है और उसके बाद यह देखा जाता है कि वह गृह-कलाएँ भी जानती है या नहीं। अक्सर लड़कियों की आवश्यकता के विज्ञापनों में उनके फोटो साथ भेजने का अनुरोध भी होता है और यदि वर पक्ष विशेष 'आधुनिक' हुआ तो यह भी चाहता है कि लड़की लड़के को दिखा दी जाय।

वैसे देखने मे यह साधारण-सी बात मालूम होती है पर इन दो प्रकार के विज्ञापनो के पीछे स्त्री और पुरुष वर्ग की विवाह-सम्बन्धी दृष्टि एवं प्रवृत्ति छिपी हुई है। आजकल जब ईश्वर की कृपा और सुधारकों के शुभ प्रयत्न से परदा उठ गया है, विवाहित-जीवन मे रूप का स्थान दिन-दिन महत्वपूर्ण होता जा रहा है। आजकल का शिक्षित युवक, जो प्राचीनों के विवाहित जीवन पर कटाक्ष करने में बहुत आगे है, अपने

आशाएँ और आकांक्षाएँ

मन मे एक गुदगुदी-भरी आकाक्षा जरूर पाल रखता है और वह यह कि उसका विवाह किसी ऐसी सुंदरी से होगा जो स्वप्न-सी आकर्षक और मदिरा-सी नशा उत्पन्न करने वाली होगी; जिसके कमल-नयनों मे यौवन का पराग फूट रहा होगा और मुख पर चाँदनी खेल रही होगी और जिसे देखकर मित्र ईर्ष्या करेंगे और उसके भाग्य को सराहेंगे।

जो युवक संकोची होने का अभिनय करता है और कहता है कि मैं इस विषय में क्या कह सकता हूँ, वह भी यह जानने के लिए तड़पता रहता है कि उसकी भावी पत्नी सुन्दरी है या नहीं । यदि कही मा या किसी के मुँह से वह सुन लेता है कि भावी बहू चाँद-सी है तो उसकी बाँछे खिल उठती है और यद्यपि वह ऊपर से यह दिखाने की ज्यादा से ज्यादा कोशिश करता है कि उसको इन बातों में कोई रस नहीं मिल रहा है और वह अपनी ओर से उदासीन है किन्तु उसका दिल, असल में, उछल रहा होता है ।

ऐसा क्यों है ? क्या कारण है कि लड़की को देखने जाकर, युवक बिना उसकी योग्यता, उसका स्वभाव, उसकी स्त्रियोचित विशेषताओं को जाने ही, केवल उसके सौंदर्य पर रीझ जाता है और अन्य गुणों की इतनी अपेक्षा नहीं रखता । मै मानता हूँ कि इतिहास में अत्यंत प्राचीनकाल से पुरुष अपनी इस प्रवृत्ति को बार-बार प्रदर्शित करता रहा है । चन्द्रमुखियों पर रीझकर उसने धर्म को तिलाजलि दी है, मृगनयनियों के लिए इसने हजारों का खून बहाया है। पर तब पुरुष को अपने बुद्धवादी होने का अभिमान न था। आज की सन्तति की भाँति उसने बुद्धि को प्रधानता भी न दी थी। आज का युवक तो प्राचीनों की भाँति परम्पराओ का गुलाम नहीं है· उसमे अध श्रद्धा भी नहीं है और वह किसी बात को तर्क किये बिना मानने को भी तैयार नहीं है फिर भी एक रूपसी रमणी उसे उन अंध-विश्वासी प्राचीनों से अधिक लुभाती है और रूप की प्रज्वलित शिखा के सामने युवक की आँखों में वह चकाचौंध छा जाती है कि अपने जीवन की एक गम्भीर समस्या पर वह शात एवं निरुद्विग्न होकर विचार नहीं कर सकता । और, यद्यपि प्राचीनकाल में भी पुरुप को रूप ने बार-बार पागल बनाया है पर उसने पुरुष वर्ग में, समष्टि रूप से, अपने प्रति प्यास उत्पन्न करने में कभी इतनी सफलता प्राप्त न की थी। आज का औसत शिक्षित युवक सुकुमारियों के पीछे भौंरे-सा प्रलुब्ध घूमता है।

चन्द्रमुख बनाम सुन्दर हृदय

कालेजों में रूपवती लड़कियों का पढ़ना मुश्किल हो जाता है।

यद्यपि नारी में भी पुरुष के रूप के प्रति प्रलोभन कुछ कम नहीं पर स्वभावतः वह पुरुष मे साहसिकता, सच्चे पौरुष एवं वीरता की आशा रखती है। यह बात तय-सी है कि नारी पुरुषार्थ की, शक्ति की पुजारिन है। वह वीरता और साहस चाहती है। वह दुस्साहसिकता को पसन्द करती है, जब युवक नारी के रूप पर पागल हो जाता है।

मैं यह नहीं कहता कि जीवन में रूप का स्थान नगण्य है। सम्पूर्ण प्रकृति में रूप का, प्रजनन एवं सृष्टि की क्रिया में, एक विशेष कार्य—'रोल'—है। यदि फूलों में रङ्ग न हो तो तितलियाँ, मक्खियाँ और भौंरे उधर आकर्षित न हों। रङ्गों के आकर्षण से ही पुष्पों के साथ उनका सम्पर्क स्थापित होता है एवं पुष्पों मे गर्भाधान की क्रिया होती और यों फल लगते है।

रूप का महत्व

इसलिए नारी मे रूप को देखने की पुरुष-प्रवृत्ति सर्वथा अवाञ्छनीय तो नहीं है; उसका भी एक महत् उद्देश्य है। वह दोनो के प्राकृतिक संसर्ग को निकट लाने और उसे मृदुल बनाने के लिए है। वह पुरुष मे उस ममत्व और उस श्रेष्ठ प्राकृतिक सानिद्धय की भावना को जाग्रत करता है जिसके बिना स्त्री-पुरुष का सम्मिलित और संयुक्त जीवन न चरितार्थ हो सकता है और न अपने महान् उद्देश्यो की पूर्ति कर सकता है। प्राणी में जो स्रष्टा है, नवीन जीवन के सृजन की जो भावना है, जो सुप्त चैतन्य है उसे यह स्पर्श करके गुदगुदाता और जगा देता है और इसके कारण ही पुरुष की कर्कशता किंचित् मृदुल और प्रेमल होती है।

परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि जीवन-साथी के चुनाव में रूप ही सर्वश्रेष्ठ आवश्यकता है। यह कहना अतिशयोक्ति ही होगी कि दाम्पत्य जीवन स्त्री के रूपवती होने से सफल हो जायगा। वस्तुतः विवाहित जीवन में रूप का स्थान, एक सीमा तक होते हुए भी वह, बहुत गौण है। यह बिल्कुल सम्भव है कि नारी के रूपवती न होने या

कम रूपवती होने पर भी तुम सुखी हो सकते हो और यह असम्भव नहीं कि रूपवती लड़की से विवाह करके भी तुम्हारा जीवन उस अमृत से वञ्चित ही रह जाय जिसके बिना विवाहित जीवन नरक है। बात यह है कि विवाहित जीवन का सुख काव्य का काल्पनिक आनन्द नहीं है। यह इसी लोक में घोर परिश्रम-द्वारा एक ऐसे जीवन का निर्माण करने का प्रयत्न है जिसमें नारी और पुरुष एकत्र रहकर और संयुक्त होकर अपनी परिपूर्ण अभिव्यक्ति कर पाते और स्वार्थ एवं परार्थ का समन्वय करते हुए जाति रेस के प्रवाह को अविच्छिन्न रखते हैं।

इसलिए विवाहित जीवन के सुख का विज्ञान अन्य सब विद्याओं से भिन्न और कठिन है। मैंने अत्यन्त सुशिक्षित एवं पण्डिता नारियों को विवाहित जीवन में असफल होते देखा है। मैंने अत्यन्त रूपसी कवियत्रियों को इसमें आकर असफलता एवं निराशा की धारा में वह जाते देखा है। इसलिए मै कहना चाहना हूं कि यदि तुम विवाहित जीवन को सुखपूर्ण एवं कर्तव्यमय बनाना चाहते हो तो दिल को सस्ती भावुकता की धारा में मत बहने दो; स्वप्न-जाल में मत फँसो और अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखो और तब शान्त होकर निर्णय करने वैठो।

केवल रूप को देखकर जीवन-संगिनी का चुनाव न करो। यह तुम एक बड़ी अस्थायी चीज़ पर जीवन की दीवार खड़ी कर रहे हो। याद रक्खो, जीवन में आँधियाँ भी आयेंगी और भूकम्प भी होंगे और तब यह दीवार उनके धक्कों को बर्दाश्त न कर सकेगी। तब तुम बेहाल होओगे और सुखी होने की जगह जीवन निराश एवं बोझिल हो जायगा।

इसलिए मै कहना चाहता हूँ कि अपनी संगिनी का चुनाव करते समय तुम जितनी सावधानी एवं विवेक से काम लोगे उतना ही तुम्हारा भविष्य चितारहित होगा। पहली बात तो विवेक से काम लो! यह है कि तुम्हारी भावी जीवन-संगिनी का स्वास्थ्य कैसा है। स्वस्थ नारी गृह एवं समाज के लिए वरदान है। नारी को मातृत्व की ज़िम्मेदारियाँ उठानी पड़ती हैं और

इसमें उसके शरीर का क्षय होता है। इसलिए यदि वह पूर्ण स्वस्थ न हुई तो रोगिणी होकर जीवन पर एक बोझ हो जायगी और अपने बच्चों को भी, यथेष्ट पुष्टिकर दूध न दे सकने के कारण दुर्बल, निस्तेज और रोगी बना लेगी। गृह-जीवन से प्रसन्नता की चाँदनी नष्ट हो जायगी और उस पर निराशा, खीझ, असन्तोष और दुःख के बादल छा जायँगे। मैंने ऐसी कई घटनाएँ देखी है, जिनमें नारी सुशिक्षित थी; रूपवती थी और उसमे अन्य गुण भी थे पर उसका दुर्बल स्वास्थ्य दाम्पत्य जीवन की महती जिम्मेदारियों को न सँभाल सका और उसका जीवन उस अर्ध-मुरदे के समान हो गया जिसमे धीरे-धीरे साँस चल रही हो और वह सब की चिन्ता एव बोझ का कारण हो गया हो। ऐसी नारी, सदेच्छु होकर भी, गृह को निरानन्द बना देती है। इसलिए अपनी सगिनी चुनते समय तुम ख्याल रखो कि उसका पूर्णतः स्वस्थ होना तुम्हारे एवं उसके भावी संयुक्त जीवन सुख के लिए पहली शर्त है।

अच्छी स्वस्थ स्त्री का यह मतलब नहीं है कि वह मोटी-ताजी हो। अक्सर पतली-दुबली स्त्रियाँ जीवन की जिम्मेदारियों को वहन करने में अधिक समर्थ सिद्ध होती है। स्वस्थ नारी का मतलब यह है कि उसके शरीर मे पर्याप्त रक्त हो, उसकी हड्डियाँ न दिखाई देती हों, उसकी बाढ़ अच्छी हो, उसके चेहरे पर ओज हो। वह काम करने मे सुस्त न हो। उसके शरीर में चुस्ती और फुर्ती हो और वह शोषणकारी रोगों, विशेषतः मासिकधर्म की अनियमितता एवं प्रदर इत्यादि, से मुक्त हो।

सहिष्णुता

दूसरा गुण, जिसकी विवाहित जीवन मे अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है, पति पत्नी की सहिष्णुता है। यह याद रखना होगा कि विवाहित जीवन संयुक्त जीवन है। इसमें दो व्यक्तियों की दो स्वभाव-धाराएं मिलकर एकत्र होती हैं। स्वभावतः ऐसे अवसर आते हैं जब जरा सी जल्दबाज़ी और असहिष्णुता से तिल का ताड़ हो जाता है। गुस्से

में कई बार आदमी मुंह से ऐसी बातें कह जाता है जिनको दिल से वह नहीं पसन्द करता। ऐसी बातों को लेकर अगर उनका जवाब दिया जाय या उन पर क्रोध किया जाय तो गृहस्थ जीवन चल नहीं सकता; उसका सुख नष्ट हो जाता है, पति पत्नी के दिल एक-दूसरे से फट जाते हैं और दोनों प्यासे-से छटपटाते रहते है।

जब मनुष्य निर्दोष हो, फिर भी उस पर कोई क्रोध कर रहा हो तब शांत रहना बड़ा ही कठिन काम है। अपने उत्तेजित मन पर काबू रखना सबका काम नहीं। हमारी जीभ बोलने के लिए उतावली हो उठती है पर क्षण भर के असंयम से सारे जीवन का सुख नष्ट हो जा सकता है। इसलिए क्षण भर दुःख पा लेना, मन के दुःख को दबा लेना इसकी अपेक्षा कहीं बुद्धिमानी होगी कि जवाब देने के लोभ में हम अपने सारे जीवन के सुख को नष्ट कर दें। जीवन-युद्ध में जर्जर और जीविकोपार्जन के व्यवसाय में शिथिल, प्रताड़ित, व्यथित एवं अपमानित पुरुष कई बार खीझ मे आकर स्त्री से कोई कड़ी बात कह बैठता है। इसमें दोष न स्त्री का होता है और न पुरुष का। मन की पीड़ा और विवशता प्रकारान्तर से बाहर निकल पड़ती है। पुरुष की इच्छा कुछ स्त्री का मन दुखाने की नहीं होती; जो कुछ वह कहता है वह उस काँटे की करक होती है जो उसके मन को दुःख दे रहा है और जिसे अन्दर रखने और जिसको निर्मूल करने मे वह असमर्थ होता है। ऐसे समय यदि नारी में सहिष्णुता न हुई और उसने संकुचित दृष्टिकोण से इस पर विचार करके मन को मलिन और ज़बान को तेज कर लिया तो इसका परिणाम इसके सिवा और क्या हो सकता है कि दिलों मे खाईं पैदा हो जाय और जीवन के सपने और हौसले मुर्दा पड़ जायँ। इसलिए यद्यपि पुरुष को भी स्वभाव संयमित कर लेने की पूरी आवश्यकता है पर गृहस्थ-जीवन का माधुर्य और सुख मुख्यतः नारी के स्वभाव की मृदुता और सहिष्णुता पर निर्भर है। कुटुम्ब में जहाँ अनेक आदमी अनेक विचार, संस्कार एवं प्रवृत्तियों को लेकर

रह रहे है, यह बिल्कुल संभव और स्वाभाविक है कि कुछ ऐसी बाते होती रहें जो परिवार के किसी सदस्य को अप्रिय लगें पर ऐसी बातों पर ज्यादा ध्यान देने या उन पर सकुचित दृष्टि से विचार करने से ये जरा-सी घटनाएँ या बाते सब के लिए बड़ी दुःखद बन जा सकती हैं। नारी का गृह से विशेष सम्बन्ध रहता है इसलिए उसमे अपेक्षाकृत अधिक शाति, मृदुता और सहिष्णुता की आवश्यकता होती है।

पर सहिष्णुता का यह अर्थ नहीं है कि केवल हम चुपचाप किसी बात को सह लें। मै एक स्त्री को जानता हूँ जो गृहस्थ-जीवन के कष्टों एवं कठिनाइयो को सहन करने मे परिवार की अन्य स्त्रियों से बहुत आगे है पर इससे परिवार की शाति जरा भी नहीं बढी है और रह-रहकर धातु के वर्तनो की भाँति सारा परिवार झनझना उठता है। बात यह है कि वह स्त्री सहन तो करती है पर क्रोध और खीझ के साथ सहन करती है। धुआँ उसके कलेजे में भरता रहता है और वह अवसर पाते ही अपनी सारी भयानकता के साथ प्रकट होता है। यह स्त्री कुछ वर्षो पूर्व शात एवं मृदु स्वभाव की थी पर आज उसके सम्पूर्ण जीवन मे कर्कशता व्याप्त हो गई है। उसने हँसी-आनन्द की अनुभूति मजाक की बातों मे भी मुँह लम्बा कर लेने का अभाग्यपूर्ण ढंग इख्तियार कर लिया है। इसकी वजह यही है कि ऊपर से तो वह सहती रही पर अन्दर से उसने अपने को उदार नहीं बनाया। इसका क्या फल हुआ ? एक ओर उसका जीवन दुःख, खीझ और कर्कशता से भर गया और दूसरी ओर परिवार की शाति नहीं बढ़ी—हाँ, दुःख और अशाति मे वृद्धि अवश्य हुई। ऐसी सहिष्णुता और कष्ट-सहन का कोई मूल्य नहीं है। इसमे न सहनेवाले को सुख मिलता है और न जिनके लिए कष्ट सहा जाता है उन्हे ही शाति मिलती है। वस्तुतः यह सहिष्णुता नहीं बलात्कार और प्रतिहिसा है। सहिष्णुता मे विवशता का भाव नही होना चाहिए और वह इस विवेक के साथ होनी चाहिए कि इसमे हम सबका सम्मिलित स्वार्थ या

कल्याण सुरक्षित है। इसलिए सच्ची सहिष्णुता के साथ सदा कल्याण के लिए किये जाने वाले आत्मोत्सर्ग से उत्पन्न आह्लाद एवं आनन्द का अनुभव होता है।

इसलिए गृहस्थ-जीवन के सुख एवं सफलता के लिए पंडिता एवं गर्ववती नारी की अपेक्षा मृदु एवं संस्कृत स्वभाववाली नारी की अधिक आवश्यकता है। वह स्त्री जो उत्तेजित हो रहे पति की बातों का जवाब मृदुतापूर्वक दे और यों बोले मानों शर्बत घोलती हो; जो अनुचित बातों पर भवें टेढ़ी करके मुँह लटका लेने की जगह हँसी-खुशी में उसे उड़ा दे, शीघ्र ही गृह की रानी बन जाती है और पति-द्वारा कभी उपेक्षित नहीं हो सकती। वह अपने स्वभाव की शीतलता, अपने हास्य की चाँदनी

ज्ञान-गर्विता नहीं, मृदुला

गृहस्थ जीवन के लिए ज्ञान-गर्विता नहीं, मृदुला की आवश्यकता है।

और अपने उदार स्वभाव की सहानुभूति से आस-पास के बढ़ रहे टेम्परेचर (तापमान) को शीघ्र कम कर देती है और दो मिनट पहले, जरा-सी गलती से या दूसरा मार्ग ग्रहण करने से जो घर नरक हो उठता वह पति-पत्नी के मृदुल हास्य एवं बच्चों की आनन्दभरी किल-

कारियों से गूँज उठता है। सारा खेद और विषाद आनन्द के इस प्रवाह में बह जाता है। मन निर्मल हो जाता है और दिलों की मुरझाती हुई कलियाँ खिल उठती हैं। थका एव शिथिल पुरुष जिन्दगी की लड़ाई के लिए नई शक्ति प्राप्त कर लेता है और दुनिया की आँधियों में बुझता हुआ दिल का दीपक स्नेह से पूर्ण होकर फिर प्रकाश से चमक उठता है।

इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि अपनी जीवन-सगिनी के चुनाव के समय तुम्हें उसके सहिष्णु एवं हँसमुख स्वभाव का बड़ा ध्यान रखना चाहिए। यह एक ऐसा गुण है जो जीवन की कड़ी मजिल की आधी कठिनाइयों को दूर कर देता है।

परिश्रमी कन्या

तीसरी बात जो तुम्हें कन्या में देखनी चाहिए वह उसकी परिश्रम की वृत्ति है। आलसी पुरुष या स्त्री दोनों, समाज के लिए, भयंकर हैं पर समाज की निर्माता होने के कारण आलसी स्त्री कुटुम्ब और समाज के लिए अभिशाप है। आलस्य और बेकारी वह विष है जो न केवल शरीर को नष्ट कर देता है वरन् दिमाग़ और मन को भी पंगु बना देता है इसमें जीवन की सम्पूर्ण स्फूर्तियाँ सुप्त हो जाती हैं और मन संकुचित, कलुषित और दूषित विचारों से भर जाता है। इसलिए बुद्धिमान और सफल गृहणी कभी बेकार नहीं रहती।

उदार स्वभाव

चौथी बात स्वभाव की उदारता और प्रेमलता है। अनेक स्त्रियाँ घर के लोगों, नौकर-मजदूरनियों के साथ बड़ा कठोर व्यवहार करती है। वे क़दम-क़दम पर यह दिखाने को व्याकुल रहती हैं कि मैं इस घर की मालकिन हूँ। ऐसी स्त्रियाँ बहुत जल्द अपना प्रभाव खो देती हैं। यद्यपि गृह तथा सेवकों पर नियन्त्रण रखना योग्य गृहणी का कर्तव्य है पर उसे यह भी जानना चाहिए कि प्रेम का शासन केवल अधिकार के शासन से कहीं शक्तिशाली होता है। प्रेम के साथ नौकरों से उससे कई गुना ज्यादा

काम कराया जा सकता है जितना कठोरता और दण्ड-भय से संभव है। प्रेमपूर्ण व्यवहार से काम लेनेवाली स्त्री अपने नजदीक मित्रों एवं सच्चे हितैषियों का एक दल एकत्र कर लेती है और इसके कारण उसकी एवं उसके पति एवं परिवार की जीवन-यात्रा बड़ी सरल और सुखद हो जाती है।

पाँचवीं बात, और एक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण, जिसका विचार विवाह के पूर्व करना चाहिए, लड़की का गृहकला का ज्ञान है। गृहस्थ-जीवन एक कला ही है। जो नारी पति के आने पर अस्त-व्यस्त एवं बिखरी हुई चीजों के साथ उसका स्वागत करती है वह गृहस्थ-जीवन का सच्चा सुख प्राप्त करने में कभी सफल न होगी। योग्य गृहणी वह है जो घर को सोना बनाती है और जिसके आगमन से कल तक रोता हुआ गृह हँसने लगता है। उसका सब कार्य एक व्यवस्था एवं तरतीब से होता है। वह जानती है कि कौन-सी चीज़ कहाँ रखनी चाहिए। वह पति की आर्थिक कठिनाइयों मे उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करती है और अनावश्यक वस्तुओ के लिए उन्हें तंग नहीं किया करती।

गृह-कला में प्रवीणता

इन सद्‌गुणों के बाद तुम्हें विद्या और रूप का विचार करना चाहिए। केवल रूप को देखकर कोई निर्णय मत करो। हो सकता है कि तुम्हारे साथ पढ़नेवाली लड़की ने अपनी शरारत, शोखी और सौन्दर्य से तुम्हारे दिमाग पर नशे की तरह अधिकार कर लिया हो। तुम समझते हो कि हम दोनों दिल से एक दूसरे को चाहते हैं। तुम्हारा कहना है कि बिना उस लड़की के तुम्हारा जीवन सुखी नही हो सकता और तुम दूसरे के साथ शादी करने की बात मन में भी नहीं ला सकते। यह जवानी ऐसी ही चीज़ है; यह दिलों में बेकरारी पैदा करती है और भविष्य के प्रति बड़ी जल्दबाजी से काम लेती हैं पर मैं कहूँगा कि जल्दी मत करो; जो ज्वार तुम में उठा है, उसे ठिकाने लगने दो और तब शान्ति के साथ सोचो कि तुम्हारी मानसिक दशा क्या है। क्या तुम

शान्ति के साथ और निरुद्वेग होकर अपने सम्बन्ध में ठीक-ठीक विचार करने की स्थिति मे हो ? भावावेश में निर्णय मत करो, वह दोनों के लिए दुखदायी होगा। मैं ऐसे कई उदाहरण दे सकता हूँ जिसमें विवाह के पूर्व लड़का लड़की दोनों एक दूसरे को चाहते थे ; उनका कहना था कि यह रूपजनित मोह नहीं है, हम दिल से प्रेम करते हैं पर विवाह के बाद वे प्रेम के सपने बहुत जल्द खत्म हो गये। बेचारी स्त्रियाँ अक्सर ऐसे मामलों में ज्यादा घाटे का सौदा कर लेती है। स्त्रियों के लिए बहुत जरूरी है कि वे पुरुषो के रूप-जनित आकर्षण को बहुत मूल्य न दें; मै तो कहूँगा कि जो स्त्री अपने रूप का उपयोग पुरुष को आकर्षित करने मे करती है, उसके भाग्य में पछताना ही बदा है क्योंकि वह दाम्पत्य जीवन का आरम्भ पुरुष की हलकी वासना को जगाकर करती है और जब जीवन के मध्याह्न के बाद यौवन और रूप की दोपहरी ढलने लगती है तो रूपलोभी या रूप के पीछे आया हुआ पुरुष विरक्त होने लगता है। जो सहयोग रूप की नीव पर खड़ा किया गया है और जिसमें आत्म-नियंत्रण, त्याग तथा जीवन के स्थायी तत्व नहीं है वह अधिक दिनों तक चल ही कैसे सकता है ?

रूप बनाम प्रेम

अक्सर आजकल रूप तृष्णा को प्रेम समझ लिया जाता है। रूप-तृष्णा में अधिकार और भोग की लालसा होती है, जब प्रेम प्रेमास्पद के लिए अपने सुख और सुविधा का बलिदान करने को तैयार होता है। सच्चे प्रेम की नींव बाह्य रूप मे नहीं, उससे कहीं गहरी होती है और उसके साथ सदा उत्कट भावना और कर्तव्य तथा कल्याण की इच्छा लगी होती है। इसलिए विवाहित जीवन में वे लोग अधिक सफल होते हैं जो एक उदार दृष्टिकोण और कर्तव्य को लेकर चलते हैं। सुनहले स्वप्नों के जाल जीवन की कठोर वास्तविकता के धक्कों में टूट जाते है। क्योंकि पति-पत्नी का जीवन केवल उन्हीं तक नहीं होता और उनको समाज की कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। उसे जीविका के लिए, जो

जीवन की समस्त स्थूल आवश्यकताओ मे सबसे प्रबल आवश्यकता और शक्ति है, दुनिया के बयाबान में कांटों पर चलना पड़ता है। और जब पैर कांटों से छलनी हो रहे हों और दिलों को घोर प्रतियोगिता की सर्द हवाएँ शिथिल किये डालती हों तब सदा प्रेम के कोमल एव लुभावने सपने देखने हुये चलना संभव नहीं है।

इसलिए जिसे आज-कल प्रेम-विवाह कहा जाता है उसकी अपेक्षा कर्तव्य-विवाह अधिक सफल होता है। पहले में जहाँ आकांक्षाएँ और आशाएँ बहुधा काल्पनिक होती हैं और अतिशयोक्ति की सीमा तक बढ़ी होती हैं तहा दूसरे में आदमी वास्तविकता की भूमि पर होता है। जब मै कर्तव्य की प्रधानता की बात कह रहा हूँ तब मै प्रम की श्रेष्ठता को भूला नहीं हूँ। मै मानता हूँ कि दाम्पत्य जीवन, क्या सम्पूर्ण मानव-जीवन, सम्पूर्ण समाज-जीवन प्रेम के बिना आत्मरहित शरीर के समान है; इसके बिना सब कुछ जड़, स्फूर्तिहीन और चेतना-रहित है। जगत में जो कुछ है प्रेम का ही विस्तार है; उसी की प्रकृति और विकृति है। पर मेरा कहना इतना ही है कि जहाँ प्रेम उद्वेग से धुधला और स्वार्थ से पङ्किल है तहाँ वह विकृत होकर विप का काम करता है। वस्तुतः वह प्रेम होता नहीं। प्रेम सब कुछ देकर भी सदा अपने मे परिपूर्ण होता है। पर इतनी बारीकी में जाना सबके लिए सम्भव नहीं अतः मै इसे यों कहूँगा कि जो प्रेम त्याग से नम्र नहीं है और विवेक से प्रकाशित नही है उसे प्रेम समझने की भूल मत करो। सच्चा प्रेम सदैव विवेक से परिष्कृत होता है। प्रेम और विवेक दोनों का उपयुक्त सामञ्जस्य करके चलना ही गृहस्थ जीवन और मानव की परिपूर्णता का साधन है। भारतीय विवाह एक व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है। तुम स्नेह किसी से कर सकते हो। यह मानव का व्यक्तिगत अधिकार है पर तुम जिस किसी से विवाह नहीं कर सकते। विवाह तुम समाज के एक घटक के रूप में करते हो। इससे तुम दोनों का ही नहीं समाज का भी गहरा सम्बन्ध है

प्रेम-विवाह बनाम कर्तव्य-विवाह

और समाज तुम्हे बिल्कुल निर्बन्ध नहीं कर सकता।

इसलिए जहाँ जीवन-स गी के चुनाव का सवाल है तहाँ हृदय और मस्तिष्क दोनों का स तुलन करके और शान्त होकर, पूरी गम्भीरता के साथ विचार करना चाहिए। तुम्हें न केवल अपने वर्तमान का वरन् भविष्य का भी पूरा ख्याल रखना चाहिए। अपने जीवन के लिए तुम ज़िम्मेदार हो; चुनाव का अन्तिम निर्णय तुम पर निर्भर करता है। तुम सोचो और निर्णय करो पर यह कुछ बुरा न होगा कि तुम अपने निर्णय में उन बुज़ुर्गो को भी शरीक होने दो जिन्होंने दुनिया देखी है और जो जीवन के उतार-चढ़ाव के बीच से गुजरे है। जैसा आज-कल युवक सोचते हैं, उनकी सम्मति बिल्कुल व्यर्थ नही होती। कम से कम उन्हें उस पर गम्भीरता के साथ विचार तो करना ही चाहिए। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि केवल क्षणिक बातो पर मत जाओ। जीवन का, भविष्य का भी ध्यान रखो। आज यौवन ने तुम्हें उमंगों पर चढ़ा रखा है, तुम इतराते फिरते हो, तुम कहोगे ये बूढ़े यों ही बकते हैं। मै मानता हूॅ, एक सीमा तक सच्चाई तुम मे भी है। मै नहीं कहता कि इस जवानी में जो आत्म-विश्वास तुममे उठ रहा है, उसका गला घोंट दो। मै भी चाहता हूॅ कि तुम्हारा जीवन आशा और विश्वास के प्रकाश से प्रदीप्त हो। पर मै यह भी कहता हूॅ कि जब ये स्वप्न टूटे जायॅगे, जीवन मोर की भाँति नृत्य करके थक जायगा, जब कठिनाइयों से भरी प्रखर दोपहरी तुम्हारे मार्ग को उत्तप्त कर देगी या संध्या का गहरा अंधकार क्षितिज पर छा जायगा तब कल्पना के रंगीन घोड़े काम न देंगे। तब तुम्हे ये बातें याद आयेगी पर तब केवल पछताना ही हाथ रहेगा।

इसलिए मै कहता हूॅ कि जीवन के ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर कोरी भावुकता से काम न लो। सोचो, किन गुणों, किन साधनों को लेकर सुखपूर्ण विवाहित जीवन की रचना की जा सकती है। अपने मन को तौलो; अपने स्वभाव को परखो; और जिससे विवाह होना है उसके

स्वभाव के विषय में अवश्य पूरी जानकारी प्राप्त करो।

मै कभी यह सलाह न दूंगा कि तुम भावावेश में कोई निर्णय करो, न मै यह चाहूँगा कि श्रेष्ठ हितों के अलावा कोई दूसरे दबाव के कारण तुम निर्णय करो। तुम परम्परा और कुरीति के आगे मत झुको पर फैशन एवं सस्ती भावुकता के दबाव से भी मुक्त रहो।

—और अब निर्उद्विग्न मन से निर्णय करो कि किससे विवाह करोगे?

: ८ :

अपनी स्त्री से क्या चाहते हो ?

हमारे सामाजिक जीवन मे जितनी जटिल समस्याएँ हैं, उनमें दाम्पत्य जीवन की समस्या सबसे उलझी हुई है। यह एक चिरन्तन समस्या है। इसका क्षेत्र सार्वदेशिक है और यह प्रत्येक वर्ग के जीवन को स्पर्श करती है। दुनिया में ऐसे सार्वदेशिक और सार्वजनिक महत्व की कदाचित् ही दूसरी कोई समस्या हो। न केवल व्यक्ति का, वरन् समाज, देश, मानवता और सभ्यता के भविष्य का इससे अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। फिर भी आश्चर्य यह है कि बहुत ही कम विचारक इसकी गहराई में प्रवेश करते हैं अथवा इसपर गंभीरतापूर्वक विचार करते है। आँख खोलकर दुनिया को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

एक सार्वदेशिक समस्या

मिस्टर 'क' एक अच्छे लेखक है। अच्छे विचारक भी समझे जाते हैं। देश, समाज और सस्कृति की समस्याएँ सुलझाने और उन पर रायजनो करने का आपको शौक़ है। ईमानदार आदमी है और उससे भी ज्यादा अपनी ईमानदारी मे विश्वास रखते हैं! हर समस्या पर उनके नपे-तुले नुस्खे हैं। पर गृहस्थी की 'झ झटों' से बेज़ार रहते है। दिल उसमें अपने को शान्त और सन्तुष्ट नहीं पाता; कुछ उलझा और परीशान-सा रहता है। शिकायतों का अन्त नहीं होता। वह बिना पत्नी के शायद कुछ बुरे न रहते। अथवा वह पत्नी ही इनसे कम प्रतिष्ठित और कम संस्कृत पुरुष को पाकर कुछ विशेष असुखी न अनुभव करती।

एक लेखक

मि० क—लेखक मि० पी—अभिनेता

एक अभिनेता

मिस्टर 'पी' एक अच्छे अभिनेता है । एक बड़ी फिल्म कम्पनी में ऐक्टर हैं । अभिनय में उनको सफलता भी मिली है । अच्छा वेतन मिलता है । बँगला है; गाड़ी है । दावतों, पार्टियों, पिकनिक का दौर चलता रहता है । सिद्धान्तवादिता को पाखंड समझते है । इनके लिए ज़िन्दगी बस खाने-पीने और मौज उड़ाने की चीज है । बेतकल्लुफ आदमी है। जरूरत हो तो दूसरो को बेवकूफ बनाने से नहीं चूकते । मानव-चरित की गहरी जानकारी का दावा करते है । पर घर आते हैं तो मानो उतने वक्त तक उनको ज़बर्दस्ती तपस्या करनी पड़ती हो । वैसे पत्नी से कोई दुर्व्यवहार नहीं । पत्नी भी साधरणतः रूपवती, स्वस्थ और समझदार है । फिर भी इनको तृप्ति नहीं है । इनका मन बाहर-बाहर उड़ा फिरता है । घर में उनका जीवन समाया हुआ नहीं है । वह जो कुछ है प्रायः घर के अतिरिक्त है । घर से सम्बन्ध केवल ज़ाब्ते का—'फार्मल'—है । यह सम्बन्ध शरीर की प्रारम्भिक आवश्यकताओं तक ही सीमित है ।

कुछ ऐसा ही हाल मै अपने एक परिचित सज्जन का भी देखता हूँ, जो मित्र-मंडली में 'शर्माजी' के नाम से प्रसिद्ध हैं । मैंने जिन्दगी में

उनके-जैसे विनोदी आदमी कम ही देखे है। वह मित्र-मंडलियों

शर्मांजी

का प्राण है। सदा लोगों को हॅसाते रहते है। मनहूसियत के जानी दुश्मन हैं। बात में बात पैदा कर देते है, उनके मुंह से हॅसी के फौआरे छूटते हैं। सबसे मिल जाते है। किसी से दोस्ती पैदा कर लेना उनके लिए बायें हाथ का खेल है। उनके दर्शन हुए और हॅसी का दरिया लहराने लगता है। मेरा ख्याल है कि मौत को भी उनसे मुश्किल पड़ेगी। वह आवेगी तो इनके सामने लोट-पोट हो जायगी।

मै इन्हें देखता था तो इनके सुख पर आश्चर्य होता था। इस आश्चर्य मे, मै मानता हूॅ, ईर्ष्या का भी पुट था। इस जमाने मे, जब चारों ओर दुःख है, व्यथा है, जब सारा विश्व, समाज, राष्ट्र और साहित्य दुःख के भावों से अभिभूत है, जब हमारे चारों ओर उत्पीड़न का चीत्कार और मृत्यु की स्तब्धता है, तब यह आदमी किस सहज सरलता के साथ हॅसता है ! इसके अन्तर मे क्या द्वन्द्व नहीं ? क्या इसमें पीड़ा
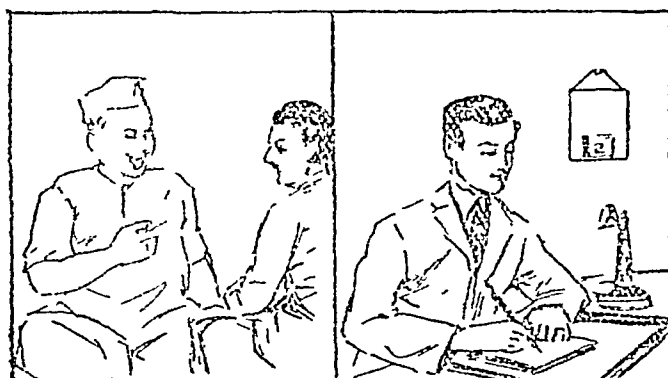
'शर्मांजी' मि० कपूर

का दंश नहीं ? मैं देखता था और उनके भाग्य को सराहता था। मुझे वह इस लोक मे लोकोत्तर-से प्रतीत होते थे।

बाद में जब इनका व्याह हुआ और- इनकी स्त्री आई तो मैंने देखा कि शर्माजी स्त्री से कुछ विशेष सुखी नहीं है। हँसते वह अब भी है। मित्र-मंडलियाँ अब भी उनके हास्य से मुखरित है। पर वह स्वच्छन्द पहाड़ी झरने का कलकल अब नहीं है। यह कृत्रिम बाँध के जल का अट्टहास है। निरन्तर अभ्यास के कारण जरा से स्पर्श से चलने लगता है।

मिस्टर कपूर एक अच्छे बैंक में हेड एकाउटेंट है। 'टिपटाप' आदमी। 'अप-टु-डेट' ढङ्ग से रहने वाले। अभी साढ़े-तीन सौ पाते हैं। पर अपने व्यवहार से अपने अफसरों को अँगुलियों पर

मि० कपूर

नचाते हैं। वे उनसे बहुत खुश है। आशा है, मि० कपूर थोड़े ही समय मे असिस्टेंट मैनेजर हो जायँगे। ७००-८०० मिलेंगे। कुछ जमीन-जायदाद भी है। खान्दान अच्छा है। इज्जत है। परी-सी स्त्री है। जरा भारतीयता उसमे है। दिल की अच्छी है। पर मि० कपूर को अभाव-अभाव ही लगता है। वह संतुष्ट नहीं है। महत्वाकांक्षी आदमी हैं और पत्नी उन्हें अपने सामाजिक उत्थान में

और हमारे मुंशीजी

सहायता करती नही दिखाई देती। उनका मन उससे उड़ा-उड़ा फिरता है। वैसे वह खुद निर्णय नहीं कर पाते कि उनकी पत्नी में दोप क्या है।

मुंशीजी निम्न मध्यम श्रेणी के एक औसत नमूना हैं। क्लर्क हैं। बाबू कहे जाते हैं और अपने इर्द-गिर्द के लोगों का सम्मान भी उन्हें प्राप्त है। कलेक्टर के आफ़िस में हैं। ७०) मिलते हैं। 'ऊपर' की भी आमदनी है। घड़ी के काँटे-सी नियमितता के साथ, ९ बजे लोग उनको घर से रवाना होते देखते है। और थके-माँदे ६—६॥ बजे शाम को घर आते है। उनकी बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ नहीं हैं। वह कौंसिल की मेम्बरी नहीं चाहते; न बँगला बनवाने और मोटर रखने का ही स्वप्न कभी उनको आता है। अपनी स्थिति को उन्होंने बिलकुल स्वाभाविक समझ कर स्वीकार कर लिया है। न उनका कोई क्लब है; न उनको कुछ विशेष शौक़ ही है। बस रोटी और रोटीवाली तक ही उनकी दुनिया है। दो बच्चे है, जो रोटी वाली के हित और अस्तित्व से अलग नहीं किये जा सकते। यही छोटी सी दुनिया है। पर इसी में चलते हुए, इस छोटी बावड़ी में तैरते हुए वह हाँफ रहे है। प्रत्येक दिन पहाड़-सा दीखता है। शाम होती है; थके, जर्जर, बेदम, पस्त घर लौटते है। किंचित् आशा के साथ। पर तृप्ति वहा भी नहीं है। उस मुसाफ़िर के समान, जिसको जिन्दगी भर चलना ही चलना है, शाम को थक कर वह पड़ाव डाल लेते है पर इस यात्रा में उनका साथी कोई नहीं है। क्या उनके पास नहीं है, इसको वह नहीं जानते। मेरा ख्याल है, जानने की चेष्टा भी नहीं करते। पर जो तृप्ति वह घर से चाहते हैं, उनको मिलती नहीं। इसको लेकर खींचा-तानी और झगड़ा नहीं चलता। जीवन की थकावट उस अवस्था पर है जब उसकी अनुभूति नहीं होती और संघर्ष करने की शक्ति ही नहीं, इच्छा भी मिट गई है। आश्चर्य-जनक ईमानदारी के साथ, अभ्यास-वश, वह जीवन के मार्ग को पूरा कर रहे हैं।

और हमारे मुंशी जी!

इन सब उदाहरणों का जब मै ज़िक्र कर रहा हूँ तो मुझे उस मज़दूर की याद आ रही है जिसे हम लोग 'घूरे' के नाम से जानते हैं। यह

नाम कोश देखकर नहीं रखा गया था। उसकी स्त्री 'कल्लो' है। यह भी ऐसा नाम नहीं, जिसे सुनकर हमारे कवियों के दिल में गुदगुदी पैदा हो। मानता हूँ कि नाम को देखें तो न 'घूरे' गगनविहारी के सामने खड़ा किया जा सकता है, न कल्लो ज्योत्स्ना, सौदामिनी या कञ्चनलता—जैसी आधुनिकाओं के सामने आने का साहस कर सकती है। पर इतना है कि दोनों सुखी है। दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति अभाव-अभियोग नहीं है। दोनों दोनों में समाकर, एक से, जीवन-यात्रा पूरी कर रहे हैं।

घूरे और कल्लो

घूरे और कल्लो

घूरे अहीर है। दो भैंसे रख ली है जिनकी देख-भाल का काम मुख्यतः कल्लो के जिम्मे है। तीन चौथाई दूध बेच दिया जाता है। बाक़ी घर के काम आता है। घूरे समय-समय पर कई तरह की मजूरी करता है। मुख्यतः वह मकान बनाने के लिए बड़े-बड़े पत्थरो की ढुलाई का काम करता है। सड़कों पर सग्गड़ों (एक प्रकार की बोझ ढोने की गाड़ी जिसमें बैल नहीं लगते, आदमी खींचते है) को किसी साथी के साथ खींच कर ले जाते इसे आप देखेंगे। गलियों मे १०—१०, १५—१५ मन के पत्थर, किसी के साथ, सेंगरा (मोटा बाँस) और

रस्सियों में फाँदें, कन्धे पर लटकाये चले जाते हुए उसे कितनों ने देखा होगा। वैशाख की धूप में नंगे पॉव, नगे बदन—केवल धोती और पगड़ी बाँधे—वह काम करता है। चौड़ी छाती, ऊँचे कंधे। बाँहों में वल्लियाँ छिटकी हुईं। एक-एक पुट्ठे गिन लीजिए। यूनान की प्राचीन मूर्त्तियों की तरह गठा हुआ, कसा हुआ शरीर।

इसने हेल्थ अफसरों के समान कभी स्वास्थ्य का ज्ञान नहीं प्राप्त किया। और न सिविल सर्जनों की भॉति शरीर-विज्ञान की ही उसे कुछ जानकारी है। पर मुझे इसमें रत्ती भर सन्देह नहीं कि इनमें से किसी को भी पॉच मिनट में वह भुर्त्ता करके रख दे सकता है। वर्षा मे, धूप मे, ठंड मे बराबर काम करता है पर शायद ही उसने कभी गहरी बीमारी पाई हो। कभी बीमार हुआ तो लोट-पोटकर एक-दो दिन मे खड़ा हो जाता है। घूरे और कल्लो दोनों जीवन में एक-दूसरे के सुख के लिए भरपूर मेहनत करते हैं। इनमें कोई चोर नहीं है—दोनो अपना हिस्सा ईमानदारी से अदा कर रहे है। एक-दूसरे पर बोझ नहीं है, एक-दूसरे के बोझ को हलका करते है। मनोविज्ञान का अध्ययन नहीं, न साहित्यकारों का नायिकाभेदशास्त्र घूरे ने पढ़ा है। पर दोनों एक-दूसरे से खुश हैं। पसीने की कमाई करते है। कभी इन्होंने अपने सम्मान पर आँच नहीं आने दी। कोई दबाना चाहे तो घूरे जान पर खेल सकता है और ज़रा-सा कोई घूरे को कुछ कह दे तो कल्लो उसकी मूँछ उखाड़ कर दम लेगी। इनमे ज़िन्दगी और जवानी हँसती-खेलती, छेड़ती और कुलेल करती चल रही है।

ऐसा नहीं कि दोनों कभी लड़ते नहीं। लड़ने को लड़ भी लेते हैं। रूठते भी हैं पर इसमें सदा अपनापन झलकता है। मजाल नहीं कि कोई दूसरा किसी को कुछ कह दे। और इस किंचित् खटास—तुर्शी—के साथ भी जीवन शर्बत के समान मीठा है। दुःख है, सुख है, पर इन सबके बीच तृप्ति है। संतोष है। और प्रभु के प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता के भाव से हृदय भरा हुआ है।

इन दो प्रकार के चित्रों में इतना वैषम्य क्यो है ? घूरे का जीवन
कल्लो के साथ लहलहा रहा है। दोनों दोनों में खोये हुए, आत्मार्पित-
से, फिर भी अपने व्यक्तित्व को सँभाले हुए, अपने
ऐसा क्यों ? में पूर्ण विश्वास रखे, चल रहे है। तब उससे अधिक
विभूति वाले उन पॉच आदमियों में इतना असन्तोष,
अपनी विवशता के प्रति इतनी खीझ क्यों है जिनका ज़िक्र मै 'घूरे' के
पूर्व कर चुका हूँ। उनके पास पैसा घूरे से अधिक है—वह पैसा जिस
पर आज के समाज-विज्ञान की धुरी घूमती है और जिससे आज
क़रीब-क़रीब सब कुछ खरीदा जा सकता है। उनके पास विद्या और
पाडित्य की पूंजी भी इस मजदूर से ज्यादा है—वह विद्या जिसके
बिना आदमी आज कल सभ्य नही समझा जाता। उनको चार आदमी
जानते भी हैं। घूरे की अपेक्षा समाज में उनकी प्रतिष्ठा अधिक है।
फिर क्यों यह कराह है ? क्यों यह काँटा-सा उनके दिलों मे करकता
है ? क्यों वे चैन और तृप्ति नहीं पाते है ? क्यो वे मानसिक शान्ति के
लिए घर की ओर, घर वाली की ओर नहीं देख पाते ? जीवन के युद्ध
मे विश्राम के संदेश का ऐसा अभाव क्यो है ? उनकी पत्नियॉ तृप्ति-
दायक जीवन-स्रोत सी उनकी प्यास बुझाने में समर्थ क्यों नहीं है ?

इनको अलग-अलग लेकर देखिए। मिस्टर 'क' आदमी बुरे नहीं।
समाज में सज्जनता के एक स्टैंडर्ड समझे जाते हैं। सज्जनता इतनी
है कि बहुत-से लोगों को उसमें बनावट का भ्रम होता है। अपनी
जिम्मेदारियाँ वह जानते हैं। कुछ सिखाया या बताया जाय, ऐसी दयनीय
स्थिति उनके मन की नहीं है। पत्नी में कोई दोष-विशेष उनको मिलता
नहीं। फिर यह उदासीनता किस लिए है ? यह निराशा क्यों है ?

मिस्टर 'पी' को मैने उलट-पलटकर देखा है। उनकी बात भी
साधारणतः समझ मे नहीं आती है। न पत्नी में कोई ऐसा दोष ही
दिखाई पड़ता है जिसको लेकर उनको दुखी होने की आवश्यकता हो।
शर्माजी का 'केस' भी इस दृष्टि से कुछ अजब-सा लगता है। मिस्टर

कपूर और मुंशीजी से जब-जब पूछा गया है, वे कुछ स्पष्ट बताने मे असमर्थ ही पाये गये है। फिर भी इतना है कि बेचैनी और अतृप्ति इन सबके दिल में है और वह घनी होती जाती है।

ऐसे और भी कितने ही उदाहरण मुझे जीवन में मिलते और दिखाई पड़ते रहे हैं। इस विषय में कुछ ज्यादा दिलचस्पी होने से मैंने इन पर काफी सोचा-समझा है। जो कुछ मैं समझ सका हूँ, उससे एक प्रश्न मैं इनके सामने रखना चाहता हूँ और वह यह कि तुम अपनी स्त्री से क्या चाहते हो ? इस प्रश्न से मामला बहुत-कुछ सुलझ सकता है। असल बात यह है कि न मिस्टर 'क', न मिस्टर 'पी', न शर्माजी, न मि० कपूर और न मुंशीजी ही इसका कुछ ठीक उत्तर दे पाते है। ये जितने 'टाइप' हैं, सब आजकल के तीव्र परिवर्तन, तीव्र गति के स्पर्श, आघात और संघर्ष से बने हुए मिश्र 'टाइप' (Cross-type) है। इन सबके जीवन में एक अस्पष्टता है। इनके विचार सुलझे हुए नहीं हैं। कुछ विचार उनको जाति से मिले हैं, कुछ पुराने संस्कारो के परिणाम है। कुछ मित्रों और समाज मे तेजी से फैलते हुए फैशनों से लिये गये है। परिस्थिति-वश ये सब बनावटी हैं। इन विचारों मे 'निजत्व' कुछ नहीं है। इतना भी नहीं कि दूसरो से लेकर उनको हज़म कर लिया गया हो और वे जीवन की योजना में अपनी-अपनी जगह पर दुरुस्त—'फिट'—हो गये हों। जब ऐसी मनोदशा को लेकर इन्होंने अपना विवाहित जीवन शुरू किया है तब यह स्वाभाविक है कि वे अपनी आकाक्षाओं और उद्देश्यों के विषय में अस्पष्ट, अस्थिरचित्त और अशान्त हों। असल में ये लोग और इनकी तरह हज़ारो युवक जो विवाहित जीवन में एक अतृप्ति और निराशा पाते हैं, उसका कारण यह है कि वे स्वयं नहीं जानते कि जिस यात्रा पर वे चल पड़े हैं उसकी मंजिल क्या है; उनको जाना कहाँ है। और साफ-साफ कहना चाहें तो यह कहेंगे कि वे खुद नहीं जानते कि आखिर वे अपने से क्या चाहते हैं और अपनी स्त्रियों से उनकी क्या माँग है ?

अस्पष्टता

मैने अनेक युवकों से यह प्रश्न पूछा है कि 'तुम अपनी स्त्री से क्या चाहते हो', और यह देखकर दंग रह गया हूँ कि उनके पास इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है। बिना सोचे-समझे, जीवन से विषय में बिना विचार किये वे चल रहे है। निरुद्देश्य, अस्पष्ट। स्वभावतः उनमें लक्ष्य की तन्मयता का आनन्द नहीं है। वे एक ही समय विविध विरोधी दिशाओं की ओर लालचभरी निगाह से देखते हैं। कुछ ठीक चुनाव नहीं कर पाते। फलतः खीझ और असफलता के दंश की पीड़ा उनको अस्थिर कर देती है। न समाज, न पत्नी और न अन्य लोगों के साथ उनके उचित सम्बन्धों का समतौल—'बैलेंस'—रह पाता है। उनकी दशा उस दरिद्र बालक के समान है जो चन्द पैसे लेकर बाज़ार में निकलता है और कभी खिलौने की दुकान पर मचल जाता है, कभी मिठाई की दुकान पर खड़ा होता है, कभी साइकिल और मोटर चाहता है पर इन सब में भी किस एक को पाने से वह सन्तुष्ट हो जायगा, इसका निर्णय नहीं कर पाता। वह सबको चाहता है। विविधता के बीच उसका चित्त डाँवाडोल है। कभी इधर दौड़ता है, कभी उधर दौड़ता है।

प्रलोभनों के बीच अस्थिर

इस प्रकार की अस्थिरचित्तता ही वस्तुतः दाम्पत्य जीवन के दुःख और असन्तोष का प्रधान कारण है। जो पुरुष विवाह करने जा रहा है या जिसका विवाह हो चुका है वह जबतक स्वय अपनी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं का निर्णय न कर ले, सुखी होने की आशा कैसे कर सकता है?

सच बात तो यह है कि आजकल औसत दर्जे का युवक जीवन की प्रत्येक समस्या और प्रत्येक प्रश्न पर बहुत ही छिछले, सेकेंड-हैंड और सुने-सुनाये विचार रखता है। उसकी दशा कई परस्पर-विरुद्ध प्रवाहों के बीच पड़े तिनके-सी है, जो कभी उधर जाता है, कभी इधर आता है। जैसे उसने अपने को परिस्थितियों की दया पर छोड़ दिया हो।

मुझे अनेक ऐसे युवकों को जानने का अवसर मिला है जो अपने दुर्भाग्य और दाम्पत्य जीवन की अतृप्ति के विधाता स्वयं ही है। आठ-दस वर्ष पूर्व की बात है। मैं एक नगर में रह रहा था। उसी मकान मे मध्यम श्रेणी के एक अच्छे गृहस्थ रहते थे। अच्छे चलता-पुर्जा आदमी थे। बड़े ही सज्जन। उनके घर की स्त्रियाँ बड़ी मृदुभाषिणी, नम्र, सुशील और शरीफ थीं। इन सज्जन का बड़ा लड़का अच्छा खासा युवक था। स्वस्थ और पढा-लिखा। उसकी स्त्री ऐसी भोली कि जो उसे जानता उसकी सरलता पर मुग्ध हुए विना न रह सकता था। सुन्दर, मृदु और सेवा-परायण। पर यह लड़का उससे बोलता तक न था। उसके हाथ का परसा भोजन उसके लिए त्याज्य था। अपने नारीत्व का ऐसा अपमान सहन करते हुए भी उसमे जरा भी कटुता न थी। पानी की धार पर पड़ने-वाली चोटो की भाँति ये कष्ट उसमें संघर्ष की भावना उत्पन्न करने में असमर्थ थे। लड़के माता-पिता, बहिनो सब को आश्चर्य था कि ऐसी सुशील स्त्री पाकर भी यह लड़का क्यो ऐसा करता है ? और लड़का भी यों बड़ा ही नम्र, सेवापरायण और मृदुभाषी !

वह उपेक्षिता पत्नी

बात यह थी कि वह ऐसी लड़कियों को कालेज में देखता था जो फ्राक पहने हुए खटाखट चल सकती थीं, जो उससे विनोद करने में कुण्ठित न होती थी और जिनमे असमय ही हाव-भाव, मटक और लचक की कला का पर्याप्त विकास हो चुका था। ये लड़कियाँ उसके दिल को खींचती थीं। मैंने एक दिन इस लड़के से, गोपनीय संभाषण के बीच, पूछा—"तुम अपनी स्त्री से क्या चाहते हो ? तुम चाहो तो उसे इन लड़कियों की तरह बना सकते हो। यह तो तुम्हारे हाथ है।" पर वह इसके लिए भी उत्सुक नहीं जान पड़ा। यद्यपि वे लड़कियाँ, उनकी चाल-ढाल, उनकी चमक-दमक उसको खींचती थी पर वह बुद्धि से इसका ठीक-ठीक निर्णय न कर पाता था कि अपनी स्त्री को वैसा ही बना लेना

परी-सी लड़कियाँ

उचित और हितकर होगा या नहीं। उसे यह भी डर था कि ऐसी स्त्री मेरी पत्नी की भाँति मेरे किसी दुर्व्यवहार को, या किसी कड़ी बात को यों न सहन कर लेगी और ईंट का जवाब पत्थर से देगी। फिर उस टाइप के आर्थिक बोझ को उठा सकने की क्षमता भी उसे अपने अन्दर नहीं मालूम पड़ती थी। जैसा अक्सर औसत युवकों में देखा जाता है, अपने किसी विश्वास का सामना करने का साहस, अपने कार्य की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेने की तैयारी इस युवक में नहीं थी। फलतः उसका मन इधर-उधर अतृप्त और प्यासा भटक रहा था।

यह अस्थिरचित्तता ही वस्तुतः मिस्टर 'क', मि० 'पी,' शर्माजी, मिस्टर कपूर और मुंशी जी की खीझ और अतृप्ति का कारण है। वे ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाते है कि उन्हें आधुनिक और अप-टु-डेट रमणियाँ चाहिएँ या पुराने ढंग की स्त्रियाँ अथवा दोनों का मिश्रण। यदि वे यह निर्णय कर लें कि वे अपनी स्त्रियों से क्या चाहते हैं, तो उनका बहुत-सा कष्ट अपने-आप दूर हो जाय।

समाज में हजारों युवक ऐसे होंगे जो इन्हीं सज्जनों की भाँति एक अस्पष्ट खीझ और असन्तोष के शिकार हैं। हजारों ऐसे हैं जो शादियाँ करने जा रहे है अथवा कुछ ही दिनों बाद जिनकी शादियाँ होंगी। मैं चाहता हूँ कि ये अपने को धोखा न दें। अपने मन में अच्छी तरह विचार कर लें कि वे अपनी पत्नियों से क्या चाहते है। बहुधा युवकों की माँगें इतनी अधिक होती हैं कि कोई स्त्री उन्हें पूरा नहीं कर सकती। एक सज्जन को मैं जानता हूँ, जो अपने मित्रों की नये ढंग और फैशन को अपनाने वाली पत्नियों को देखते तो उनके दिल में भी आकांक्षा होती कि मेरी पत्नी भी ऐसी होती! पर वह उसे वैसा बनाने के लिए कभी जरा भी प्रयत्न करते नहीं देखे गये। उनके एक परिचित की पत्नी लड़कियों के स्कूल मे अध्यापिका थीं और ७०) मासिक कमा लेती थीं। यह देख

अस्थिरचित्त पुरुष

कर उक्त सज्जन अक्सर कहते—'देखा, वह पति के जीवन-युद्ध मे वीरतापूर्वक भाग ले रही है। कल उसके पति बीमार पड़ जायँ अथवा उनकी नौकरी छूट जाय तो घर का बोझ सँभाल सकती है।' पर जब पत्नी ने वैसा बनने के लिए अध्ययन आरम्भ किया तो किसी प्रकार का उत्साह देने की जगह उसमे उन्होंने अडंगे ही लगाये; व्यंग तो प्रायः करते। असल बात यह थी कि वह किसी ठीक निश्चय पर नही पहुँचे थे। उनके मन मे शङ्का और अनिश्चितता थी। कदाचित् यह भाव भी रहा हो कि स्वतन्त्रता मिलने और सम्पत्ति-अर्जन की क्षमता होने पर मेरी स्त्री मेरे प्रति विद्रोही न हो उठे। अब वह स्त्री क्या करती ? अन्त मे उसका अध्यापिका बनने का प्रयत्न शिथिल हो गया।

होता यह है कि अधिकाश व्यक्ति प्रायः बदलती हुई मनोदशाओं—मूड्स—के दास होते है। कभी किसी लड़की का विनोद हमारे युवकों का मन हर लेता है; कभी वे उसकी चञ्चलता, शोखी, चटक-मटक पर आकर्षित होते हैं; कभी उनको उसमे गम्भीरता की आवश्यकता का अनुभव होता है। कभी पति अपनी पत्नी को नवीना तरुणी के रूप में देखना चाहता है, जिससे चुहल करे, दिल बहलाये, दिलों की बात करे। पर कुछ ही देर बाद वह उसे एक गम्भीर गृहणी के रूप मे देखना चाहता है। इस तरह की क्षण-क्षण बदलनेवाली मनोदशाओं के अनुसार अभिनय करते रहना प्रत्येक नारी के वश की बात नहीं है।

इसलिए विवाह करने के पूर्व प्रत्येक युवक को भलीभाँति इस प्रश्न पर विचार कर लेना चाहिए। यह समझना चाहिए कि स्त्री भी मनुष्य है। उसकी कार्यशक्ति और सहनशक्ति की भी सीमा है। तुम चाहते हो कि तुम्हारी स्त्री तुम्हारी मित्र हो, तुम्हारी पत्नी हो, तुम्हारे बच्चों की योग्य माता भी हो, तुम्हारे घर को भी साफ़-सुथरा और व्यवस्थित रखे। जब उसके

द्रौपदी के चीर-सी बढ़ती हुई माँगें !

सिर में भयङ्कर पीड़ा हो रही हो तब भी तुमसे हँसकर बोले, तुमसे मीठी, दिल गुदगुदानेवाली विनोद की बातें करे, तुम्हारे किसी क्रम में अन्तर न पड़ने दे। तुम यदि चाहते हो कि जब तुम दिन भर की थकावट के बाद, उसे मिटाने के लिए, सिनेमा जाओ, क्लब जाओ या मित्रों से मिलने निकलो अथवा सैर-सपाटे करो तब वह गृह के एकान्त में बैठी अपने बच्चों को सँभालती रहे, तुम्हारे लिए भोजन तैयार करती रहे और गृहस्थी की अन्य हजारों झंझटों में सिर खपाती रहे और इसके लिए न सिर्फ जबान पर बल्कि दिल में भी किसी तरह की खीझ न आने दे तो तुम वह चाहते हो जो एक औसत प्राणी से संभव नहीं है। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी बीबी बच्चों को पढ़ाये, जरा गाना-बजाना भी सीख ले; सिलाई-कटाई और क़सीदे के नये-नये तर्ज सीखती रहे; तुम्हारे मित्रों की पत्नियों में से किसी से पीछे न रहे; यदि तुम चाहते हो कि इन कामों को करते हुए वह भोजन भी बनाये, बर्तन भी साफ करे, चाय और नाश्ता भी तैयार कर दे, घर को कलापूर्ण ढङ्ग से सजाये तो यह तुम एक आदमी से किसी देव या भूत का काम चाहते हो।

मैं यह नहीं कहता कि कोई स्त्री इतनी माँगें पूरी कर ही नहीं सकती पर वह एक असाधारण स्त्री होगी। साधारणतः न पुरुष, न स्त्री इतने काम अकेले सँभाल सकती है। जब तुम्हारा मन घर के बाहर जाकर जरा स्वच्छ हवा खाने को छटपटा रहा है; जब तुम्हें दिन भर की थकावट दूर करने के लिए मित्रों के सत्संग या विनोद की आवश्यकता है, तब तुम्हारे लिए यह सोचना कठिन क्यों होना चाहिए कि तुम्हारी स्त्री को विनोद, विश्राम और स्फूर्ति की तुमसे कुछ काम आवश्यकता नहीं है।

असल बात यह है कि आज के दाम्पत्य जीवन में प्रत्येक पति के लिए निरन्तर आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। प्रतिदिन यह सोचने की आवश्यकता है कि मुझसे अपनी पत्नी के प्रति

कोई दुर्व्यवहार तो नहीं हुआ है; कोई अन्याय तो नहीं हो रहा है ? मैं उससे जो कुछ चाहता हूँ, वह और उतना दे सकने की क्षमता उसमें है ? और यदि नहीं है तो उस क्षमता को बढ़ाने के लिए मैने क्या किया है अथवा क्या करना चाहिए ? मैं उसके प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन में कहाँ तक ईमानदार हूँ ?

पतियों के लिए आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता

यह समझने की आवश्यकता है कि प्रतियोगिताओं और संघर्षों के इस युग में जीवन की कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गई हैं। प्रत्येक युवक को आज उससे अधिक सावधानी और बुद्धिमत्ता के साथ जीवन के मार्ग में चलने की आवश्यकता है जितनी उसके पूर्वजों के लिए बस थी। इसलिए जीवन की सफलता और सुख इस बात पर निर्भर है कि वह अपने प्रति परिस्थितियों की कितनी अनुकूलताएँ पैदा कर सकता है। ये सुविधाएँ और सुख प्रति क्षण के खीझ के वातावरण में नहीं पैदा किये जा सकते। तृप्ति और सुख मेल और सामञ्जस्य से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। इसलिए गृह-जीवन की छोटी-छोटी कमियों पर यदि युवक पति तिनकने लगेगा तो अपना सतुलन, अपना 'बैलेंस' खो देगा। इसलिए ठंडे दिमाग़ और प्रेम एवं श्रद्धा भरे दिल से प्रत्येक पति अपनी पत्नी की प्रत्येक कठिनाई और समस्या को देखे तो बहुत से दुःखद प्रसंग उठने ही न पायँगे।

जैसे पत्नी का कर्त्तव्य पति के लिए एक सुन्दर, शान्त, तृप्तिकर गृह का निर्माण करना है वैसे ही पति का कर्त्तव्य भी अपने प्रेम, अपने सौष्ठव, अपनी मृदुता, ईमानदारी, परिश्रम और बुद्धि से, पत्नी के कार्य को सरल और सुविधापूर्ण बनाना है। जब नारी को यह विश्वास हो कि वह जो इतना कष्ट उठा रही है उससे पति को सन्तोष और सुख है और उसका प्रेम और सहानुभूति मेरे साथ है तो जीवन-मार्ग के काँटे भी उसके लिए फूल हो जाते हैं। जो काम आँखें लाल करने, कटु-वाणी का प्रयोग करने और वातावरण में अनावश्यक गरमी लाने से

नहीं होता वह दो मीठे बोल, सहानुभूति एवं हृदय को प्रेम के साथ स्पर्श करने से सहज ही संभव है।

प्रत्येक पति या पति होने के लिए तैयार प्रत्येक किशोर अथवा युवक से, जो अपने लिए एक सुखी, तृप्तिकर और शान्त दाम्पत्य जीवन का निर्माण करना चाहता है, मैं कहना चाहूँगा कि सबसे पहले तो स्वस्थ एव शान्त चित्त से उसे अपनी मनोदशाओं और अपनी प्रवृत्तियों पर विचार करना चाहिए। उसे काफी समय इस बात के लिए अपने को देना चाहिए कि वह दो व्यक्तियों के सम्मिलित जीवन में अपना हिस्सा ईमानदारी के साथ अदा करने को तैयार है या नहीं। यदि वह तैयार है अथवा अपने को तैयार कर लेता है तब उसे अपने मन से बार-बार प्रश्न करना चाहिए कि वह अपनी स्त्री से क्या चाहता है। एक निश्चय पर पहुँच जाने के बाद सच्चाई और धैर्य से प्रयत्न करते हुए वह अपनी स्त्री को, एक सीमा तक, अपनी मनःस्थिति के अनुकूल बना सकता है।

आरम्भ में मैंने जो उदाहरण दिये है, उनमें घूरे और कल्लो के सुखी और तृप्त होने का कारण यही है। दोनों एक-दूसरे को समझते है। दोनों में दोनों के लिए अपनापन का भाव है। दोनों दोनों के प्रति वफ़ादार और स्पष्ट हैं। कोई अस्पष्ट भाव दोनों के बीच नहीं है। ईमानदारी के साथ दोनों एक संयुक्त जीवन के उपयुक्त वातावरण का निर्माण कर रहे है। घूरे अपने मन में बिल्कुल स्पष्ट है कि वह किस 'टाइप' की, किस प्रकार की स्त्री चाहता है। उसमें अपनी आकांक्षाओ, अपनी जीवनविधि और अपने विश्वास तथा आचरण के सम्बन्ध में कही किसी प्रकार की वक्रता, किसी प्रकार की अनिश्चितता की गुञ्जाइश नहीं है। बुरा-भला, ग़लत या ठीक जो भी वह समझता है, समझता है। उसमें उसकी श्रद्धा है। द्विधा नहीं है। इसलिए वह सुखी है और उसकी स्त्री भी सुखी है।

इसके विरुद्ध आरम्भ के ५ अन्य उदाहरणों में पति अपनी आकाक्षाओं में, अतः अपने व्यवहार में भी, बिल्कुल अनिश्चित और

अस्पष्ट है; वह लहरों में बहने वाला जीव है, द्विधा और अनिश्चितता से उसका मन अँधेरा हो रहा है। इसलिए वह सुखी नहीं है; तृप्त नहीं है। उसमे खीझ और असन्तोष है।

सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए यह बात बहुत ज़रूरी है कि प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक विवाहित युवक अपने दिल को परखना सीखे, अपने को देखना सीखे। मै यह नहीं कहता कि वह पत्नी के सम्बन्ध मे, उसके दोषों के सम्बन्ध मे आँख मूँदकर चले—यद्यपि ऐसा करके भी वह उससे अधिक घाटे में न रहेगा जितना नित्य के दोष-दर्शन और छिद्रान्वेषण से रहता है। जो कुछ मै कहता हूँ वह यही है कि पत्नी में समाकर पत्नी को देखो। उसी वृत्ति और उदाहरण से उसे देखो जिससे अपनी कठिनाइयों, अपनी दुर्बलताओ और अपने दोषों का विचार करते हो। अपने प्रत्येक व्यवहार मे उसे निर्भय होने का, पनपने का मौका दो। उसे वाणी से नहीं, हृदय से स्पर्श करो। उसे अपराधी समझकर उसपर जज बनने का लोभ त्याग दो और निरन्तर आत्म-निरीक्षण करते हुए भी स्पष्ट हो जाने दो कि तुम न केवल अपने सुख के लिए वरन् उसके सुख के लिए भी उससे क्या चाहते हो ? उसे दबाओ मत, उसे स्वयं उभरने दो। तुम्हारा काम इस उभरने मे उसकी सहायता करना है और उसे यह विश्वास दिला देना है कि तुम्हारा हित उसी के हित मे है और उसका हित तुम्हारे हित का विरोधी नहीं है, उससे जुदा भी नहीं है।

अपनी परख आवश्यक है

मैं मानता हू कि दाम्पत्य जीवन मे पतियों की खीझ और अतृप्ति का दूर होना और उनका सुखी और सन्तुष्ट होना बहुत कुछ उस उत्तर पर निर्भर है जो वे मेरे इस प्रश्न का देंगे कि तुम अपनी पत्नियों से क्या चाहते हो ?

———

: ९ :

आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता

विवाहित जीवन में जो हाहाकार हम देख रहे हैं उसका एक प्रधान कारण यह भी है कि पति का कर्तव्य प्रायः उपदेश तक ही समाप्त हो जाता है। उसने भ्रम-वश समझ लिया है कि गृहस्थी का सारा बोझ स्त्री के लिए ही है। वह यह भी समझता है कि उसका काम जीवन के इन छोटे-छोटे और रोज पैदा होने वाले सवालों की तरफ ध्यान देना नहीं है, उसका काम बस जिन्दगी की एक चहारदीवारी तैयार कर देना है जिसमें वह और उसकी स्त्री दोनों सुरक्षितता का अनुभव कर सकें। वह स्त्री को उसके कर्त्तव्य भी समय समय पर बताता रहता है और जब उस कर्त्तव्य का पालन करने मे वह कभी असमर्थ रह जाती है तो उसका मन खीझ से भर जाता है। वह सोचता है, और अक्सर कहता भी है, कि 'मैने कहाँ से यह झंझट पाली—निर्द्वन्द्व मेरा जीवन था; न कोई चिन्ता, न झझट। वे उमगें; वे स्वप्न और वे महत्वाकांक्षाएँ इस जीवन की कड़ी धूप में नष्ट हो गईं।' तब वह एक लम्बी आह लेता है, किस्मत पर रोता है और उसमे अपने ही प्रति, अपनी अक्षमता के प्रति, एक संघर्ष और प्रतिहिंसा पैदा होती है और उसका मन अन्धकार से भर जाता है।

एक भ्रम

विष यहीं से फैलने लगता है। बिच्छू के डंक के समान यह जरा सी चीज़ धीरे-धीरे फैलकर आस-पास की सब चीजो को ढक लेती है। दर्द बढ़ता जाता है; जीवन पीड़ा में केन्द्रित हो जाता है! चाहते है तब भी ध्यान उधर से हटता नहीं। काम में आनन्द नही आता; घर खाने को दौड़ता है। बच्चों पर अनायास क्रोध आता है। परिचित और मित्र

वृश्चिक-दंशन

देखते हैं—इसे क्या हो गया। सीधा-सादा, मृदुल स्वभाव का आदमी दिन-दिन चिड़चिड़ा क्यों होता जा रहा है? मित्रों के उलाहने या सहानुभूति का उलटा असर होता है। चिढ और चिड़चिड़ापन बढ़ता जाता है। जिन्दगी दूभर हो जाती है और मनुष्य अवश और असहाय-सा करुणा और हसरतभरी आँखों से दुनिया को देखता है।

यह विष पति तक ही नहीं रह जाता। वह फिर स्त्री के हृदय पर आक्रमण करता है। वहाँ से बच्चों, फिर घर के अन्य प्राणियों में फैल जाता है। फिर पति की भाँति स्त्री भी सोचने लगती है—'कैसा कंचन-सा मेरा शरीर था। माँ-बाप ने कभी त्योरियाँ चढ़ाकर मेरी ओर न देखा; मुझे हाथों-हाथ रखा। आज मैं निरपराध, क्या-क्या सहन कर रही हूँ। फिर भी जिन्दगी क्या है, रोज की झिक-झिक है। इससे मौत क्या बुरी होगी? आखिर मैंने 'उनके' लिए क्या नहीं किया, क्या नहीं सहा? फिर भी इतना खिंचाव क्यो है!' तब उसे लड़कपन के उमंगो से भरे दिन याद आते है। 'वह माता-पिता का दुलार, वह बहनों का बहनापा, वह भाइयों का मृदुल स्नेह, वह सहेलियो की चुहल! कैसे देखते देखते दिन बीत जाते थे। वह सब सपना हो गया। मैंने माता-पिता को छोड़ा, सहेलियों को छोड़ा। मेरा दूसरा अब कौन है?'

तब यह स्त्री, जो गृह के लिए लक्ष्मी थी और जिसके स्नेह का अमृत पीकर बच्चे घर को स्वर्ग बनाये हुए थे, अपने को भूलने लगती है। तब वह विष होने लगती है। तब उसमें गृहलक्ष्मी से चंडिका जातीय वेदना का बोध जाग्रत होता है। तब वह अन्य स्त्रियों से दुःखभरी वाणी में कहती है—'बहन, हम स्त्रियाँ तो सहने और दुःख झेलने के लिए ही पैदा हुई हैं। हमको सुख कहाँ? गलत भावों की इस जहरीली आँधी से उसके दिल का दिया बुझ जाता है। जिन्दगी एक बोझ हो जाती है। जो औरत कल तक

गृहलक्ष्मी थी, जो घर की रोशनी थी, जिससे ममता बरसी पड़ती थी, जिसके मुँह से फूल झड़ते थे, जो बोलती तो शर्बत घोलती थी और जिसकी जिन्दगी आन्तरिक उल्लास से भरी हुई थी, जुही की कली की तरह अपने ही मृदु गध में भूली हुई थी, उसे यह क्या हो गया ? यह बात-बात में रिस; सीधी बात में खाने को दौड़ना ! यह जबान की तेजी ? कोई उसे अच्छा, भलामानस नहीं दीखता। तीर के नोक जैसी उसकी बातें दिलों में चुभती हैं। लोग उसकी नजर बचाते है। बच्चों की
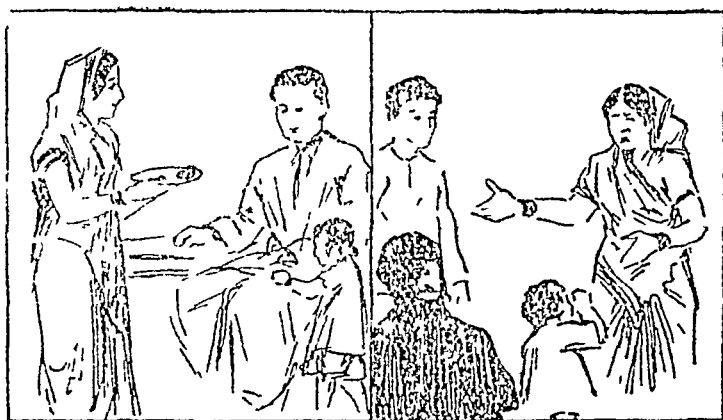
वही स्त्री गृहलक्ष्मी से चंडिका हो गई

समझ में नहीं आता कि माँ को क्या हो गया है ? ननदें सहमी-सहमी उसे देखती हैं। जेठानियाँ बोली बोलती है कि यह सब देवर के श्रीमतीजी को सिर चढ़ा लेने का नतीजा है। सास कहती है —मै तो पहले से ही जानती थी कि इसमें ये गुन भरे हुए है। भला आजकल की बहुएँ इसके सिवा और क्या करेंगी।

मतलब चारों तरफ अँधेरा फैल गया है। हर एक ने स्व-भाव छोड़ दिया है और बड़े तीखेपन और बेरुखी से दूसरे के बारे मे जाँच करता एवं अपना फैसला देता है। मनुष्यता के हमदर्दी और मुलायमियत से भरे हुए भाव पर बे-दिली का कड़ा छिलका जम गया है।

यों देखते-देखते लहलहाती फुलवारी-सा घर उजड़ रहा है। हर एक देख रहा है कि मुसीबत और दुर्भाग्य सिर पर मँडरा रहे हैं पर वह बेबस है।

ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यह है कि जिन्दगी की कशमकश ने, रात-दिन की कठिनाइयों ने हमे बड़ा ही तुनकमिजाज, बड़ा ही भाव-प्रवण बना दिया है। जरा से झटके में हमारे दिमाग का समतौल बिगड़ जाता है। छोटी-छोटी बातों को हम तूल दे देते हैं। पुरुष, पति अक्सर ऐसे मामलो मे अहकार का शिकार हो जाता है। गृहस्थी के अनुभवों मे हम देखते है कि पति प्रायः स्त्री से ज्यादा अव्यावहारिक होता है। इस मामले मे उसका भोलापन देखकर हमें आश्चर्य होता है।

पतियो का आश्चर्यजनक भोलापन

तब इसका इलाज यह है कि पति भी अपने दिल को टटोलता हुआ जीवन की डगर पर चले। वह अपने अन्दर झाँकता रहे कि वहाँ मैं कैसा हूँ—अपनी पत्नी के प्रति कितना वफादार हूँ। और सिर्फ वफादारी ही तो बस नहीं है। असली बात उस वफादारी को दैनिक जीवन मे घटाने की है—वफादारी पर अमल करने की है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि वह आत्म-निरीक्षण की आदत डाले। वह अपने को परखना सीखे। अपने बारे मे सावधान रहे।

ऐसा नहीं कि पति अपनी भूल को समझता नहीं। होता यह है कि जब जरा-सी बात बढ जाती है तब वह समझता है कि हम खाई की तरफ दौड़े चले जा रहे है। उसे पछतावा होता है। वह चाहता है कि हम अपने पावों को रोक लें, पीछे लौटें और कलह की आग मे झुलस रहे दाम्पत्य प्रेम को बचा लें। दुःख का दम घोटने वाला वातावरण, सूना-सा हो रहा घर, और आँखों के सामने चलती-फिरती रोनी सूरतें किसे अच्छी लगती हैं? किसका मन बिना किसी

मानसिक उद्वेग

रुकावट के दिल के अन्दर उठने वाली बच्चो की खिलखिलाहट सुनने के लिए नहीं छटपटाता ? किसके मन में हूक नहीं उठती कि फिर हमारा जीवन प्रेम के फूलों से भर जाय ? दुःख के वातावरण में पति पत्नी से भी जल्द ऊब जाता है। आज कल दुनिया में उसके लिए बाहर तो संघर्ष ही संघर्ष है। रोटी कमाना भी दिन-दिन कठिन होता जाता है। तब बाहर भी संघर्ष और अन्दर घर में भी संघर्ष वह कब तक बर्दाश्त कर सकता है ? स्वभावतः वह जल्द थक जाता है। कंधा डालना और हार मान लेना चाहता है पर इसी समय मानवी दुर्बलताएँ उसे आ घेरती हैं। वह जब पछता रहा होता है, जब बिलखते बच्चों एव दुःखी पत्नी को देखकर उनके सामने अपने उमड़ते दिल को बहा देना चाहता है, तब भी उसका क्षुद्र अहंकार जबान नहीं खोलने देता। दिल पश्चात्ताप से दग्ध है पर जिह्वा उस पश्चात्ताप को प्रकट करने मे अपनी हतकइज्जती समझती है। दो मधुर बोल उस समय कितने महँगे, कितने असम्भव हो जाते हैं। उलटे दिल में जब सहानुभूति एवं पछतावा हो रहा होता है तब भी कभी-कभी मुँह से, नियंत्रण के अभाव में और खीझ के कारण, कड़ुई और दिल खट्टा करने वाली बातें, निकल पड़ती हैं।

चोट पर चोट

कभी-कभी होता यह है कि जब यह दुःखदायी अवस्था खतम होने को आती है, और दिल में सदिच्छाओं का पुनरावर्तन हो रहा होता है, ठीक उसी वक्त कोई बात फिर हो जाती है। घाव पर फिर चोट पड़ जाती है और एक प्रतिक्रिया उठ खड़ी होती है! और दुर्भाग्य की बात यह है कि अक्सर चोट पर ही चोट लगती है। और घाव पुराना पड़ता जाता है।

मुझे कहना चाहिए कि इस तरह सन्देह, अभिमान और अनिश्चिवता की हालत में पड़कर घुलते रहना किसी पति या गृह के लिए कोई अच्छी अवस्था नहीं है। और ऐसी अवस्था को सिर्फ झूठे मान

की खातिर तूल देना जान-बूझ कर हरे भरे चमन में आग लगा देने के समान है। यह शुद्ध आत्म-हत्या है और बाद में अगर क़िस्मत के नाम पर कोई पति रोये या समाज की विषमता की दुहाइयाँ देने का अवसर पैदा कर ले तो कहना पड़ेगा कि इस दुर्भाग्य को उसने अपने ही हाथों गढ़ा है। उचित है कि वह अवस्था आदमी के काबू के बाहर होने के पूर्व सँभल जाय। उसे झूठे अहंकार को त्याग कर साहस के साथ, इस अवस्था को ख़त्म कर देना चाहिए। विवेक और मर्दानगी की यही माँग है।

साहस करो

मैंने अपनी आँखों स्वर्ग-सी अनेक गृहस्थियों को मिटते देखा है। दुःख तब होता है, जब इस विनाश की जड़ में कोई खास बात, कोई गम्भीर कारण नहीं होता। बात की बात में सोने का संसार मिट जाता है। मेरा ख्याल है, कोई ऐसा आदमी न होगा जिसने जीवन में इस तरह की एक-दो घटनाएँ न देखी हों। मैं कई पतियों को जानता हूँ, जो अच्छे भले आदमी हैं, उनकी देवियाँ भी शरीफ और वफादार हैं फिर भी चखचख चलती रहती है और गृह कलह से पूर्ण है। अपने एक मित्र का उदाहरण अक्सर मेरी आँखों के सामने आ जाता है। यह एक प्रतिष्ठित आदमी हैं। रसिक तबीयत; ज़िन्दा दिल। दोस्तों और मित्रों में बहुत लोकप्रिय। दोस्तों पर कोई कठिनाई आ जाय, तो सहायता के लिए दौड़ पड़ना उसका स्वभाव है। उनमे अनेक गुण हैं पर गृहस्थी के मामलों में इनके भोलेपन को देखकर तरस आता है। इनकी स्त्री इतनी सीधी कि बस गऊ है। फिर भी दाम्पत्य जीवन ज़रा-से आघात से फूटे ढोल की तरह बेसुरा बज उठता है। जो आदमी वैसे इतना मधुर है और जो स्त्री इतनी सीधी है कि वह स्वयं अन्याय सह ले पर अन्याय करेगी, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती, वही स्त्री-पुरुष ऐसा

अकारण मिटती हुई गृहस्थियाँ

एक मित्र का उदाहरण

आचरण क्यों करने लगते हैं ? पति महोदय के मुँह से कभी दो कड़ी बातें निकल जाती है और वे उस मृदुल स्वभाव की स्त्री के कलेजे मे लग जाती हैं तब वह किंचित् प्रेमभरे मान का व्यवहार करती है। बस, पति महोदय तने है कि तने हैं। हम लोगो से पछतायँगे पर स्त्री के सामने वैसा करना अपनी हेठी समझते हैं। यह बात उनको बहुत दुःख देती है कि उनके व्यवहार से उनकी पत्नी को तकलीफ़ हो रही है। पर स्त्री को छोटी समझने का जो संस्कार हमारे अन्दर घर कर

बस, पति महोदय तने हैं कि तने हैं।

गया है उसके कारण, अन्य बहुत से पतियों की भाति, वह भी आशा करते है कि ग़लती चाहे उन्हीं की हो पर पति देव के सामने झुकना स्त्री को ही चाहिए। हाँ, एक बार स्त्री विनम्र वाणी में बोले, बस उनका दिल पानी-पानी हो जायगा और पारिजात वृक्ष की भाँति अपना सब कुछ पत्नी के सामने रख देगा। वह नारी सचमुच गृहलक्ष्मी है जो इस बात को जानती है और अपनी हेठी की परवा न करके ज़रा सा झुककर पति का हृदय वश में कर लेती है। वैसा करते ही सब बाँध टूट जाते है और दिलों का सञ्चित मल धुल जाता है। फिर हँसी-खुशी की चाँदनी छिटक जाती है एवं जीवन की यात्रा हलकी और सरल हो जाती है।

मैं यह नहीं कहता कि यदि पति न झुकता हो, यदि वह झूठे गर्व और अहंकार के वश में होकर भूलें कर रहा हो तो पत्नी को भी अड़ जाना चाहिए। ऐसा करनेवाली स्त्री अपनी जिन्दगी के सुखभरे सपनों के साथ खतरे का खेल खेलती है। गलती से ग़लती और बुराई से बुराई दूर नही हुआ करती। पति के ग़लती करते हुए भी चतुर एवं सुख प्राप्त करने की कला मे निपुण गृहणी अपनी श्रेष्ठ नीति एवं संस्कृति से विषैले वातावरण का अन्त कर देती है। वह अभिमान के सामने झुककर अभिमान का नाश कर देती है।

चतुर पत्नियाँ

इसलिए विवाहित जीवन में सुख तभी मिल सकता है, जब एक की ग़लती का फायदा दूसरा उठाने का लोभ न करे बल्कि उस ग़लती के बुरे प्रभाव से घर को बचा ले। इस-लिए अच्छी स्त्रियाँ वे हैं जो अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के कार्य में दूसरों की गलतियों को देखती नहीं चलतीं बल्कि अपना कर्तव्य देख कर, अपना धर्म लेकर चलती हैं, जिनकी दृष्टि भलाई और सच्चे सुख की ओर रहती है और जो दुःख के अन्धकार को अपनी हँसी-खुशी, सेवा और मृदुलता के प्रकाश से दूर करती रहती है।

पर स्त्रियों को हमने इस तरह की बातें अब तक बहुत पढ़ाई है। हमने उन्हें उपदेश किया है। उनको उनका कर्त्तव्य बताते भी हमें बहुत दिन हो गये। उनको उनका मार्ग बताने में हमने अपने मार्ग का ध्यान छोड़ दिया। हम बातें करते गये और हमें सुध न रही कि हमारे पाँव किधर बढ़े चले जा रहे हैं। हमने बात और उपदेश बन्द करके यह न सोचा कि हम खुद कहाँ है, कहाँ जा रहे है और क्या हमारे कार्य ठीक हैं।

हमें भी कुछ करना चाहिये

इसलिए जरूरत इस बात की है कि गृहणी को उसके कर्तव्य सम-झाने के क्रम को हम थोड़ी देर के लिए बन्द करें और अपने समय का कुछ हिस्सा अपना जीवन सुधारने, अपने कर्त्तव्य समझने में लगायें।

यह ठीक है कि स्त्री को पति की ग़लतियों की ओर न देखते हुए भी अपने श्रेष्ठ कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए; पर यह भी ठीक है कि जब तक पति अपनी ग़लतियों की तरफ़ से आँखें मूँदे हुए है, स्त्री को दिये गये उपदेश कुछ बहुत ज्यादा असर पैदा नहीं कर सकते।

तब मै पतियों से कहूँगा कि कोई शैतान अन्धविश्वासियो में भी सदा के लिए देवता बनकर नहीं रह सकता। देवता बनने के लिए देवता-जैसा काम भी करना चाहिए; उसके लिए देवता बनने की कोशिश सच्चाई के साथ करनी चाहिए। मैं यह भी कह दूँ कि मेरे नज़दीक कोई देवता मनुष्य से बढ़कर नहीं है। मनुष्यता की अनुभूति ही सच्चे देवत्व की जननी है। ग़लतियाँ आदमी से होती हैं। इसलिए मै ज़िन्दगी के कँटीले मार्ग पर चल रहे पति या पत्नी से काँटा लग जाने पर उनको अपमानित करने, उनको जानवर मान लेने को तैयार नहीं हूँ। पर मै मानता हूँ कि सच्चाई और वफ़ादारी तभी निभ सकती है जब हम अपने दिलों को साफ़ रखें और जो ग़लती हो जाय, उसे समझने, उसे स्वीकार करने और पश्चात्ताप करने को सदा तैयार रहें। तभी जीवन का सच्चा सुख और विकास सभव है।

शैतान सदा देवता बनकर नही रह सकता

यह समझ लेना बहुत बड़ी भूल है कि गृह-जीवन की सारी जिम्मेदारी पत्नियों की ही है। पुरुष नारी की अपेक्षा अधिक अनुभवी, अधिक बुद्धिमान और कम भावुक होता है इसलिए उससे आशा की जाती है कि जहाँ स्त्री अस्थिर और अशान्त हो जायगी तहाँ भी वह अपने होशहवास दुरुस्त रखेगा। इस तरह जीवन की कठिनाइयों को हल करते हुए ठीक रास्ते पर गृहस्थी की गाड़ी को ले जाने के कार्य में पति की जिम्मेदारी स्त्री से कुछ कम नहीं, ज्यादा ही है।

पर एक ज़माने से हमारे जीवन का संतुलन खराब हो गया है। स्त्री या पुरुष सब एक नक़ली वातावरण में पल रहे हैं। ज़िन्दगी में सच्चाई नहीं रह गई है। यह भी कहें तो कुछ ज्यादा न होगा कि

सच्चाई की नक़ल ही भर उतारना हममें बाकी रह गया है। हम दूसरों के प्रति सच्चे नहीं होते क्योंकि हम अपने प्रति ही सच्चे नहीं रह गये हैं। हम दूसरों को धोका देते है और धोका खानेवाले को अपने से ज्यादा बेवकूफ़ समझते हैं। असल बात यह है कि धोका हम अपने को देते हैं। जो अपने को धोका नहीं दे सकता वह दूसरे को भी धोका नहीं दे सकता। हमारी सारी बुराइयों की जड़ वह आत्म-वञ्चना है जिसको हमने एक कला की तरह, अपने अन्दर विकसित कर लिया है।

नक़ल से काम न चलेगा

समय आ गया है जब हम समझ लें कि इस तरह की लुका-छिपी, इस तरह की ग़लत नींव पर जीवन का निर्माण नहीं किया जा सकता।

आत्म-वंचक पुरुष

परिस्थिति-वश पुरुष आज नारी की अपेक्षा अधिक आत्म-वंचक है। जब मैं यह कहता हूँ तो दोनों की तुलना नहीं करता और न मेरा यही मतलब है कि नारी में पुरुष से कोई आन्तरिक विशेषता या श्रेष्ठता है। मेरा मतलब सिर्फ यह है कि ज़िन्दगी के चक्कर में पड़ा हुआ, जीविका प्राप्त करने को किसी तरह विवश यह जो पुरुष है उसे समाज की विषम अवस्था के कारण बहुत-सी अवाञ्छनीय चंटताएँ, बहुत-सी वञ्चनाएँ करनी पड़ती हैं; अनेक ऐसे काम करने पड़ते हैं जिन्हें वह हृदय से घृणा करता है। उनको करने की अपनी मजबूरी पर उसे खीझ और तकलीफ़ होती है, फिर भी कोई रास्ता न दीख पड़ने से वह चिड़चिड़ा, वहमी, तुनुक मिजाज हो जाता है।

कष्ट से भरी मर्दों की जिन्दगी

यद्यपि अक्सर यह बात कही जाती है कि आज नारी-जीवन अधिक पीड़ित है पर सच बात तो यह है कि औसत पुरुष की ज़िन्दगी आज औसत स्त्री की जिन्दगी से कहीं ज्यादा कष्ट और संघर्ष से भरी हुई है। पर इसी कारण उसका हित इस बात में है कि वह अपने को हर क़दम पर सँभालता हुआ आगे बढ़े। अपने पर पूरा क़ाबू रखने की जितनी जरूरत

आज पुरुषों—विशेषतः पतियों को है, उतनी कभी न थी। गृह का नायक होने के कारण उसे ज्यादा कष्ट सहने, ज्यादा जिम्मेदारी उठाने को खुशी के साथ तैयार होना चाहिए।

आज ज़माना ऐसा आया है कि बेचारा पति एक आफत मे फँस गया है। प्रेस और प्लेटफार्म उसकी निन्दा से ध्वनित हैं। अपना सारा शील—'प्रेस'—भूलकर स्त्रियाँ वर्तमान अवस्था के

बेकार भोलापन

सम्पूर्ण दोषों की जिम्मेदारी उस पर डाल देने में एँड़ी-चोटी का पसीना एक कर रही है। ऐसे वक्त अकेले और असहाय पड़ गये पति की जिम्मेदारी अपने सम्बन्ध मे बहुत बढ़ गई है। उसे यह अच्छी तरह समझ लेने की जरूरत है कि अब पुराना जमाना लद चुका है और आज उसे एक विषम परिस्थिति के बीच से, एक सघर्ष से भरी हुई दुनिया मे, अपना रास्ता बनाते चलना है। अब वह भोलापन कुछ ज्यादा काम न देगा जिसमें पति समझ लेता था कि मै बुरा हूँ या भला पर मेरी स्त्री को तो देवी होना ही चाहिए और उसका कर्तव्य मेरी सेवा, मेरी पूजा करना ही है। स्त्री का जो भी कर्त्तव्य हो, जो भी रास्ता हो, आज वह रास्ता हम अपने परम्परा से चले आये हुए अधिकार के बल पर उसे नही बता सकते। आज उसे अपनी श्रेणी का, अपने जैसा मनुष्य और अपना सच्चा साथी मानकर ही हम उसके साथ निभ सकते हैं और उसे निभा सकते है। सिर्फ सूखे सिद्धान्तों और लचर दलीलों को लेकर तिल का ताड़ बनाते रहने से यह न होगा। इसके लिए पति को स्त्री की दुर्बलता न देखनी होगी, अपनी दुर्बलता भी देखनी होगी। उसे अपनी महत्ता का भी स्मरण करना होगा और उस दुर्बलता को दूर करने और अपनी महत्ता को बनाये रखने या उसमें सचाई लाने के लिए पूरी चेष्टा करनी होगी। यह ज़माना अन्ध श्रद्धा का नहीं है। अपनी आँखों मे विस्मय और ओठों पर प्रश्न लिये नारी आज उठी है। अब लँगड़ा-लूला, व्यभिचारी कैसे भी पति की पूजा का सिद्धान्त चल सकेगा, इसकी आशा करना सिर्फ अपने को धोका देना है। फिर

सदाचारी, ईमानदार और पत्नी-व्रती पति के मुख से तो ऐसी बात क्षण भर को सहन की जा सकती है पर जो स्वयं दुर्बलताओं का गुलाम है उसके मुंह से यह महज परले सिरे का स्वार्थ-जैसा लगता है।

इसलिए पतिदेवता को अपना यह भाव त्याग देना होगा कि वह मूलतः ही अपनी पत्नी का पूज्य है। नारी से तो मै अब भी यह कहूँगा कि उसका यह भाव रखना उसके लिए कल्याणकर है पर पति से मुझे यही कहना चाहिये कि उसके लिए अपने सम्बन्ध में इस तरह का ख्याल रखना उसे चौपट करने वाला और उसे अँधेरी एव बदबूदार खाइयों में ढकेल देने वाला है। उसे तो जिन्दगी का बोझ उठाने मे अपनी पत्नी से ज्यादा वफादारी का सबूत देना ही अच्छा है। उसे स्त्री मे दोष-दर्शन की वृत्ति छोड़ कर अपने को देखने परखने और सुधारने की वृत्ति डालनी चाहिए।

यह मनुष्य की बड़ी सामान्य कमजोरी है कि वह दूसरो के बारे में जितनी कठोर कसौटी का इस्तेमाल करता है अपने बारे मे नहीं। दूसरों की जिन्दगी को वह ऊँचे पैमाने से नापना चाहता है और अपनी कमजोरियों के लिए तरह-तरह की सफाई देता है। सामाजिक एवं घरेलू सम्बन्धों मे गलतफहमी और विषमता पैदा होने का एक बहुत बड़ा कारण यही है। यदि आदमी दूसरों के बारे में भी उतना ही मुलायम और उदार हो जितना वह अपने बारे में होता है तो हमारी आधी समस्याएँ अपने आप खत्म हो जायँ। हमारे बीच बहुत-सी कटुता इसलिए पैदा होती है कि दूसरों के दोषों पर हमारी निगाह ज़रूरत से ज्यादा तेजी के साथ दौड़ती है, जब अपने दूर से चमकते दीखने वाले दोषों पर भी हम सोनहली कलई करके लोगों की आँखों धूल झोंकना चाहते हैं।

मनुष्य की एक कमज़ोरी

दाम्पत्य जीवन के लिए भी यही बात है। एक रिवाज चल पड़ा है और पतियों ने अपने और अपनी बीबियों के लिए नीति और सदाचार के अलग-अलग पैमाने बना लिये है। आचार की जो शिथिलता

पति के लिए क्षम्य है वही पत्नी के लिए अक्षम्य है। मनोरञ्जक बात तो यह है कि लम्पट पुरुष, जो दूसरों की बहू-बेटियों की ओर लोलुप व्यवहार करने को आतुर है, अपनी औरत से सती सावित्री होने की आशा रखता है। यह मनोवृत्ति क्रोध करने योग्य भी नहीं है, यह दयनीय है।

अलग पैमाने अब काम न देंगे

पतियों के लिए बहुत अच्छा होगा यदि वे जल्द से जल्द समझ लें कि इस तरह की हालत अब नहीं चल सकती। सदाचार का एक ही पैमाना दोनों के लिए निभ सकता है—वही ठीक है और वही होना चाहिए। बल्कि पुरुष और पति होने के नाते मै तो चाहूँगा कि पति अपनी पत्नियों की जॉच की कसौटी में भले ही थोड़ी-बहुत शिथिलता रखे पर अपनी परख में उनको बड़ा बेरहम होना चाहिए। आजतक जो कुछ उन्होंने अपने प्रथागत अधिकार के बल पर पाया है उसे सच्ची शक्ति और चरित्र-बल से प्राप्त करने का दावा उनको करना चाहिए। लाठी और झूठे गर्व के बल पर औरते अब हॉकी नही जा सकतीं।

इसलिए आज विवाहित जीवन में पतियों के लिए आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। उनको झूठा मान, झूठी शेखियॉ और झूठी शान का त्याग करना पड़ेगा। यदि वे अपने लिए एक ऐसा गृह चाहते हैं जहाँ जीवन के थके क्षणों में विश्राम प्राप्त करे, जहॉ का वातावरण छल-कपट, धूर्त्तता और होड़ से मुक्त हो, जहॉ दिल बोले, जीवन स्फूर्ति और बल प्राप्त करे, जहॉ शान्ति और तृप्ति हो तो उनको इसके लिए अपने अन्दर आत्म-निरीक्षण की, अपने को देखने, परखने और सुधारने तथा अपनी ही तरह, बल्कि उससे भी ज्यादा, उदारता के साथ अपनी पत्नी तथा अन्य लोगों के विषय में सोच-विचार करने की आदत डालनी चाहिए। यह कोई बुद्धिमानी नहीं है कि जब तुम्हारे दो मीठे बोल दाम्पत्य जीवन पर पड़ती काली छाया को दूर करने के

मूर्खता का सौदा

लिए काफी हों तब झूठी शेखी के कारण तुम एक महँगा सौदा कर लो। यह कोई बुद्धिमानी नहीं है कि जब तुम हँसी की एक हलकी थपकी से अपनी जीवन-संगिनी के दिल मे सच्ची सहानुभूति और प्रेम की हिलोरें पैदा कर सकते हो तब अपनी झूठी शक्ति दिखाने के लिए अपने चेहरे पर शोक का कालापन फेर लो। इन छोटी बातों मे तुम कुछ खोते नहीं हो; देकर और झुककर भी पाते बहुत हो। हार मान कर भी जीत तुम्हारी है। सुख तुम्हारा है; स्वर्ग तुम्हारा है। तुम अपना मल धोते हो और दूसरो को भी निर्मल बनाते हो।

क्या अच्छा हो तुम इस पर विचार करो, इसे अपनाओ और अपनी गृहस्थी को स्वर्ग बना लो।

———

: १० :

तुम उसे क्या दोगे ?

रामचन्द्र एक औसत युवक है। शिक्षित है; उसने एम० ए० की डिग्री प्राप्त की है और इस शिक्षा के कारण यह भी समझा जाता है कि वह सुसंस्कृत है। आजकल के ज़माने में इसे सौभाग्य ही समझना चाहिए कि यूनिवर्सिटी से निकलते ही उसे एक अच्छी नौकरी मिल गई। वह एक कालेज में अध्यापक हो गया है। फ़िलहाल उसे १२५) मिलते हैं। काम चल रहा है।

रामचन्द्र

पर रामचन्द्र अभी तक अविवाहित है। माता-पिता बार-बार ब्याह के लिए कहते हैं। मित्र भी मिसेज़ का आतिथ्य स्वीकार करने के लिए उत्कण्ठित है। बहुत से लोग उसके पास शादी के पैग़ाम लेकर आते हैं—उन दूकानदारो की तरह जो अपने-अपने माल की तारीफ़ से ग्राहक को थका देते हैं। रामचन्द्र कुछ दुनिया से विरक्त नहीं है, न वह ब्रह्मचारी का पवित्र जीवन बिताने को ही उत्सुक है—इसके लिए शक्ति भी नहीं, इच्छा भी नहीं। तब शादी नहीं क्यो हो पाती ?

बात यह है कि रामचन्द्र अभी उसी हालत मे है जब विवाह और गृहस्थ-जीवन युवक के लिए एक रहस्य, एक नशा, एक कल्पना-लोक की चीज़ है। उसका हृदय शादी के नाम पर एक भय-मिश्रित अनिश्चितता से पूर्ण है। उसकी माँग बहुत ज्यादा है। वह चाहता है, पहले तो परी-सी बीबी मिले, फिर वह सभ्य और सलीकेवाली हो। अच्छी पढ़ी-लिखी हो। बोले तो रस टपके; हँसे तो चाँदनी छा जाय। परिश्रमी ऐसी हो कि उसे घर की चिन्ताओं से तंग न करे और अपनी सेवा से माता-पिता

कल्पनाओं के लोक मे

को खुश और घर को व्यवस्थित रखे और सबसे बड़ी बात यह है कि सहनशील और उदार हो। दो कड़ी बातें बर्दाश्त कर ले, मुसीबत आ जाय यो उसे हँसते-हँसते झेलने को तैयार रहे......इत्यादि-इत्यादि।

इत्यादि-इत्यादि इसलिए कि मै खत्म न कर दूँ तो यह माँगो और आशाओ का सिलसिला पता नहीं कब तक चलता रहे क्योंकि दुनिया में जितने गुण नारी मे होते है या यूँ कहूँ तो शायद ज्यादा सही होगा कि नारी मे जितने गुणों की कल्पना बैठे-ठाले और कल्पनाशील कवियों या व्यक्तियों ने कर ली है, वे सब रामचन्द्र की पत्नी में होने चाहिएँ।

ऐसे युवक के सपने और कल्पना के महल अगर गायब हो जायँ और दुनिया उसे जहर मालूम हो तो इसमे ताज्जुब की बात क्या है ?

पर रामचन्द्र का तो मुझे यो ही एकाएक ख्याल आ गया। इस मामले मे वह कुछ अकेला नहीं है। हज़ारों-लाखो रामचन्द्र, मामूली उलट-फेर के साथ, हमारे बीच मौजूद हैं। इनकी शेख़-चिल्ली-सी बातें महज लोगों के मनोरञ्जन और दिलबस्तगी की सामग्री है। पर यही बातें आगे जाकर उनकी जिन्दगी वीरान कर देने का काम करती हैं।

एकाकी नही

फिर रामचन्द्र तो अभी नया-नया कालेज से निकला है और कालेज मे ही खप गया है। अभी साहित्य के रोमांस से भरे पात्र उसके कलेजे के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे हैं। जिन्दगी की सचाइयों और कठोरताओं के साथ उसका वास्ता ही क्या है ? इस पर वह अभी अविवाहित है इसलिए स्त्री उसके लिए पकड़ मे न आ सकने वाली एक रङ्गीन कल्पना ही कल्पना है।

पर पढ़े-लिखे लोगों का जो अलग वर्ग बनता जा रहा है उसमें या बिना पढ़े भी नगरों मे रहने वाले लोगों की जमात मे ऐसे आदमी बहुत ज्यादा है, जो अपनी स्त्रियों से तरह-तरह की संभव-असभव आशाएँ करते है। दुनिया में जो कुछ अच्छाइयाँ हैं, सब की आशा और अपेक्षा उनको

असम्भव माँगे

अपनी स्त्रियो से है। वह सुन्दरी भी हो, वह परिश्रमी भी हो, वह मिठ-बोली भी हो; वह एक अच्छी माँ, एक चतुर गृहणी, एक प्रेमवती पत्नी, एक वफ़ादार सेविका हो। वह शूल का जवाब फूल से दे और फलदार वृक्ष की भाँति ढेला मारने पर खाने को मीठे फल दे। मतलब यह कि चाहे उसका शरीर हाड़-मास का बना हो पर उसका दिल किसी ऐसे काल्पनिक पदार्थ का बना होना चाहिये जिस पर दुर्व्यवहार और बुराइयों का कुछ असर न पड़ता हो!

मै यह नहीं कहता कि स्त्री मे ये गुण न होने चाहिएँ या यह कि उसको ऐसा बनने की कोशिश न करनी चाहिए। वह तो उसे करना चाहिए ही पर मै प्रत्येक पति से, जो इस तरह की जबर्दस्त, और प्रायः दुर्लभ, माँगे अपनी स्त्री के सामने रखता है, पूछना चाहता हूँ कि तुम बदले में उसे क्या दोगे? और यह कि तुम कुछ देना भी जानते हो, लेने के हौसले तो, जानता हूँ, तुम्हारे बहुत बढ़े-चढ़े है?

दाम्पत्य जीवन की ऊँची-नीची, दुर्गम पगडंडी पर चलते हुए प्रत्येक पति की बहुतेरी मुश्किलें हल हो सकती है, अगर वह इस सवाल पर जरा गहराई के साथ विचार करे और इसका सन्तोषजनक उत्तर शब्दों से नही, अपने आचरण और व्यवहार से दे दे।

पति का कर्त्तव्य

मै मानता हूँ कि पति को एक अच्छे विश्रामगृह की आवश्यकता है जहाँ वह दुनिया के संघर्ष और झगड़ों से कुछ देर के लिए शान्ति पा सके। पति के लिए ऐसा शान्ति-सुख वाला और प्रेम-पूर्ण घर बनाना स्त्री का कर्तव्य है। मै यह भी मानता हूँ कि ऐसा घर बनाना पुरुष की अपेक्षा स्त्री के ही वस की बात ज्यादा है। पर इसके साथ ही यह भी है कि स्त्री को अपने इस कर्त्तव्य-पालन के अनुकूल स्थिति और वातावरण बनाना पति का प्रधान कर्तव्य है।

एक स्त्री, जो अभी-अभी लड़कपन के दिन पार करके गृहस्थ-जीवन में आई है, जिसके साथ तुम्हारा परिचय प्रायः नही-सा है या

है तो भी बहुत थोड़ा और थोड़े दिनों का है अथवा मानसिक उद्वेग की स्थिति का है; जिसने पिता के वात्सल्य और माँ की प्रबल ममता से भरा अपना चिर-परिचित लड़कपन का वह घर छोड़ दिया है, जिसमें पग-पग पर अनेक स्मृतियों के कण बिखरे हुए हैं, जिसने अपना समस्त परिचित समाज, अपनी हमजोलियों और सहेलियों को छोड़कर एक बिल्कुल अपरिचित स्थान में अपरिचित समाज के बीच प्रवेश किया है, जिसका सब कुछ, परिस्थिति-वश, तुममें ही सिमिट कर रह गया है, उसके दिल की अवस्था पर विचार करना तुम्हारा कर्तव्य है। उसके मन में भी भी आशाएँ होंगी, उसके मन में भी उमंगे होगी, उसके वलवले होगे। उसका दिल भी किसी के चरणों मे सब कुछ निछावर करके लुट जाने को करता होगा। उसमे भी एक ऐसे साथी की प्यास होगी जिसके आगे वह दिल को खोलकर रख दे और जो उसके दुःख-सुख को अपना दुःख-सुख समझे।

स्त्री की भी आकांक्षाएँ होती हैं!

इसलिए जहाँ तुम अपनी स्त्री से लम्बी-चौड़ी आशाएँ कर रहे हो वहाँ तुम्हें भूलना न होगा कि उसके कोमल हृदय में भी तुमसे बहुतेरी आशाएँ होंगी।

तब तुमको इस लड़की या नवयुवती का दिल जीत कर अपना कर लेना है। उसे सर्वथा अपना लेना है। उसे अपने प्रति बिल्कुल निर्भय और आश्वस्त कर देना है।

सुखी दाम्पत्य जीवन का यही मर्म है। याद रखो, विवाह के बाद के कुछ दिनों का असर प्रायः जीवनव्यापी होता है। तुम्हारे भावी सुखों या दुःखों की नींव यहीं पड़ती है।

इसकी अपेक्षा कि तुम अपनी पत्नी से बहुत अधिक आशाएँ कर लो, यह ज्यादा अच्छा होगा कि पहले तुम उसके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करो। शान्तिमय और प्रेममय गृहस्थ जीवन का सबसे बड़ा रहस्य यह है

सुरक्षित मार्ग

कि इसमें अपने सुख की अपेक्षा अपने जीवन-साथी का सुख और हित पहले देखना पड़ता है। अपने हित की रक्षा का सर्वोत्तम तरीका ही दूसरे के हित की रक्षा करना है। आत्म-दान ही सच्चे सुख की कुंजी है।

सबसे पहली ज़रूरत इस बात की है नवागत पत्नी के इकलेपन के भाव को तुम दूर कर दो। उसे पूर्णतः निश्चिन्त कर दो कि जीवन की यात्रा मे अब वह अकेली नहीं है—तुम सर्वदा उसके साथ हो। सूनेपन, खेद और दुःख की इस अवस्था में प्रायः स्त्री बड़ी उद्वेगपूर्ण—'सेण्टीमेण्टल'—होती है। मायके के प्यार से दूर होने का भाव, वहाँ से सदा के लिए बिछुड़ने का दुःख और एक अद्भुत-सा नया जीवन आरम्भ करने का भय उसे चारों ओर से घेरे रहता है। ऐसे समय उसके हृदय को बड़ी सहानुभूति और मृदुलता से स्पर्श करो। उसमें जो कुछ श्रेष्ठ भाव हैं उन्हे जगाओ।

मृदुला का स्पर्श

पर याद रखो, यह सब करते हुए अभिनय—'ऐक्टिङ्ग'—न करो तुम्हारे भावों, कार्यों और बातों मे सचाई और ईमानदारी हो।

पहली बात, जो नारी पति से चाहती है वह उसके साहचर्य और ससुराल में पथ-प्रदर्शन की आकांक्षा है। वह चाहती है, इस अपरिचित समाज में पति उसके निकट रहे; उसे बताये कि किसके साथ उसे कैसा सम्बन्ध जोड़ना है; किसके बारे में उसे कौन सी जानकारी कर लेनी है।

साहचर्य की आवश्यकता

पर यह तो परिस्थिति और आवश्यकता की बात है। इसका सम्बन्ध समाज और कुटुम्ब से है। इनके साथ हृदय का भी सवाल है। इस सम्बन्ध में नारी की सबसे बड़ी आवश्यकता पति का प्रेम है। जिस क्षण वह दिल से आश्वस्त हो जायगी कि तुम उसके हो, मात्र उसके लिए हो और तुम्हारे प्रेम के सम्बन्ध में वह तुम पर सोलह आना निर्भर कर सकती है उस क्षण समझ लो कि तुमने दाम्पत्य जीवन की आधी लड़ाई जीत

हृदय की भूख

ली। प्रेम नारी के जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसे पाकर वह जलभरे बादल की भाँति पृथ्वी पर झुक जाती है और पूर्णतः आत्म-दान कर देती है। इस प्रेम के सामने अधिकार के वे शाब्दिक झगड़े हेच है जिन्हें सुनने और पढ़ने के हम आदी हो रहे है। वस्तुतः प्रेम के अधिकार से किसी अधिकार की तुलना नहीं की जा सकती। इस अमृत को पीकर और कुछ पीने की कामना नहीं रह जाती। अधिकार के लिए बहुधा वे स्त्रियाँ झगड़ती है जिनका जीवन पति-प्रेम से सूना रहा, फलतः जिनका हृदय अतृप्त होकर छटपटा रहा है। जिसे सच्चा प्रेम मिल गया है उसे बिना माँगे ही सब अधिकार भी मिल गये है।

जीवन की थाती

नारी के लिए पति का यह प्रेम उसके जीवन की थाती है। यही मानो उसका सर्वस्व है। यह वह स्रोत और केन्द्र-विन्दु है जहाँ से उसके जीवन की सम्पूर्ण अभिलाषाओं और सम्पूर्ण कार्यों में, उसकी स्फूर्ति और उसके उत्साह का जन्म होता है। इसे पाकर वह मृदु, प्रेमल, सेवापरायण हो जाती है। उसका जीवन मिठास और तृप्ति से भर जाता है।

भयंकर स्थिति

इसके विषय मे नारी के मन मे किसी प्रकार का सदेह या शङ्का पैदा होने का अवसर देना अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारना है। जिस नारी को पति का सच्चा प्रेम नहीं मिला है वह प्रायः अनमनी, उदास, चिड़चिड़ी, तुनुकमिजाज हो जाती है। छोटी-छोटी बातों में चिढ़ जाती और बात-बात में एक आफत खड़ी कर देती है। उसके हृदय पर मानो जहरबाद टपक रहा होता है जो एक क्षण उसे शान्ति और चैन से नहीं बैठने देता। नासूर की भाँति ऊपर-ऊपर सूखते रहने पर भी, बीच-बीच में यह अपने दुर्गन्धपूर्ण मवाद से विषम और प्राणान्तक स्थिति खड़ी कर देता है। न वह स्त्री शान्ति पा सकती है, न दूसरे किसी को शान्ति लेने देती है।

पुरुष की भूल

पुरुष नारी-हृदय की इस स्थिति को अक्सर समझ नहीं पाता है। और समझने की कोशिश करके अक्सर भूल करता है। असल बात तो यह है कि वह समझने की सच्चाई के साथ कोशिश नहीं करता। पति-प्रेम के विषय में नारी क्यों इतनी सजग, इतनी उग्र और न झुकनेवाली होती है, इसे प्रत्येक पुरुष पति को समझना चाहिए। बात यह है कि उसके जीवन का समस्त रस इस पति-प्रेम को लेकर ही है। उसकी सारी सामाजिक मर्यादा, गृह और कुटुम्ब में उसकी स्थिति और इज्जत सब इसी केन्द्र-विन्दु पर निर्भर करते हैं। हिन्दू पत्नी पति में बहुत केन्द्रित होती है। इसलिए पति के प्रेम पर उसका समस्त जीवन और भविष्य निर्भर है। तब वह अपने जीवन के प्रधान अवलम्ब, अपनी शक्ति के स्रोत और अपनी सामाजिक मर्यादा के केन्द्र को सहज ही कैसे छोड़ सकती है ?

इसलिए जिस स्त्री के साथ विवाह करके तुमने उसे अपनी जीवन-संगिनी बनाया है उसे अपना समस्त प्रेम देकर निश्चिन्त कर देना तुम्हारा धर्म है।

दूसरी बात यह कि उसकी जो उचित आकांक्षाएँ और आशाएँ तुमसे। हैं उन्हें पूर्ण करने की तुम्हे ईमानदारी के साथ पूरी कोशिश करनी चाहिए। आरम्भ में ही उस पर बहुत ज्यादा बोझ न पड़ जाय इसका भी तुम जहाँ तक ख़्याल रख सको, रखो। उसके इर्द-गिर्द जबर्दस्ती और विवशता का वातावरण न होना चाहिए। उसके प्रत्येक दुःख, उसकी प्रत्येक चिन्ता को तुम अनुभव करते हो, यह अपने कार्य, और आवश्यकतानुसार वाणी से भी, प्रकट करते रहना चाहिए। समय-समय पर उचित प्रशंसा करके उसे उत्साह भी दिलाते रहना चाहिए।

सब मिलाकर औसत नारी औसत पुरुष से अधिक व्यावहारिक होती है। वह निश्चितता, सुरक्षितता और निश्चिन्तता का वातावरण

पसन्द करती है। 'जिप्सी' का अनिश्चित, अस्थिर जीवन उसे नहीं भाता। वह सनक और तूफानों की जिन्दगी नहीं चाहती। प्रत्येक पति को इस बात का ख्याल रखना चाहिए। निश्चित आय का गृह-जीवन मे बड़ा महत्व है। स्त्री के स्वभाव पर भी उसका बड़ा असर पड़ता है।

यह भी याद रखने की बात है कि स्त्री को भी मनोविनोद के लिए समय और सामग्री चाहिए। इस मनोविनोद का प्रबन्ध करना तुम्हारा कर्तव्य है! उसके स्वास्थ्य को बहुत ज्यादा 'टैक्स' मत करो। स्त्री के लिए स्वास्थ्य पुरुष की अपेक्षा भी अधिक आवश्यक है क्योंकि वह केवल नारी ही नहीं माता भी है और उसकी शरीर-संपत्ति पर सन्तान का भी स्वास्थ्य एवं भविष्य निर्भर है।

इन सब बातों को संक्षिप्त करके बहुत थोड़े में कह दिया जा सकता है। इसका निचोड़ तो यह है कि तुम्हें अपनी पत्नी से बड़ी-बड़ी आशाएँ और माँगें करके ही नहीं बैठ रहना है बल्कि तुम सच्चे, सुखी दाम्पत्य जीवन का निर्माण करना चाहते हो तो तुमको इसका भी विचार और निश्चय कर लेना है कि तुम उसे क्या और कितना दोगे। यद्यपि जिन्दगी मामूली व्यापारिक अर्थ मे सौदा नहीं है पर व्यापक और श्रेष्ठ अर्थ में यह एक कठिन सौदा है। इसमें जो लेना ही चाहता है उसकी साख बहुत जल्द खत्म हो जाती है। जो पति स्त्री से बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ रखता है पर उसकी उमगों, उसकी अभिलाषाओं पर ज़रा भी ध्यान नहीं देता वह बालू से तेल निकालना और मोती निचोड़कर प्यास बुझाना चाहता है। निस्सन्देह इसमें उसे निराश होना पड़ेगा। जरूरत इसकी है कि तुम जितना चाहते हो उतना ही देने की भी तैयारी रखो। इसी मे तुम्हारा महत्व और सम्मान है।

तुमने आज तक चाहा ही चाहा है—माँग ही माँग की है। अब दिल को स्वस्थ कर सोचो, तुम अपनी पत्नी को क्या दोगे?

: ११ :

भावावेश और तृष्णा से बचो !

भावावेश और तृष्णा

आजकल विवाहित जीवन में जो इतनी खीझ, इतना दुःख और इतना उतार-चढ़ाव है उसका एक कारण उसमें बढ़ती हुई भावावेश और तृष्णा की प्रवृत्ति है। कुछ झूठे सपने, कुछ पूरी न हो सकने वली मुरादें, कुछ मूर्खतापूर्ण लालसाएँ और आदमी को देवता समझने या फिर हैवान की तरह मान लेने की गलती, बस इस संबल को लेकर जिन्दगी की कठिन मंजिल में आज का औसत आदमी अपनी यात्रा शुरू करता है।

स्वप्नों का काल

युवावस्था स्वप्नों का काल है। नारी कुछ इन स्वप्नों से रहित नहीं होती। इस विषय में उसकी और पुरुष की स्थिति एक-सी है। वह भी यौवन में एक खुमारी और जीवन में एक अँगड़ाई लिये एक ऐसे पुरुष के साथ विवाह की वेदी पर बँधने आती है जिसके दिल और दिमाग में भावनाओं का एक सागर लहरा रहा है; जो शान्त होकर कुछ सोचने और किसी निर्णय पर पहुँचने से असमर्थ है, जिसमें अनेक सिद्धान्त, भाव और रहस्य बराबर अपनी प्रधानता के लिए उमड़ रहे हैं। नारी स्वभावतः पुरुष से कुछ ज्यादा व्यावहारिक होती है और वह एक नई दुनिया बनाने के लिए आती है पर जवानी की उमंगों में पुरुष के दो मीठे बोल और खुद अपने दिल की एक अजीब-सी हालत और उतार-चढ़ाव के कारण उसपर एक बेहोशी छा जाती है। 'अपने' पुरुष का, निजत्व—अपनेपन—से भरा हुआ स्पर्श, जिसका उसे पहले कभी अनुभव नहीं होता, उसे शक्तिहीन कर देता है।

विवाह के बाद के ये कुछ दिन सारे विवाहित जीवन का फैसला कर देते हैं। वे जीवन की शक्ति के सारे रस को चूसकर उसे नीरस और स्वादहीन कर देते है। स्वभावतः इस तरह का भावावेश, यौवन की यह प्यास जीवन के संघर्ष में, जब हाथ-पाँव, दिल और दिमाग़ की पूरी थकावट के बाद भी आदमी के लिए रोटी मिलना दूभर हो रहा है, थोड़े ही दिन चल सकती है। भोग की प्रकृति मे ही एक तरफ उदासी और विरक्ति है और दूसरी तरफ स्वार्थ और संकुचितता है। यह इन्सान मे खुदगर्जी की भावना को बढाता है, आदमी में जो श्रेष्ठ भाव हैं, जो देवत्व है, जो मनुष्यता है उसे घटाता है और उसमे दबी हुई पशुता को उभारता है। अवश्य ही यौवन में भोग की प्रवृत्तियाँ प्रधान होती हैं। इसीलिए साधारण आदमी के लिए विवाहित जीवन की व्यवस्था है। पर यह व्यवस्था इसलिए नहीं है कि मनुष्य भोगों में आकण्ठ डूब जाय। यह व्यवस्था इसलिए है कि आदमी धीरे-धीरे इसके सहारे अपनी भोग-वृत्ति को शान्त करे, उस पर नियंत्रण एवं प्रभुत्व स्थापित करे, और अपनी मनुष्यता और अपने अन्दर के देवत्व को ऊपर आने और जिन्दगी पर छा जाने का मौका दे। यही जिन्दगी की सफलता है।

यौवन की क्षणिक प्यास

इसलिए पुरुष और स्त्री दोनों को विवाह के बाद अपने दिलों पर थोड़ा काबू रखने की जरूरत है। यह जो यौवन का रस है वह बड़ा कीमती है। जिन्दगी की नींव इसी रस से मजबूत की गई है। जो हिम्मत तुममे है, जो कुछ कर जाने की उमंगें तुममे है, जो चंचलता और कठिन से कठिन काम को कर डालने का उत्साह तुममें है, यह जो जाड़ा, गर्मी, बरसात आते है पर तुम पर उनका कुछ असर नहीं; यह अद्भुत सहन-शक्ति जो तुमने पाई है, यह जो तुम्हारी रगों मे गरम-गरम खून दौड़ रहा है; यह जो तुम्हारा चेहरा बूढों और पस्त-हिम्मत लोगो के उपदेश और कठिनाइयों की बातों को सुनकर हल्की-हल्की मुस्कराहट से चमक

यौवन का अमूल्य रस

उठता है; यह जो निखार तुममें है, जो लोच तुममें है, जो चिकनाई और दिलेरी तुममें है, यह सब उस यौवन-रस के कारण है। जिस दिन रस की यह सागर फूट जायगी या रस ढुलक जायगा, सारा जीवन तुम्हें फीका और नीरस लगेगा। दिलों की दुनिया छोटी हो जायगी। मुस्कराते हुए फूल तुम्हें मुँह चिढ़ाते हुए दिखेंगे; खिलखिलाती चाँदनी देखकर दिल मे हूक उठेगी। मुस्कराती, हँसती आँखों मे अँधेरा छा जायगा। जिस सीने में पहाड़ से टकराने की हिम्मत है वह यों बैठ जायगा जैसे पानी के छींटों से दूध का उफान बैठ जाता है। पाँव पत्थर हो जायँगे; फुरती काहिली बन जायगी; खून ठंडा पड़ जायगा। बुढ़ापा और रोग आ दबोचेंगे। बस, दुनिया की हर सुन्दर चीज़ तुम्हारे लिए बेजान, बेस्वाद और भद्दी हो जायगी। हर एक से तुम्हे चिढ़ होगी। हर इन्सान तुम्हें खुदगर्ज दिखेगा। सन्देह और शंका से तुम्हारा दिल भर जायगा। सारी जिन्दगी बेमज़ा और बेस्वाद हो जायगी। जाड़े की स्वास्थ्यप्रद ऋतु तुम्हारी हड्डियों में कँपकपी पैदा करेगी। गरमी तुम्हारे खून को सुखा देगी और बरसात की हलकी और सुहावनी फुहार शरीर की नसों मे ऐंठ और दर्द पैदा करेगी। क्लबों और मित्र-मंडलियों से तुम मुँह छिपाओगे। दावतों के स्वादिष्ट भोजन और तर माल देखकर जब तुम्हारे मुँह में पानी भर जायगा तब भी धुनी हुई तन्दुरुस्ती की रोनी तस्वीर तुम्हारे सामने होगी। जब देश की पुकार, समाज की पुकार और मनुष्यता की पुकार तुम्हारे दिल को बेचैन और परीशान कर रही होगी तब भी तुम्हारे कलेजे में यह हौंस न होगी कि मैं इस पुकार का जवाब दूँ। जब दुनिया तुम्हारी जवानी को चैलेंज कर रही होगी, इसकी जगह कि तुम उठकर मर्दानगी के साथ उसका सामना करो, तुम्हारे कलेजे में डर होगा। जब सफलता तुम्हारे सामने होगी तुम बगलें झाँकते फिरोगे। जिन्दगी के संघर्ष मे तुम्हें हर जगह नीचा देखना पड़ेगा।

रस की सागर मत फोड़ो

औरत की हालत तो इस मामले मे इससे भी खराब है। वह

स्वभावतः नाज़ुक होती है। उसका स्वास्थ्य उसकी 'सबसे बड़ी सम्पत्ति है। यही उसका धन है। इस पूँजी से उसे बड़ी लम्बी यात्रा खतम करनी है। उसे अपने जीवन से, अपने खून-मास से उन कलेजे के टुकड़ों की सृष्टि करनी है जिनके बिना कदाचित् ही उसके जीवन की सार्थकता हो। इन बच्चों पर न सिर्फ उसका और उसके पति तथा परिवार का सुख दुःख निर्भर है बल्कि सारे समाज का सुख-दुःख निर्भर है। यदि उसकी तन्दुरुस्ती ठीक है, अगर उसमे फुर्ती है, शक्ति है, उमंग है, काम करने और सहने की शक्ति है, अगर वह थकावट का अनुभव नही करती, अगर उसकी आँखो मे चमक है, गालों पर लाली है, चेहरा नूर-सा दमकता है तो बच्चे भी तन्दुरुस्त होंगे, घर और समाज की शोभा होंगे। समाज

नाज़ुक औरत की बात

रोगी बच्चा न केवल समाज के लिए वरन् कुटुम्ब के लिए भी भयंकर अभिशाप है

को एक स्वस्थ और सुशील बच्चा देना मातृत्व की दुनिया के प्रति बहुत-बड़ी सेवा है और उसे रोगी, कमज़ोर, रोना बच्चा देना उसकी सबसे बड़ी असेवा है। रोगी बच्चा न केवल समाज के लिए वरन् कुटुम्ब के लिए भी भयंकर अभिशाप है। गरीबी में तो ऐसा बच्चा 'खुदा की मार' ही बन जाता है। गर्मी आई; उसे लू से बचाने मे

माँ परीशान है। बरसात आई, उसकी देह अकड़ रही है और सर्दियों में उसे यों रखने की ज़रूरत पड़ती है मानो वह कोई बेजान पर क़ीमती चीज हो जो कपड़ों से ढककर सबकी आँखों से छिपाकर रख दी जाय। कभी सूखा हुआ है; कभी साँस चल रही है; कभी बुखार चढ़ा है; कभी दस्त हो रहे हैं। सारा घर परीशान और तबाह है। बच्चा खिला हुआ फूल नहीं, सूखी हुई पंखड़ी-सा लगता है। उसके चेहरे पर प्रकाश नहीं, अँधेरा है।

उधर जवानी का सौन्दर्य माता को छोड़ने लगता है। उसे एक न एक शिकायत खड़ी होती जाती है। पति की रुझान कम होने लगती है।

जवानी का खोया सौन्दर्य

खीझ बढ़ती जाती है। जहाँ सौन्दर्य, प्यार और मिठास का झरना बहता था वहाँ सूखा पड़ जाता है। जीवन की हरियाली का अन्त हो जाता है। दिलों में खटाई पड़ जाती है। बात-बात में बहस और हुज्जत, बात-बात में उलझ पड़ना, दो कड़ी बातें, सिसकियाँ और भूखे पेट सोना। गृहस्थी श्मशान बन जाती है। जिन्दगी से मौत अधिक लुभावनी लगती है!

फिर इसका असर बच्चों पर होता है। ज़रा-ज़रा-सी बात मे उन पर बुखार निकलता है, मार पड़ती है। उनके दिलों पर इसका असर

तूफान में पडे बच्चे

बहुत बुरा होता है। वे हठी, चिड़चिड़े, उदास हो जाते हैं। किसी बात का उन पर असर नहीं पड़ता। धीरे-धीरे वे अपनी एक अलग दुनिया बना लेते हैं जिसमें माता-पिता का अस्तित्व सिर्फ एक क्रूर, शैतान के रूप में ही रह जाता है। वे हर बात माँ-बाप से छिपाते है; झूठ बोलते हैं। उनके पतन का, इस प्रकार, आरम्भ हो जाता है।

यह वह मकड़ी का जाला है जिससे फिर निकलना सम्भव नहीं। आदमी खीझता है, तड़पता है, फड़फड़ाता है और ज्यादा से ज्यादा इस नरक के अन्धकार मे गिरता जाता है। वह आत्म-सौन्दर्य को भूलकर जानवर बन जाता है।

इस तरह जवानी की चन्द भूलें सारी जिन्दगी को कड़ुआ, दुखी, श्रीहीन और अँधेरा कर देती हैं। शुरू मे कुछ अन्दाज नहीं रहता। पतन के क्रम में मनुष्य झूठे उल्लास का अनुभव करता है पर जब खाईं में गिरता है तब उसे होश आता है। उस वक्त पछताना और रोना बेसूद होता है ! जहर में बेहोशी तो होती ही है पर जहाँ उसमें मिठास भी हो तब उसकी खैरियत की उम्मीद कैसे की जा सकती है ?

इसलिए जरूरत इस बात की है कि तुम प्रलोभनों के चस्के में न पड़ो। अपने दिलो पर संयम रखो। यह सयम तुम्हारी जिन्दगी को प्रेम और अमृत से भर देगा। याद रखो जवानी के प्रलोभनों का चस्का दिन है। दिलों मे उमङ्गों की आँधी चल रही है। पता नही यह आँधी तुम्हें उठाकर कहाँ पटक दे। ये मीठी-मीठी सुहावनी रातें जीवन के लिए अमृत बन जायँगी, यदि तुम अपने प्रेम को जमीन पर बिखर कर मैला न होने दो। प्रेम और मोह के बीच जरा सा झीना परदा है और अक्सर युवक चन्द दिनों की रंगरलियों, सपनों की उड़ान, एक दूसरे पर प्राण देने की सस्ती-सी बातों और नशा करनेवाले वादों को प्रेम समझने की भूल करता है।

मेरा मतलब हर्गिज यह नहीं कि जब विवाह के बाद दो दिल परस्पर मिलकर जीवन का रहस्य अनुभव करने को बेचैन हों; जब प्रेम और हमदर्दी की एक नई जिन्दगी का दरवाजा खुलने जा रहा हो, मैं सूखे उपदेश दूँ। मैं भी यही चाहता हूँ कि आप मिलें, फूलें, खिलें और आपकी जिन्दगी सुगन्ध से भर जाय। पर इतना और चाहता हूँ कि यह सुगन्ध अन्त तक बनी रहे और प्रेम के अमृत का घट कभी खाली न हो।

क्या आप यह पसन्द करेंगे कि यह सयुक्त जीवन का जो अनुभव आप कर रहे हैं वह दो दिन की चुहल और मनबहलाव मे खत्म हो जाय ? क्या आप यह चाहेंगे कि जिन्दगी के तिलिस्म आपकी आँखों

से एकाएक ओझल हो जायँ ? क्या आप चाहते हैं कि यह जो सारी दुनिया आज आपको फूल-सी हलकी, खुशबू से जिन्दगी का तिलिस्म गमकती हुई, जीने लायक मालूम होती है—जहाँ प्रेम की वंशी बजती है, जहाँ जीवन में हिलोर और तरङ्ग है, जहाँ हर चीज़ सौन्दर्य में डूबी हुई है, खत्म हो जाय और वहाँ मायूसियों और टूटे दिलों के अफसानो की एक लम्बी अँधेरी रात हो जिसका जीवन भर अन्त नही होता ?

कोई आदमी ऐसा नहीं चाहता। पर जवानी की इतराई हुई चाल मे पाँव फिसल ही जाते है। यहीं यौवन की महान् जिम्मेदारी आती है। जरूरत है कि आप इस जिम्मेदारी को समझें। और चन्द दिनों के प्रलोभनों के लिए सारी जिन्दगी को बिखरने और बर्बाद न होने दें। यदि आप अनुचित भावावेश और तृष्णा पर संयम रखें तो भविष्य की अनेक दिनों की दुःखभरी सन्ध्या और रोते हुए प्रभात से बच जायँगे।

: १२ :

अकल्पनीय सुख की कुंजी

रहस्य और अन्धकार का यह आकर्षण

यह बात हजारो बार दोहराई गई है कि विवाह दो आत्माओं के मिलन का संस्कार है। आश्चर्य है कि जो बात हमने बार-बार प्रेस और प्लेटफार्म से सुनी है उसकी ओर हम बहुत ही कम ध्यान देते है। और विवाहित जीवन के सुख और सफलता के लिए झूठे और खुदगर्ज विज्ञापनदाताओं के विज्ञापन उलटते फिरते हैं। रहस्य और अंधकार की तरफ मनुष्य का यह कैसा विचित्र आकर्षण है! मैंने सुना, और बाद में जॉच कराने पर यह बात सच्ची मालूम हुई, कि एक लेखक ने दाम्पत्य जीवन के गुप्त रहस्य बताने का दावा करके अपनी एक पुस्तक से हजारों रुपये पैदा किये। यह पुस्तक हिन्दुस्तान की ही एक भाषा मे लिखी गई है और एक-दो भाषाओं मे इसका अनुवाद भी हो चुका है। उत्तर भारत में इस पुस्तक की काफी बिक्री हुई है। मैने इस पुस्तक को देखा और पढ़ा है। यह एक मामूली किताब है और विवाहित जीवन को ऊँचाई पर उठाने की बात तो दूर रही, उसमे सुख और शान्ति लाने का इसका दावा भी महज झूठा है। इसमे सहज ही स्त्री को कामशास्त्र की व्यायामशाला समझकर बर्ता गया है। और यह वह झूठा प्रकाशक! कोकशास्त्र के चन्द विकृत और मनुष्य को जानवर की सतह पर खीच लानेवाले नुस्खों और भोग की वंचनाओं से भरी हुई है। मुझे इसका पूरा विश्वास है कि इसमें दाम्पत्य जीवन की कुछ गुप्त बातों के उद्घाटन का जो दावा किया गया है उसी से इसकी ऐसी बिक्री हुई है। आज का मनुष्य जीवन के हर रास्ते मे 'शार्टकट'—छोटे से छोटा रास्ता—चाहता है, फिर चाहे वह नाजायज और हानिकर ही हो। यह हमारी ज़िन्दगी की हर दिशा मे घटती हुई

ईमानदारी का चिह्न है। हम फल तो चाहते है पर उसे प्राप्त करने में ईमानदारी के साथ जो कोशिश करनी चाहिए उससे दूर भागते हैं। मुझे इसमे किसी तरह का सन्देह नहीं है कि पुस्तक को पढ़कर विवाहित जीवन को सफल बनाने की आशा रखनेवाले ग्राहक बुरी तरह निराश हुए होंगे। मै मानता हूँ कि उन्होंने डेढ़-दो रुपये ही नहीं खोये बल्कि जिन्दगी के सच्चे रास्ते से भटक कर अपनी आत्मा को भी खो दिया होगा!

साफ़ और सच्ची बात तो यह है कि दाम्पत्य जीवन के सुख का कोई गुप्त नुस्खा नहीं है। जो कुछ है वह दिन की तरह साफ़ है। उसके अपने नियम और उपाय जरूर है पर उनमे गोपनीय मन्त्र-जैसी कोई बात नहीं है। इन नियमो के पालन के बिना दुनिया का कोई नुस्खा या गुप्त मन्त्र काम नहीं दे सकता।

इसलिए विवाह के बाद के सुख के लिए सब से पहले तो वही पुरानी और बार-बार दोहराई गई बात को याद रखने की जरूरत है।

दो आत्माओं का मिलन

बात वही—विवाह दो आत्माओं के मिलन का संस्कार है। ऐसा नहीं कि विवाह करते ही दो आत्माओं का मिलन हो ही जाता है। नहीं, यह विवाह का आध्यात्मिक ध्येय है। यह उसका लक्ष्य है। विवाह इस यात्रा के आरम्भ की सूचना है। इस ध्येय की तरफ यात्रा में हम जितना ही आगे बढ़ते जायंगे उतना ही दाम्पत्य जीवन सुखी और श्रेष्ठ होता जायगा। विवाह के साथ दो प्राणी जीवन के एक उद्देश्य, एक सूत्र में गुँथ जाते हैं। आज से दो भिन्न व्यक्तियों का लोप हो जाता है। दो जीवन एक श्रेष्ठ, एक अपेक्षाकृत व्यापक जीवन और दुनिया की रचना में लग जाते हैं। दोनों का समाज-जीवन में एक निश्चित स्थान बनने लगता है।

विवाह के बाद दो प्राणियों का यह मधुर मिलन आरम्भ होता है। यह मिलन जितना पूर्ण, जितना ही सन्तोष से भरा और जितना ही तृप्तिकर हो उतना ही विवाहित जीवन को सफल समझना चाहिए।

पति और पत्नी दोनों को तुरन्त इस मिलन के क्रम को स्थायी और विकासशील बनाने के प्रयत्न में लग जाना चाहिए। प्रेम में अपूर्व शक्ति है। यह जीवन की छिपी हुई शक्तियों को जगा देता है। जो बातें पहले असंभव मालूम होती हैं वे संभव होने लगती हैं। जो लड़की अत्यन्त प्यार और दुलार से पाली गई और जिसने कभी अपने हाथों गृहस्थी का कोई काम नहीं किया वह भी प्रेम और निजत्व के विकास के इस जीवन की शीतल हवा की मधुर थपकियों के लगते ही खिलने लगती है। प्रेम के स्पर्श से उसकी आन्तरिक सहन-शक्ति बढ जाती है। मैंने देखा है और हर एक ने देखा होगा कि इसी प्रेम के कारण जो स्त्रियाँ रात-दिन नौकरों से काम लेने की आदी थीं, अपने हाथों बर्तन माँजती और घर में झाड़ू लगाती है; अपनी शक्ति से अधिक शारीरिक बोझ सँभाल रही हैं और रुपये-पैसे की तंगी में भी खुश हैं। प्रेम जीवन की बड़ी-बड़ी कठिनाइयों को हलका कर देता है। और जिन्दगी की कसक यों हवा हो जाती है जैसे कैफ़ियास्पिरीन की गोली से दर्द बात की बात में खत्म हो जाता है।

प्रेम का स्पर्श

तब विवाहित जीवन में सफलता की पहली ज़रूरी शर्त इसी पारस्परिक प्रेम के भाव को एक दूसरे के अन्दर पैदा करना, बढाना और उसे सदा हरा-भरा रखना है। प्रेम के बिना मिलन एक वंचना और व्यभिचार-मात्र है। यह प्रेम मिलन और जीवन के क्रम को मधुर बनाता है। यह जीवन के कटकपूर्ण मार्ग में चलने की शक्ति देता है।

सच्चे मिलन की नींव इसी प्रेम पर पड़ती है। प्रेम जितना ही शुद्ध, उदार और घना होगा, यह मिलन भी उतना ही तृप्तिकर होगा।

पर न मिलन का और न प्रेम का मतलब कोरी विषयासक्ति है। यौवन में भ्रमवश अक्सर भोग-विलास को प्रेम समझ लिया जाता है। यह गलत दृष्टिकोण है। मैं यह नहीं कहता कि विवाह का आरम्भ विरक्ति और उदासीनता के साथ करना आवश्यक है। मेरा आशय यह है कि शारीरिक

दिलों का मिलना ज्यादा ज़रूरी है

मिलन विवाहित जीवन का कोई प्रधान लक्ष्य नहीं है। शरीर का मिलन भी विवाहित जीवन में तभी सार्थक है जब वह श्रेष्ठ और उच्च भावों के साथ हो। असल में दिलों का मिलना शरीर के मिलने से कहीं ज्यादा ज़रूरी है जिसकी तरफ़ आज शायद सबसे कम ध्यान दिया जाता है। जहाँ केवल शरीर का ही भाव है वहाँ मनुष्यता अपनी अत्यंत विकृत और प्रारम्भिक रूप में दिखाई देती है। वहाँ स्त्री केवल एक वेश्या है जो पुरुष के इन्द्रिय-रञ्जन के लिए अपने को तिल-तिल बेच रही है। वहाँ उसका गौरव नष्ट हो गया है और वह अपने स्थान से गिर गई है। वहाँ गृहस्थी एक दुःख है और विवाहित जीवन सिर्फ़ एक सौदा है।

विवाहित जीवन शरीर और हृदय के मिलन से पुष्ट और विकसित होता है। वह शारीरिक मिलन की भावना जो जीवन में है
सर्वथा व्यर्थ नहीं है। ठीक तरह से शरीर का उपयोग
य ह भयानक नशा! करने से वह मनुष्य के अन्दर छिपी प्रेम और जीवन
की श्रेष्ठ शक्तियों को जगाती और बढ़ाती है। पर
शरीर पर तुम्हारे दिल का और दिल पर विवेक का शासन हो। ख़तरा तब उपस्थित होता है जब तुम्हारे दिल और दिमाग़ पर तुम्हारा शरीर हावी हो जाता है। एक नशा ऐसा चढ़ता है कि जवानी-भर नहीं उतरता या तब उतरता है जब जवानी गल जाती है, दिल बूढ़ा हो जाता है; दिमाग़ काम करने लायक नहीं रह जाता; दिलों के वलवले और हौसले पस्त हो जाते हैं; कमर झुक जाती है; मुख श्रीहीन हो जाता है और आँखों की रोशनी धुंधली हो जाती है।

इसलिए इसे कभी न भूलो कि शारीरिक मिलन में ही विवाहित जीवन की समाप्ति नहीं होती। इस मिलन को मथकर मानसिक सहानुभूति और हार्दिक प्रेम का मक्खन निकाल लेने की जरूरत है। ज्यों-ज्यों प्रेम शुद्ध होता जाता है, भोग की बेचैनी अपने आप कम होती जाती है और दोनों के दिल एक-दूसरे के नज़दीक आते जाते हैं।

आजकल के युवक प्रायः हितकर बातों पर मुँह बनाने के लिए बदनाम हैं। वे कोई ऐसी बात सुनना नही चाहते जिसमें मौज और शौक पर किसी तरह का अकुश हो। मीठी, चिकनी-चुपड़ी बातें सुनने का उन्होंने अपने को आदी बना लिया है। यह असम्भव नही कि ये बातें उनको कुछ 'अपील' न करें और वे समझें कि जहाँ उनको मुझसे कुछ दिल गुदगुदाने वाली बातें जानने की उम्मीद थी वहाँ मै ये सूखे उपदेश सुना रहा हूँ। वे कहेंगे कि ऐसी बाते और ऐसे उपदेश तो हम लोग सभ्यता के आरम्भ से सुनते आ रहे है। आपने, हजरत, हमे क्या बताया? उनकी शिकायत ठीक है पर मेरी मजबूरी यह है कि दुनिया में कोई सत्य नया नहीं है। दुनिया का सारा इतिहास, सारे ग्रन्थ, सिर्फ उन सत्यों को नया-नया जामा पहनाकर रखते हैं ताकि बाते लोगों की समझ मे आ जाये। इसलिए मै उनको कोई नसों में नशे की तरह दौड़ जानेवाली बात सुनाने में असमर्थ हूँ। ऐसी चीजों से बाजार पटा पड़ा है और वे हर जगह सस्ती कीमत मे मिल जाती हैं। मै जानते हुए उनको जहर नहीं दे सकता फिर चाहे उस पर कितनी ही मीठी 'कोटिंग'—मीठा आवरण—हो।

मीठा ज़हर

इसलिए मेरे पास तो वही बाते दोहराने के लिए है कि प्रेम को इतना सस्ता न कर दो। दिलों पर काबू रखो और विवाहित जीवन के आरम्भ मे दिलों मे जो आँधी चलती है और दिमाग पर जो नशा चढ़ जाता है उससे बचकर रहो। दिलों को मिलाने का ध्यान रखो। शरीर की वृत्तियाँ तो स्वयं इतनी प्रबल है कि उनके सन्तोष के लिए तुम्हें अपनी तरफ से कोशिश करने की जरूरत न होगी।

पर इसका यह मतलब नही है कि तुम शारीरिक भय से या भोग के तूफान मे अपनी कमजोरी का अनुभव करके अपनी पत्नी का बहिष्कार करो या उससे उदासीन हो रहो। एक आदमी को मै जानता हूँ जो अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते है। बहुत समझदार आदमी है।

विवाहित जीवन के आदर्शों से परिचित हैं। जानते हैं कि भोगासक्ति से जीवन में असली सुख प्राप्त नहीं हो सकता। पत्नी से अपने सम्बन्ध को दिन-दिन घनिष्ठ और परिपूर्ण बनाना चाहते है पर संस्कार ऐसे हैं, इन्द्रियाँ इतनी प्रबल हैं और मन इतना कमज़ोर है कि प्रायः पत्नी के निकट जाते ही भोगवासना जग उठती है। उनके निश्चय शिथिल हो जाते हैं और उच्चाशयों पर परदा पड़ जाता है। वह कह रहे थे कि उनको ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई शैतान उन पर सवार हो गया है और सारे श्रेष्ठ मन्तव्यों और शुभ भावनाओं के साथ भी उससे लड़ने में वह असमर्थ है। जैसे उनके हाथ-पाँव फूल गये हों और अपने ऊपर उनका अधिकार ज़रा भी नहीं रह गया हो। आश्चर्य यह है कि ऐसा उन्हें केवल अपनी पत्नी के निकट ही अनुभव होता है; अन्य स्त्रियों को देखकर इस प्रकार का कोई विकार उनके मन मे नहीं पैदा होता। मुझसे वह पूछ रहे थे कि इस दुःखद स्थिति के ऊपर उठने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए। मै स्वयं एक दुर्बल आदमी उनको क्या बताता, सिवाय इसके कि हृदय से प्रभु को पुकारो। उनकी अनुकम्पा से यह समस्या हल हो जायगी। यह प्रभु का नाम तो लेते रहे। उन्होंने इसका व्यवहारिक हल यह निकाला कि वह प्रायः अपनी पत्नी से दूर-दूर रहने लगे। कभी उसको मायके भेज देते; कभी स्वयं लम्बी यात्रा पर निकल जाते। कभी घर रहते हुए भी किसी काम में अपने को इतना लगा रखते कि अन्दर जाने की मानो फ़ुर्सत ही नहीं है। एक बार तो वह सत्याग्रह-आन्दोलन में भी इसीलिए पड़े और लम्बी मुद्दत के लिए जेल चले गये।

स्त्री से भागने वाला पति

यह उपाय कुछ बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता। इसमें भी खतरे कुछ कम नहीं है। इसमें ग़लतफ़हमी बढ़ने का भी डर रहता है और दो प्राणियों के जीवन के संयोग से जो दुनिया बनती है उसका अन्त हो जाता है। इससे जीवन दुःखद भी हो सकता है। स्त्री अलग हो जाती है, पुरुष अलग। दोनों के बीच एकता का सूत्र टूट जाता है। प्याला

और अतृप्त हृदय लिये दोनों एक ऐसी अवस्था का अनुभव करते हैं जहाँ सब कुछ है पर जैसे प्राप्य कुछ भी नहीं।

इसी मामले में, जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है, कुछ ऐसा ही हुआ। पति की शुभाकांक्षा और प्रेम तथा पत्नी के प्रति उनकी हित-भावना के बावजूद सोने का संसार स्वप्न की भाँति, झूठा हो गया। पत्नी उनके इस नये ढग के व्यवहार को समझ न सकी, और चूँकि उसको पति की इन्द्रिय-पिपासा का कटु अनुभव था, उसने समझा उनका आकर्षण अब कहीं दूसरी तरफ हो रहा है। ग़लतफ़हमियों मे बैठे-बिठाये दो जीवन चौपट हो गये।

संयम का यह मार्ग न सिर्फ अव्यावहारिक है बल्कि ग़लत भी है। भाग कर कोई वासनाओ से नहीं बच सकता। वह स्त्री से दूर चला जाय पर इस प्रकार के शारीरिक ब्रह्मचर्य के पालन से उसे न मानसिक शान्ति मिल सकती है, न उसके जीवन में स्फूर्ति और तेज आ सकता है। यह बलात् ब्रह्मचर्य है। इसे ब्रह्मचर्य कहना वस्तुतः ब्रह्मचर्य की हँसी उड़ाना है। इससे लाभ के बदले हानि की ही अधिक संभावना है।

संयम का बलात् प्रयोग

इसलिए न तो भोग-विलास में डूबने में जल्दबाजी करना औसत युवक के लिए अच्छा है और न तो ज़बर्दस्ती उससे भागना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। उसके प्रत्येक कार्य में संतुलन—'बैलेंस'—और विवेक का नियंत्रण होना चाहिए। त्याग और भोग दोनों का उचित समन्वय ही विवाहित जीवन की सफलता की कुंजी है।

जब मैं संयम और दिलों के मिलन की बात कह रहा हूँ तब मैं उन खतरों से बेखबर नहीं हूँ जो जबर्दस्ती के संयम से विवाहित जीवन में पैदा हो जाते है। इसलिए मेरी सलाह यह है कि पति को विवाह के बाद अपना-होश हवास दुरुस्त रखकर बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे अपने मार्ग पर बढ़ना चाहिए। कुछ मीठी बातें, दिल और मुहब्बत के चन्द सच्चे

ज़बर्दस्ती के संयम के ख़तरे

इज़हार, पत्नी के प्रति वफ़ादारी और उनके स्वास्थ्य तथा भावनाओं का ध्यान इन बातों से पति सहज ही औसत पत्नी का प्रेम प्राप्त कर सकता है। उसे पत्नी का उपदेष्टा न बन जाना चाहिए; न उस पर उस्तादी गाँठने का दंभ करना चाहिए। इसे इस तरह वर्तना चाहिए कि पत्नी समझ ले कि मेरी ज़िन्दगी इनसे अलग नहीं है और हम दोनों मिलकर, अपने अस्तित्व को खोकर, एक नई और ज्यादा अच्छी दुनिया का निर्माण करने जा रहे हैं। उसे पत्नी की आकांक्षाओं का उचित सीमा तक मान करना चाहिए।

तूफ़ानी प्रेम बनाम संयत प्रेम

जो कुछ तुम करो, वह उसे साथ लेकर, अपने सम्बन्ध में उसे आश्वस्त करने के बाद करो और उसकी वफ़ादारी के इज़हार और तुम्हारा हर बात में साथ देने की घोषणा के बावजूद भी जल्दबाजी न करो। जो नींव धीरे-धीरे पानी के थोड़े-थोड़े छींटों के साथ, डाली जाती है, मज़बूत होती है। जो प्रेम धीरे-धीरे पुष्ट होता और बढ़ता है वह उस तूफ़ानी प्रेम और 'दो शरीर एक प्राण' की लम्बी-चौड़ी सस्ती घोषणाओं से अधिक दिन तक जीवित रहता है, जिसका आज बाजार में चलन है। यह सदा याद रक्खो कि भावनाओं की आँधी में जिस प्रेम की अनुभूति होती है वह बहुत दिनों तक टिक नहीं सकता। जो बहुत जल्द आता है वह बहुत जल्द चला भी जाता है। बरसाती सृष्टि जल्द नष्ट होती है इसलिए जब तुम दिलों की एक ऐसी बस्ती बसाने जा रहे हो जिसको देखकर स्वर्ग लज्जित हो तब तुमको उतावलेपन का भाव बिल्कुल छोड़ देना चाहिए। जिस मिलन के रस से विवाहित जीवन का पौधा पनपता है, और उसमें फूल खिलते हैं वह शारीरिक संयोग नहीं, दिलों का संयोग है।

आज हमारा मानस इतना शिथिल और हमारा राष्ट्रीय चरित्र इतना दुर्बल हो गया है कि संयम और नियंत्रण की बातें सुनकर हमें आश्चर्य होता है। बहुतों को हँसी भी आती है। समझा यह जाता है कि ये

किसी स्वप्नलोक की बातें हैं। अपने सम्बन्ध में मानव की ऐसी निराशा वर्तमान सभ्यता की एक बड़ी समस्या है। पहले भी आदमियों से गलतियाँ होती थीं। पहले भी मनुष्य-समाज मे पशुओं की कमी नहीं थी। पहले भी समाज में विषयासक्ति का अभाव न था। पर एक बात अवश्य थी कि मनुष्य का अपने विषय में इतना दैन्य कभी न था। वह अपराध, दोष और पाप करता अवश्य था पर वह यह भी जानता था कि इनका निराकरण करने और इनके ऊपर उठने की शक्ति भी उसी मे है।

मनुष्य आज भी वही है। उसका निर्माण बदल नहीं गया है। हाँ, वह अपने को भूल अवश्य गया है। अपनी शक्तियों का आज उसे पता नहीं। जीवन मोहावरण से ढक गया है। अन्तः-प्रकाश पर बादलों के झुंड आ गये हैं। वह आत्म-विस्मरण का शिकार है। वह कर अब भी सब कुछ सकता है पर उसे विश्वास नहीं होता कि वह कर सकता है।

आत्मविस्मृत मनुष्य

हे युवक ! तुम मानव-जाति की आशा हो। सभ्यता के जले हुए दीपक को बराबर स्नेह देते रहकर प्रदीप्त रखना तुम्हारा काम है। इतिहास अपने निर्माण के लिए तुम्हारी तरफ देखता है। तुम्हारे शरीर मे वह गरम खून दौड़ रहा है जिससे बर्फ के पहाड़ पिघल सकते हैं। तुम्हारे अन्दर वह शक्ति है जिससे दुनिया को बनाया और बिगाड़ा जा सकता है। यह भूल जाओ कि तुम दुर्बल हो; यह भूल जाओ कि तुममें शक्ति नही है। कोई ऐसी बात नहीं जिसे तुम चाहो, करने पर तुल जाओ और न कर सको।

सभ्यता का दीपक

इसलिए इस ख्याल को दिल से बिल्कुल निकाल दो कि तुम चाहो तो भी अपने पर संयम नही रख सकते। यह सिर्फ दृढ़ता की बात है। यदि तुम पहली बार खिसक गये तो फिसलते ही जाओगे। बीच मे रुकना बड़ा मुश्किल है। मै चाहता हूँ कि तुम मन पर जरा काबू रक्खो और

प्रति क्षण अपने प्रेम को शुद्ध करते हुए जिन्दगी के रास्ते पर बढ़ो।

संयम का निश्चय कर लेने के बाद तुम्हें अपने शुभ प्रयत्नों में अपनी पत्नी को भी सम्मिलित करना चाहिए। याद रखो, विवाहित जीवन एकाकी जीवन नहीं है; वह संयुक्त जीवन है। बिना तुम्हारी पत्नी की शुभाकांक्षा और क्रियात्मक सहयोग के तुम्हें किसी काम में सफलता नहीं मिल सकती। और सफलता मिल भी जाय तो उसमें न रस होगा, न आनन्द होगा, न तृप्ति होगी और न उल्लास होगा। विवाहित जीवन में सुख प्रेम का परिणाम है और यह प्रेम सदा अपने को देकर ही प्राप्त किया जाता है।

इसलिए संयम के इस जीवन में भी तुम्हें जबरदस्ती न करनी होगी। अपनी पत्नी का ख्याल रखते हुए, उसका सहयोग प्राप्त करते हुए तुम्हें आगे बढ़ना होगा। याद रखो कि जीवन पर दूषित वातावरण परम्पराओं का बड़ा भारी प्रभाव होता है। इन विश्वासों और धारणाओं को एक झटके में नहीं तोड़ा जा सकता। संभव है, तुम्हारे सामने ऊँचे आदर्श हों, तुम्हें उनके अनुसार जीवन बिताने में कष्टों के बीच भी सुख मिलता हो पर तुम यह आशा नहीं कर सकते कि तुम्हारी पत्नी भी हर हालत में ऐसी ही होगी। प्रायः स्त्रियाँ कुछ ऐसे वातावरण में पलती हैं कि वे अपने को केवल अपने भावी पतियों के भोग-विलास का मुख्य साधन समझ लेती हैं। लड़की ज़रा बड़ी हुई कि टोले-मुहल्ले के लोग मुँह बनाने लगते हैं—'अरे, अब तो यह घर में रखने लायक़ नहीं।' मानों किसी लड़की का अविवाहित रहना कोई भयङ्कर अपराध है। माँ-बाप, पड़ोसी तथा सम्बन्धी इस अभागी लड़की पर इतनी अयाचित कृपा करते हैं और उसके प्रति इतनी चिन्ता दिखाते हैं कि उसका जीना और समाज में निकलना मुश्किल हो जाता है। जहाँ कहीं वह जाती है, उसके पीछे यह प्रश्न शैतान की भाँति लगा रहता है कि इसके विवाह का क्या हुआ? माता-पिता सयानी लड़की को सिवाय विवाहित देखने के और

बातों की शायद ही ज्यादा चिन्ता करते हों। सभ्य स्त्रियाँ भी चुहल और मज़ाक में ऐसी ही बातें करती हैं और मध्यम श्रेणी की, 'हितैषी' होने का दावा करनेवाली स्त्रियाँ भी उसकी माँ, चाची अथवा किसी बड़े पदवाली स्त्री से यह अवश्य पूछती हैं—'बहिन, लक्ष्मी के विवाह

लड़की ज़रा बड़ी हुई कि टोले-मुहल्ले के लोग मुँह बनाने लगे

का कुछ डौल-डौल कहीं हो रहा है?' कठिनाई और परीशानी बताने पर भी वही—'हाँ बहिन, यह तो ठीक है पर लड़की को तो ठिकाने लगाना ही पड़ता है। ये तो 'आन घाट के बीरवा आन घाट हरियायँ' हैं। लड़की को आशीर्वाद भी प्रायः यही मिलता है—'भले घर जाय; बेचारी के कष्ट के दिन बीत जायँ। घर-बार सँभाले। लड़को-बच्चों में खुश रहे।' मतलब यह कि यह जो लड़की है, इसके चारों तरफ सयानी होने के दिन से ही एक ऐसा धुँआ छाया रहता है मानो बिना किसी पुरुष के साथ विवाह-बन्धन में बँधे उसे कोई गति नहीं है।

जो स्त्री ऐसे वातावरण मे पली है वह स्वभावतः पुरुष के संयम के आकस्मिक निश्चय से घबरा जायगी! जैसे बन्द कोठरी में वर्षों रहने के बाद एकाएक किसी बन्दी को खुले और ऊँचे मैदान में ले जाकर खड़ा कर दिया जाय तो उसका श्वास फूलने लगेगा। क्योंकि उसके फेफड़े कम-

अमरबेलि बिनु मूल की

जोर पड़ गये हैं और ऊँचाइयों की उन्मुक्त वायु को सहन करने के अयोग्य हो गये हैं। कुछ इसी तरह का अनुभव उस स्त्री को भी होगा। वह समझेगी कि तुम्हारा दिल उसकी तरफ से फिर गया है या यह कि तुम्हारी रुझान किसी दूसरी तरफ़ है। समाज की आज ऐसी विषम गति है कि इस तरह के अधकचरे और विषैले विचार बहुत जल्द जड़ पकड़ते है। बिना मूल की अमरवेलि के समान इनके हाथ-पाँव कुछ नहीं होते। पर एक बार ग़लतफहमी हो जाने पर फिर सफाई देना और दिलों का मिलना मुश्किल हो जाता है। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य मे स्त्री को साथ लेकर चलो और इस तरह चलो कि उसके पॉव थक न जायॅ।

हार्दिक स्वीकृति और सहयोग

और सहयोग तथा राय से काम करने का सिर्फ यही मतलब नहीं है कि स्त्री दबी ज़बान से या सिर हिलाकर तुम्हारी बाते मान ले। चूॅकि स्त्रियॉ पुरुषों से ज्यादा व्यावहारिक होती है इसलिए प्राय: वे और कोई चारा न देखकर पुरुषों की बाते मान लेती है। उनको पुरुष की हर एक बात मान लेने की शिक्षा दी गई है। वे पुरुष से व्यवहार करते समय अपनी शक्ति का नहीं, केवल अपनी विवशता का अनुभव करती हैं। चतुर होने के कारण वे इस विवशता को छिपाती हैं। इसलिए केवल उनका सिर हिलाना या दबी जबान से दी गईं स्वीकृति ही तुम्हारे संयुक्त जीवन के सुख और सफलता के लिए बस नहीं है। बहुधा इस तरह की स्वीकृति उनकी अस्वीकृति की सूचक है। तुम्हारी सफलता इस बात में है कि तुम अपनी पत्नी का हार्दिक सहयोग प्राप्त करो। जिस सीमा तक अपने या अपने कामों के अन्दर उसे दिलचस्पी लेने को राजी कर सकोगे, उसी सीमा तक तुम दोनों सुखी होंगे। अगर वह तुम्हारी बातों में मगन होती है, अगर तुम्हारी बातों से उसके चेहरे पर रोशनी चमकती है, आँखों से आनन्द टपका पड़ता है तो समझो कि तुमने आधी बाजी जीत ली।

मिलन का आनन्द

इस तरह के मिलन का आनन्द अद्भुत है। अवश्य ही, शारीरिक सुख में आदमी पागल हो जाता है। एक गहरा नशा उसके प्राणों पर छा जाता है। एक गहरी मूर्च्छना में उसके अंग-अंग डूब जाते हैं पर इस प्रकार के भोग-विलास का अन्त प्रायः खेदजनक होता है जैसा हर नशे का अन्त होता है। पर जहाँ दो दिल मिल गये हैं, जहाँ एक के सुख का दूसरे को ध्यान है, जहाँ भोग नहीं पर त्याग जीवन का ध्रुवतारा है और जहाँ अपनी पत्नी पर अधिकार नहीं, उसके लिए उत्सर्ग का भाव तुममें व्याप्त है; जहाँ दिलों की दुनिया तुच्छ स्वार्थों से ऊपर उठकर प्रेम के प्रकाश और सुगन्ध से भर गई है, तहाँ मिलन में जो आनन्द है उसकी समता दुनिया का कोई सुख, कोई अनुभव नहीं कर सकता। यह जीवन का अमृत है। इस अमृत को पीकर आदमी सदा के लिए तृप्त हो जाता है। इसमें नशे की तरह असन्तोष, खीझ, थकावट और विरक्ति नहीं वरन् सन्तोष और तृप्ति है। इस प्रकार के प्रेम और मिलन में अपने क्षुद्र 'स्व' को आदमी भूल जाता है। उसे अपने सुख, अपनी सुविधा अपने अधिकार और अपनी इच्छा-पूर्ति का कोई आग्रह नहीं रह जाता। क्योंकि उसका जीवन जिसे वह प्रेम करता है उस पत्नी के जीवन में मिलकर एक हो गया है। 'यह मेरा है, यह तुम्हारा है' की भाव-रेखा मिट गई है। जहाँ प्रेम है, ऐसा मिलन है तहाँ अपनी इच्छा की जगह प्रेमास्पद की इच्छा का ध्यान अधिक रहता है। दोनों दोनों में समाये, खोये रहते हैं। दूसरे के सुख के लिए कोई कष्ट उठाने को दूसरा न सिर्फ़ तैयार बल्कि उत्सुक रहता है।

कभी न समाप्त होने वाला आत्मदान

जहाँ इस तरह का मिलन है वहीं सच्चा प्रेम है। जहाँ हृदय इस तरह एक दूसरे से मिल गये हैं, तहाँ ही दाम्पत्य जीवन की सफलता है। जिसने इस सुख को प्राप्त किया है वह स्वर्ग की भी कामना न करेगा। दूसरों को अपने लिए उपयोग करने, दूसरों पर अधिकार करने का सुख दुनिया में

बहुतों ने प्राप्त किया होगा। पर अपने को समर्पित करने, देने, के सुख का अनुभव बहुत ही कम लोगों के भाग्य में बदा होता है। जिसे वह सुख मिल गया है, उसे मानो सब कुछ मिल गया है। उसे और कोई इच्छा नहीं रहती। वह देता है और अधिकाधिक देने की कामना रखता है। यह आत्मदान कभी समाप्त नहीं होता। क्योंकि इसके पीछे प्रेम का अक्षय कोष पड़ा होता है, जो देने से दूना-चौगुना होता है।

यह आनन्द या मिलन, जीवन का यह अमृत सहज ही तुम्हारा हो सकता है अगर तुम अपने हृदय की बन्द खिड़कियों को खोल दो;

हृदय की बन्द खिड़कियाँ

अपनी पत्नी के हृदय को स्पर्श करो। यह मत समझो कि उसके साथ तुम्हारा विवाह हो गया है इसलिए वह तुम्हारी हो गई है। विवाह का मतलब केवल इतना है कि तुमको अपने जीवन-मार्ग में चलते हुए एक ऐसा साथी मिल गया

अपने हृदय की खिड़कियां खोल दो

है जिसे तुम चाहो तो अपना हार्दिक मित्र और हितैषी बना सकते हो। यह अवस्था बनाना, अपनी पत्नी को सच्ची पत्नी बना लेना, उसके दिल को जीते बिना नहीं हो सकता। और दिल पर यह विजय विवाह से ही प्राप्त नहीं हो जाती। हाँ, विवाह उसे प्राप्त करने के क्रम को अधिक

सुगम और सरल बना देता है। स्त्री आशा और उमङ्गों से भरा हृदय लिये आती है। तुम उसके जीवन को प्रेम से भरकर अपना बना सकते हो।

आरंभिक सुख

विवाह के बाद कुछ समय तक तो आदमी को यह सुख सहज ही प्राप्त हो जाता है। पति-पत्नी दोनों को एक नया अनुभव होता है; दो बिखरे हुए जीवन जैसे किसी जादू से जोड़ दिये गये हों। नारी अपना हृदय देने के लिए तैयार आती है। पति का काम तो बहुत सुगम होता है। उसे सिर्फ इतना जानना चाहिए कि कैसे वह अपनी पत्नी के हृदय को प्राप्त कर सकता है। ज़रा-सी मुहब्बत की नजर स्त्री को पागल कर देती है। दो मीठे बोल उसके हृदय को गुदगुदा देते हैं और उसकी सुविधाओं का थोड़ा सा ध्यान, उसकी थोड़ी सी खातिरदारी और उसके साथ प्रेम का कोमल व्यवहार उसके जीवन को एक अपूर्व सुख और अपनेपन के भाव से भर देते हैं। वह समझती है कि इस दुनिया में अपना एक आदमी है। जब स्त्री के मन के भाव ऐसे कोमल और प्रेमपूर्ण होते है तब वह सहज ही पति को आत्मदान करती है। इसलिए विवाह के बाद थोड़े दिनों तक तो प्रेम के सपनों का सुख दाम्पत्य जीवन में सहज ही मिल जाता है। कठिनाई सिर्फ इस सुख और आनन्द को स्थिर रखने में है।

पहले तुम इसका ख्याल रखो कि विवाहित जीवन के पहले तक तुममें प्रकृति ने जो शक्ति सञ्चित की थी उसी का उपयोग तुम्हें जीवन-भर करना है। इसलिए उस शक्ति को तुम जितनी ही सावधानी और संयम से खर्च करोगे, जीवन के अन्त तक तुम उतने ही सुखी और स्वस्थ रहोगे। प्रकृति और ईश्वर ने तुम्हें जो अपूर्व शक्ति प्रदान की है उसका उचित उपयोग ही सच्चा जीवन है। इसलिए तुम्हें यौवन के नशे में भूलना नहीं चाहिए। प्रेम के इस आस्वाद मे भी तुम्हें बहुत सँभलकर चलना चाहिए। धन कमाना उतना कठिन नहीं है

जितना उसे ठीक तरह से खर्च करना कठिन है। वैसे ही प्रकृति ने जिन शक्तियों का सञ्चय तुम्हारे अन्दर कर दिया है उनका उचित रूप से उपयोग करने का काम भी बड़ा कठिन है। यह मत समझो कि जो तेज, जो वीर्य, जो ओज और उमंग, जो जोम तुममें है वह सब खर्च कर देने के लिए है। यह भी मत भूलो कि इस खज़ाने पर जितना ही काबू रख सकोगे उतने ही अधिक दिन तक जवानी रहेगी, स्वास्थ्य रहेगा, बुढ़ापा दूर रहेगा और रोग नजदीक न फटकेंगे। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने 'युक्ताहार विहार' का जो उपदेश किया है वही गृहस्थ धर्म की नींव है। आहार और विहार अवश्य हों पर उनमें संयम हो, सतुलन हो। यह नहीं कि प्रवाह में तिनके की तरह बहे जा रहे हैं या उसी नशे में जीवन के आदर्शों और कर्त्तव्यों का लोप हो गया है।

इसलिए तुम्हारी सफलता इस बात में है कि जो आनन्द दाम्पत्य जीवन के आरम्भ में तुम्हें अनुभव हो रहा है उसे स्थायी बनाओ।

जरूरी बातें

वह चंदरोजा न हो जिसके खतम होते ही तुम्हारा जीवन खेद और दुःख से भर जाय और तुम अपनी किस्मत पर रोओ और अनुभव करो कि यह क्या से क्या हो गया। दाम्पत्य जीवन के प्रेम और आनन्द से भरे हुए दिनों को तुम बढ़ा सकते हो बशर्ते तुम नीचे-लिखी बातों पर पूरी तरह ध्यान दो:

१. जिन भावनाओं को लेकर तुमने विवाह किया था, जो उमंगें तुममें उस समय थीं उनको कभी नष्ट न होने दो। इसे भूल जाओ कि तुम्हारे विवाह को अर्सा गुज़र चुका है। सदा याद रखो कि तुम वही हो। तुम्हारी पत्नी वही है। अनुभव करो, मानो तुमने दाम्पत्य जीवन के संयुक्त क्षेत्र में चलना अभी शुरू ही किया है।

२. जिस उमड़ते हुए हृदय को लेकर तुम दाम्पत्य जीवन के आरम्भ में पत्नी के पास आते थे, जैसे उसे अधिक से अधिक सुखी रखने,

उसकी सुविधा के लिए कष्ट उठाने, उसे आराम पहुँचाने, उसे और उसके तईं अपने को समझाने को तुम अत्यधिक उत्सुक रहते थे, उस उत्सुकता और उमंग को क़ायम रखो।

३. पत्नी के साथ सदा इस तरह का कोमल और प्रेमयुक्त व्यवहार रखो मानो कल ही तुम्हारी उसके साथ शादी हुई है।

४. प्रेम के साथ भी शारीरिक संयम रखो। अपने को सदा सँभाल कर रखो।

५. पत्नी के और अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान रखो। यह स्वास्थ्य ही दाम्पत्य जीवन के सुख की नीव है।

६. विनोद और हास्य का जी खोलकर उपयोग करो। मुँह लटकाना दाम्पत्य जीवन का वह अभिशाप है जो सब सुखों को नष्ट कर देता है। कोई काँटा अन्दर ही अन्दर रहकर करकने मत दो। ज्योंही वेदना का अनुभव हो, टीस उठे, जरा दिल कड़ा करके उसे तुरन्त निकाल बाहर करो।

७. अपने और अपनी पत्नी के प्रेम के बीच किसी अन्य स्त्री या व्यक्ति को न आने दो।

यदि तुमने इन बातों को गाँठ बाँध लिया और इन पर सच्चाई और ईमानदारी के साथ अमल करते रहे तो तुम अपने दाम्पत्य जीवन में उस सुख का अनुभव करोगे जो आजकल चाहते सब हैं और जिसकी खोज में गुप्त नुस्खे टटोले जाते और झूठी दवाइयों एवं पुस्तकों के विज्ञापन उलटे जाते हैं पर जो मिलता किसी-किसी भाग्यवान को ही है।

: १३ :

एक दुःखमोचन मंत्र और चिन्ताहरण कवच

एक आदमी है जो दुखी है और संताप की ज्वाला में जल रहा है। वह सदा अपने दुःखों और कष्टों का रोना रोया करता है। उसे इस बात की बड़ी शिकायत है कि ईश्वर ने सदा उसके साथ कठोर व्यवहार किया और भाग्य ने कभी हँसकर उसकी तरफ नहीं देखा। उसका जीवन गला जा रहा है पर एक दिन उसने विश्राम का श्वास नहीं लिया। उसके ओठों पर कभी मुस्कराहट नहीं फूटती। उसके जीवन का आकाश काले बादलों और नसों में चिलक पैदा करने वाली बर्फानी हवाओं से भरा हुआ है। वह हर रोज समझता है—सोचता है कि इस जीवन से मरना कहीं अच्छा होता!

संतप्त प्राणी

अगर मैं इस आदमी के पास, जो घुटने पर माथा रखे अपनी किस्मत पर रो रहा है, जाकर उसकी पीठ पर प्यार की एक थपकी दूँ और कहूँ कि मैं एक ऐसा मन्त्र जानता हूँ जिससे तुम्हारे सारे दुःखों का अन्त और तुम्हारा कायापलट हो सकता है, तो वह चकित होकर मेरी तरफ देखेगा; मेरा एहसान मानेगा और शायद घुटने टेककर मुझसे प्रार्थना करेगा कि मैं उसे वह मन्त्र बता दू जिसके अभाव में, जिसे न जानने के कारण, उसकी सारी ज़िन्दगी चौपट हो रही है और उसके सामने एक रेगिस्तान ऐसा पड़ा है जिसमें जल की एक बूँद प्यास बुझाने को नहीं मिलती और जिसका कभी अन्त होता नहीं मालूम पड़ता।

दुःखमोचन मंत्र

और यदि मैं इस आदमी को जवाब दूँ कि वह एक बड़ा ही सीधा मन्त्र है जिसे हर आदमी जानता है और तुम भी उससे अनभिज्ञ नहीं

हो तो उसे बड़ा आश्चर्य होगा। पर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह बिल्कुल सच्ची बात है।

मैं एक ऐसा मंत्र जानता हूँ जिससे तुम्हारे सब
दुःखों का अन्त हो सकता है

यह मंत्र और कुछ नहीं, संयम का मंत्र है। इसके बारे में मैं पहले भी लिख आया हूँ पर चूँकि इसमें जिन्दगी के दुःखों को जादू की तरह दूर करने की शक्ति है, इस पर बार-बार जोर देने और इसका भेद समझने की बड़ी जरूरत है। आजकल अखबारों में कितने ही ज्योतिषियों के विज्ञापन निकलते हैं जिनमें आनेवाली विपत्तियों से आदमियों को सावधान करने और उनका भाग्य पहले से बताने का दावा किया जाता है। इसी तरह आजकल ग्रहकवच और टेलिसमैन बेचकर कितनों ने हजारों-लाखों कमाया है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जो लोग अपने भाग्य की जानकारी के लिए पसीने की कमाई का रुपया यों फेंकते फिरते है और उसके लिए बदहवास हैं उनको यह खबर नहीं कि खुद उन्हीं के पास उनके भाग्य को बनाने-बिगाड़ने की शक्ति मौजूद है और उनके पास ही वह चिन्ताहरण कवच या टेलिसमैन है जिसको अपनाकर वे अपने जीवन को खिले हुए फूलों के बगीचे की तरह बना सकते हैं।

चाहे आश्चर्य किया जाय पर यह सच है। आदमी स्वय अपने और अपनी शक्तियों के प्रति इस तरह बेखबर है कि उसने अपने मन को बहुत से कल्पित दुःखों से भर लिया है। संयम का मंत्र ऐसा है कि इससे जिन्दगी पर छाई हुई अँधियारी का अन्त हो जाता है। मानस का क्षितिज आत्म-विश्वास के अरुणोदय से खिल उठता है उसमें उत्साह और स्फूर्ति की लाली भर जाती है।

अपनी तकतों से बेखबर आदमी

इस मंत्र ने दुनिया में लाखों आदमियों की जिन्दगी में आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिया है। यह नरक को छूता है और उसे स्वर्ग बना देता है। इतिहासों के पन्ने इसके आश्चर्यजनक करिश्मों से भरे हुए हैं। सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ इसी खाद पर पनपती और फूलती-फलती रही हैं। समाज के प्रत्येक शुभ कार्य में इसी की प्रेरणा है।

यह इसी मंत्र का असर है कि दुःख और विपदा की लू से झुलसी हुई हजारों स्त्रियाँ चकले में बैठने से बच गई हैं। यह इसी का प्रभाव है कि सैकड़ों गृहस्थियाँ अपने दिलों के दरार को भर सकी हैं। यह इसी का प्रभाव है कि लाखों आदमी जेल जाने या एक-दूसरे का गला काट लेने से बच जाते हैं। यह इसी मत्र का जादू है कि हजारों बुराइयों से आदमी और समाज की रक्षा हो जाती है।

दुनिया में आदमी को जितनी तकलीफें उठानी पड़ती हैं उनमें से ज्यादातर की ओट में असंयम होता है। शायद ही कोई आदमी ऐसा हो जिसने कभी विपता में अपने दिल में यह न कहा हो कि अगर मुझमें शुरू से यह आदत न पड़ी होती या मेरी माँ ने या बाप ने मेरी ऐसी आदत न पड़ने दी होती और मुझे आत्म-सयम की शिक्षा दी होती तो आज मेरी ऐसी हालत क्यों होती ?

एक अमेरिकन लेखक ने आदमी के कष्टों और अपराधों पर विचार करते हुए लिखा है—

जिद्दी लड़का

“......फाँसी पर चढ़ते हुए खूनी को देखो। बचपन में बड़ा जिद्दी और तेज स्वभाव का बच्चा रहा होगा। लाड़-प्यार के कारण उसका यह स्वभाव बना ही रहा और बढ़ता गया। माँ-बाप ने समझा—‘उम्र पाने पर सब ठीक हो जायगा।’ उन्होंने कभी उसे आत्म-संयम का पाठ नहीं पढ़ाया। गुस्से को पीना उसने नहीं सीखा। यही बच्चा जब जवान हो गया तब एक दिन ऐसा हुआ कि किसी ने उसे चिढ़ाया और ज्यादा तंग किया। वह गुस्से में आग-बबूला हो गया और इसने उस आदमी पर ऐसा वार किया कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। यह वही लड़का था जो कि बचपन में कुर्सी की ठेस लग जाने पर उसको पटक कर तोड़ देता था और जो लोग मना करते उनकी घूसों से खबर लेता था।

१. फाँसी पर चढ़ता खूनी

२. बचपन में बिगड़ कर कुर्सियाँ पटक देता था

एक शराबी को देखो, जो बेहोश होकर नाली में मुँह के बल पड़ा है। उसकी ऐसी स्थिति का कारण उसकी माँ है जिसने उसे कभी आत्म-संयम नहीं सिखाया। यह वही लड़का है जो शुरू में मिठाई खूब खाता था और माता ने कभी उसको रोक-टोक नहीं की।

उस फटे हुए कपड़े वाले मज़दूर की तरफ ध्यान दो जो कि मज़दूरी करते-करते इस हालत में पहुँच गया है कि उसे जन्म भर अच्छा खाना या अच्छा कपड़ा नहीं मिला। यह उसकी माँ की करनी है कि उसने उसे कोई योग्य शिक्षा नहीं दी और न मोह की मारी उस माँ ने उसे कोई काम ही करने दिया। वह एक मदरसे से उठाकर दूसरे और दूसरे से तीसरे में बिठाया गया। कारण यह था कि उसे अपना पाठ कठिन जान पड़ता था। उस्ताद सख्त होता था। जब उसने काम करना शुरू किया तब वह एक जगह नहीं टिका क्योंकि जिसके यहाँ वह काम करता वह बड़ी सख्ती से पेश आता था। उसने दर्जनों काम सीखे लेकिन किसी में मन न लगा। उसकी यह सब दुर्दशा केवल इस कारण हुई कि उसकी माँ ने आत्मसंयम की शिक्षा नहीं दी। संयमी पुरुष जिस काम को हाथ में लेता है उसे पूरा करके ही छोड़ता है।

कठिनाई से भागने वाला बालक

समाज में लड़कों एवं लड़कियों में जहाँ कहीं चरित्रहीनता देखी जाती है उसके मूल में आत्मसंयम का अभाव ही होता है। मिस माधवी और राधा पढ़ी-लिखी लड़कियाँ हैं। कालेज में पढ़ रही हैं। ललचाई हुई आँखों से देखने वाले लड़कों को छेड़ने का उनको माधवी और राधा शौक है। जब ये देखती हैं कि एक दुर्बल हृदय साथी उनके पीछे आ रहा है या उनके पास से गुजर रहा है तब कुछ अजीब लचक से चलने लगती हैं। उनका आँचल अक्सर सिर से खिसक जाता है। उनके दिल में अपने सुन्दरी होने का एक झूठा गर्व जाग्रत होता है। ये अपने को सजाने में जितना वक्त लगाती हैं उसका आधा समय लगाकर अत्यन्त विदुषी और गुणवती नारियाँ बन सकती थीं जिनको पाकर समाज धन्य होता और जिनको ये मिलतीं वे अपनी किस्मत को सराहते। ये लड़कियाँ झूठे प्रेम के दिल लुभाने वाले वादों और मनमोहन चेहरे वाले लड़कों के चक्कर में कई

बार पड़कर अपमानित हुईं। इनके दिल कच्चे थे इसलिए ये झट आत्म-समर्पण कर देती थी। यदि इनको आत्म-संयम की शिक्षा दी गई

उनका आँचल अक्सर खिसक जाता है

होती तो इनका यह बुरा हाल कभी न होता। ये मन की तरंगों में बह न जातीं और झूठे बनाव-शृंगार को अपने कर्त्तव्यों और विवेक पर हावी न होने देती।

मोहक पर्दे के अन्दर

विदेशों में, जहाँ आधुनिक सभ्यता की खींचतान बहुत ज्यादा बढ़ गई है, बहुतेरी लड़कियाँ बढ़िया कपड़े पहनने या निकम्मी फिरने के लिए अपना सतीत्व बेच देती है। अवश्य ही वे इसे सतीत्व बेचना नहीं कहतीं; आजकल की सभ्य भाषा मे उनके अनेक बढ़िया और मोहक नाम रख लिये गये हैं। और यह भी कहा जाने लगा है कि इसमें सतीत्व बेचने की क्या बात है। यह तो स्त्री-पुरुष की भूख है। पर मीठे ज़हर के समान लज्ज़तवाली इन बातों के बावजूद इनके पीछे जो आत्म-प्रवंचना है उसे छिपाया नहीं जा सकता। इन सब बातों के मूल में आत्मसंयम की शिक्षा का अभाव स्पष्ट है।

मैं एक आदमी को जानता हूँ जो एक बहुत अच्छे वैद्य हैं। उन्होंने अपने पेशे से नाम और धन दोनों कमाया है। इन्हें बुढ़ौती में एक लड़का हुआ। चूँकि उनकी ज़िन्दगी के बुढ़ौती का लड़का रेगिस्तान में बड़ी मुश्किलों से यही एक हरियाली मिली थी इसलिए उन्होंने उसे लाड़ प्यार से लाद दिया। उसे सदा गोद में रखा जाता। ज़मीन पर उसे उतरने ही न दिया गया। नतीजा यह हुआ कि इस लड़के के पाँव बिल्कुल ही कमज़ोर हो गये। आज वह एक लाचार आदमी है।

दरियादिल लाला जी

लाला अशरफ़ीलाल की उम्र इस वक्त ७०—८० के क़रीब है। इनका एक ज़माना था। जवानी के दिनों में अफवाह की तरह हर एक की ज़बान पर उनकी कमाई, दरियादिली और रसिकता की चर्चा थी। लोग कहते थे—देनेवाला इस तरह देता है। उनको अच्छे दिनों में रुपया कमाने का खूब मौका मिला। उन्होंने रुपया कमाया भी। जैसे बाढ़ आती है वैसे ही उनके पास रुपयों की बाढ़ आ गई थी पर झूठे घमंड में आकर उन्होंने अंधाधुन्ध खर्च किया। देखते-देखते सारा धन स्वप्न की तरह खतम हो गया। यार-दोस्तों की मंडली बिखर गई। इनके बच्चे इन्हें गाली देते हैं कि इन्होंने हमें किसी काम का न रखा। वह अपने बाल-बच्चों की दया पर जीवित हैं अथवा नाते-रिश्तेदारों के सामने गिड़गिड़ाते और उनसे सहायता की भिक्षा माँगते फिरते हैं। उनके इन कष्टों का कारण यही है कि जब उनके अच्छे दिन थे, जब भरी जवानी थी और हाथ में रुपया था उन्होंने आगा-पीछा नहीं देखा; बुढ़ापे की चिन्ता न की।

आज की गृहस्थियों में जो दीमक लग गया है उसका मुख्य कारण असंयम ही है। ज़रा-ज़रा-सी बात में झगड़े खड़े हो जाते हैं। श्रीमती 'क' को उतनी साड़ियाँ पति देवता नहीं दे पाते जितनी श्रीयुत 'म' की स्त्री के पास हैं। इस पर उनका मुँह लटक जाता है। समझाने पर

वह कहती है—'हमारी क़िस्मत ही फूटी है; तुम क्या करोगे।' कमला एक साध्वी नारी है। वह सीधी-सादी रहती है क्योंकि उसे अपने घर की स्थिति का पता है। उसके पति बात-बात पर उसे डाँटते रहते हैं। जब वह सादे कपड़े पहनती है तब वह कहते हैं—'तुम तो हमारी नाक कटाने

दीमक लगी गृहस्थियाँ

१. ठीक तरह से कपड़े न पहननेवाली स्त्री और पति

२. आधुनिक शृङ्गार किये वही स्त्री और पति

पर तुली हो। लोक कहेंगे कि यह अपनी स्त्री को कैसे दरिद्री वेश में रखता है। तुमसे बोलने का मन नहीं करता। तुम्हें पहनने-ओढ़ने की तमीज़ नहीं है और हो कहाँ से ! माँ बाप ने सिखाया हो तब न ! अच्छी चीज़ को भी यों पहनो कि चौपट कर दो।' जब बेचारी चमक-दमक की चीजें पहनती या ज़रा सलीके से चलती हैं तब भी व्यंग सुनने में आते हैं—'अच्छा, अब श्रीमतीं जी लेडी बनेंगी ! आजकल की औरतें चाहती हैं कि चाहे उम्र ४० की हो पर मालूम २० की पड़ें और अपनी लड़कियों मे यों खप जायँ जैसे उन्हीं की बहने हो।'

पश्चिम में तो स्थिति और बुरी है। ज़रा सी खटपट पति-पत्नी में हुई कि उनके दर्शन तलाक की अदालतों में होते हैं। छोटी-छोटी सनक

भरी बातों पर सम्बन्ध टूट जाता है। हज़ारों बच्चे माँ के जीवन में ही बिना माँ के हो जाते हैं और सैकड़ों, बाप रहते हुए

वहाँ की हालत

बाप के होने का अनुभव नहीं कर पाते। इन सब बातों के मूल में आत्म-संयम का ही अभाव है। ऐसी लड़कियों या ऐसे युवकों को यह शिक्षा नहीं मिली कि जिन्दगी में कभी-कभी कड़ुआहट भी आती है पर उसे बर्दाश्त करना पड़ता है और संयुक्त जीवन सदा ही समझौतों का जीवन होता है।

जीवन की हर अवस्था और हर क्षेत्र में संयम आवश्यक है। यह वह पथ-प्रदर्शक है जो कभी तुम्हें ग़लत रास्ते पर नहीं ले जा सकता और जिसके हाथ में तुम्हारा हित सदा सुरक्षित है। पर गृहस्थ जीवन में तो इससे अच्छा कोई दोस्त नहीं। इसकी सफलता के लिए यह एक अचूक मंत्र है। इसलिए जो भी आदमी सुखी और सफल गृहस्थ-जीवन चाहता है उसे इस मंत्र का महत्व समझकर उसे भली-भाँति ग्रहण करना चाहिए।

सबसे पहले शरीर-संयम की ज़रूरत है। इस विषय में मैं पहले भी लिख चुका हूँ। शरीर ही वह साधन है जिससे दुनिया के सब कर्म संभव हैं। स्वस्थ मन के लिए स्वस्थ शरीर ज़रूरी

शरीर-संयम

है। आत्मा के देवता का यह मन्दिर है। कोई भी भक्त देवता के स्थान को गन्दा, खराब और निकम्मा नहीं रखेगा। प्रत्येक कारीगर अपने औज़ारों को साफ़ सुथरा और दुरुस्त रखता है। कोई बढ़ई न पसन्द करेगा कि उसकी आरी भोथर हो जाय या उसका रन्दा बेकाम हो। पर ताज्जुब है कि जिस शरीर के बिना मनुष्य-जीवन का कोई काम नहीं हो सकता उसके प्रति हम बिल्कुल लापरवाह रहते हैं। कैसे वह स्वस्थ रहेगा, इस पर हम बहुत कम विचार करते हैं और तदनुसार आचरण तो बहुत ही कम करते हैं। हमारे मुहल्ले में मि० शेरसिंह रहते हैं। जवानी

रे शेरसिंह !

के दिनों में इनके बल की धाक थी। जिधर से निकलते मारे डर के एक सियापा छा जाता। बड़ी-बड़ी

मूँछें, ऊँचा एवं उठा हुआ सीना ! चलते थे तो मानो पृथ्वी धमक उठती थी। चेहरे पर नूर बरसा पड़ता था। मित्र-मण्डलियों में यह इस बात के लिए मशहूर थे कि एक बैठक में सेर भर मलाई, ५० लड्डू और कम से कम इतनी ही पूरियाँ आसानी से उदरस्थ कर लेते हैं। इन्हें निमन्त्रण देना गरीब के लिए अपना टाट उलट देना था। हाँ, राजा-रईसों के यहाँ, एक कौतुक के रूप में, उन्हें प्रायः निमन्त्रण मिला करता था।

और आज ?

आज जो इन्हें देखता है, इन पर एक हाय करता और तरस खाता है। बड़ी मुश्किल से लाठियाँ टेकते ये दस-पाँच कदम चलते हैं। गठिया के शिकार हो चुके हैं। चेहरे पर ४५ वर्ष की अवस्था में ऐसी झुर्रियाँ हैं कि ५० वर्ष के आदमी उन्हें भ्रम से बाबा कहकर पुकारते हैं। आज दो रसगुल्ले इनको हजम नहीं होते। अपने लड़कपन के स्वस्थ साथियों को खाते-पीते देखकर यह लालसाभरी आँखों से उनकी ओर देखते हैं और इनके कलेजे में एक हूक उठती है।

बात इतनी-सी है कि जब इनका शरीर स्वस्थ था, इन्होंने अपने पेट पर मनमाना अत्याचार किया। आखिर बेचारा बेकाम हो गया। पेट खराब हुआ, खून खराब हुआ। चेहरे का तेज झड़ गया, हाथ-पाँव निर्जीव हो गये। जिस घूँसे से एक दिन ईंटें तोड़ देते थे उनसे आज कागजी बादाम भी नहीं टूटता। यह सब उस असंयम का परिणाम है।

शेरसिंह के छोटे-मोटे भाई-बन्द तो हममें हजारों हैं। इसमें बहुत कम ऐसे हैं जिन्होने जवानी के दिनों में अपने शरीर पर अत्याचार न किया हो। जब भूख नहीं होती तो भी हम ज़बान के ज़ायके के लिए चटपटी चीजें खा ही लेते हैं। इसलिए जो जहर अन्दर इकट्ठा होता रहता है वही कमजोरी में रोगों के रूप में फूट निकलता है।

खान-पान तक ही नहीं, भोग विलास, पहनने-ओढ़ने हर बात में असंयम के उदाहरण हम लोगों के जीवन में भरे पड़े हैं। इसी असंयम

के कारण हमारा जीवन नरक बन रहा है। छोटी-छोटी बातों पर ही ज़िन्दगी की नींव पड़ती है। अक्सर हम इन बातों की ओर लापरवाही के साथ देखते हैं और एक 'उहुँक' कर देते हैं पर बाद में, जब रोग और शोक हमें दबोचते हैं तब हमारे हाथ सिर्फ पछताना ही रह जाता है।

इसलिए सबसे पहली ज़रूरत यह है कि प्रत्येक काम में शरीर का उपयोग बड़े संयम के साथ करो। जितना खाना-पीना है—उतना ही खाओ-पिओ; जिस तरह रहना चाहिए, उस तरह रहो। शरीर में सुस्ती न आने दो; उसे काम में लगाये रहो। घूमो फिरो; स्वच्छ खुली वायु का सेवन करो। आहार-विहार में सयम रखो। कभी दिल को छोटा न करो। हँसी-खुशी के साथ रहो। स्वच्छ मुक्त हास्य, सादा आहार और खुली हवा वे 'टानिक' हैं जो जवानी को बहुत दिनों तक बनाये रखते हैं। संयम वह अमृत है जिसे पीकर शरीर फौलाद की तरह दृढ़ हो जाता है।

आहार-विहार का संयम

दुनिया में जो इतने रोग दिखाई देते हैं और दिन-दिन नये-नये रोग निकलते आते हैं इसका कारण यही है कि हमारा जीवन बनावटी हो गया है। प्रकृति और प्राकृतिक नियमों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। शहरी ज़िन्दगी बिल्कुल कृत्रिम हो गई है। नगरों में रहनेवाले ज्यादातर लोगों को स्वच्छ वायु, सुन्दर सूर्योदय और सोनहली सन्ध्या से भेंट नहीं होती। इसमें से जो लोग पश्चिम की नक़ल करके चल रहे हैं और जिनको अपनी सभ्यता का घमण्ड है उनकी दशा तो और भी दयनीय है। इनका मनोरञ्जन केवल सिनेमा है। चायपान इनका जलपान है। दुनिया के साथ इनका परिचय केवल अखबारी परिचय है। रात को जल्दी सोने से इनकी सभ्यता में धब्बे लग जाते हैं और प्रातःकाल जल्द उठना इनके लिए एक पाखियात और

आजकल का जलपान

पुराना रिवाज है। इनका प्राणायाम केवल धूम्रपान—सिगरेट पीने—तक सीमित है। दार्जिलिंग के सूर्योदय के चित्र शायद इनके कमरे में हों या उसकी प्रशंसा भी आप उनके मुँह से सुन लें पर उस उषा और

आजकल का उषःपान

सूर्योदय के दर्शन उन्होंने कभी नहीं किये जो दुनिया पर रोज एक नये जीवन-प्रद सन्देश की तरह छा जाते हैं और जिनको देख कर मन में एक नई आशा और नया उत्साह भर जाता है।

नक़ली दूध, बासी डबल रोटियाँ और बिस्कुट खाकर, सिगरेट पीकर तथा अप्राकृतिक जीवन बिताकर इन्होंने असमय ही बुढ़ापा खरीद लिया है। इनके दिलों में शिशिर का डंक पैठ गया है। एक मशीन की तरह उनका हँसना, रोना, अनुभव करना, उनका खान-पान और मनोरञ्जन सब में थका देने वाली विवशता है। अधिकांश पढ़ते बहुत कम हैं पर आँखों पर चश्मा है। नब्बे सैकड़ों को कब्ज और पेट के दूसरे रोग हैं। स्त्रियों में प्रदर, आर्त्तव दोष इत्यादि रोग सामान्य नियम बनते जाते हैं। इनको देखिए और एक पठान बच्चे से इन्हें मिला लीजिए जिनकी जिन्दगी काठ की तरह सख्त है पर जो प्रकृति माँ की गोद में पलते हैं;

असमय बुढ़ापा

चश्मों का पानी पीते हैं और पहाड़ों को यों पार कर जाते हैं जैसे माँ की गोद में चढ़े जा रहे हों।

मुझे अपनी बात याद है। बचपन में जब हम पढ़ते थे, कभी ज्वर आया तो दवा यह थी कि दो-चार रोज के लिए गाँव चले जाँय। वहाँ की हवा बात की बात में शहर के उन सब कीटाणुओं को नाश कर देती थी जो गन्दी गलियों की धूल में हमारे साथ लग जाते थे। आज बड़े-बड़े विशेषज्ञों की दवाइयाँ इतनी जल्द असर नहीं करतीं।

इसलिए आज की हमारी जिन्दगी में, जब हम प्राकृतिक जीवन से बहुत दूर चले आये हैं; जब दिन में भी सूरज की रोशनी की जगह बिजली के बत्तियों के नीचे अनेक आफ़िसों में काम अपना उदाहरण करना पड़ता है; जब कशमकश बहुत ज्यादा है तब तो हमें संयम से और भी ज्यादा काम लेना चाहिए। मैं इस पर इतना जोर इसलिए दे रहा हूँ कि मैं जानता हूँ, अक्सर जवानी में इन बातों को परवा नहीं होती। यौवन कठिनाइयों को ठुकराता चलता है और जवानी खतरे के डरावने उपदेशों को छाती पर इतराती हुई फिरती है। जब बदन में ताक़त होती है, दिल में एक विद्रोह का भाव रहता है। अक्सर ऐसे उपदेश उस वक्त बेमौका और सुनने में कर्कश मालूम पड़ते हैं पर बाद में पछताना ही हाथ रहता है। अपना एक छोटा उदाहरण मैं दे सकता हूँ। १९२० के पहले मुझे पढ़ने की ऐसी चाट थी कि दो एक किताब रोज खत्म किये बिना जिन्दगी सूनी मालूम पड़ती थी। मैं सड़क पर चलता तब भी पुस्तकें तथा समाचारपत्र पढ़ता चलता था। कई बार मोटर और इक्के से दबते-दबते बचा। घर पर होता तो यह हालत कि शाम हो गई है, दिया नहीं जला है पर मुझे इतना सन्तोष नहीं कि थोड़ी देर किताब रख दूँ और रोशनी हो जाने पर पढ़ूँ। बड़े-बूढ़े मना करते तो व्यंग्य से भरी हुई एक हँसी में हँस देता और अपना काम यों जारी रखता जैसे किसी पागल आदमी ने कोई ऐसी बात कही हो जिस पर

समझदार आदमी को विचार नहीं करना चाहिए । उसीका परिणाम आज यह है कि मेरी एक आँख बहुत कमजोर हो गई है और जरा भी मेहनत पर आँखों से पानी निकलने लगता है । यों ही मुझे याद है कि २० वर्ष की अवस्था तक मै जूता-टोपी का इस्तेमाल कभी-कभी ही करता था । कोट छूता न था । केवल कुरता पहने माघ-पूस के जाड़े में निर्द्वन्द्व गंगा के तीर पर तथा इधर-उधर रात को देर तक घूमा करता था । सरदी-जुकाम कैसे होते है, यह मुझको मालूम न था । शरीर में इतनी गरमी थी कि साधारण ज्वर मे जब मैं स्नान कर लेता था तब प्रायः ज्वर उतर जाता था । अभी दस वर्ष पहले तक रात को तीन घंटे की नींद मेरे लिए बस थी । माघ पूस के महीने में ढाई-तीन बजे रात को खुले मैदान में, जहाँ तेज़ हवाएँ चलती थी, मै नहाता तथा नहाने के बाद कपड़ों को साबुन से धोता था । मीलों दौड़ता था । जब लोग सुबह ५ बजे प्रार्थना के लिए प्रार्थनाभूमि मे लिहाफ ओढ़े, कान ढके आते तो मै एक सूती बनियाइन या आधी बाँह की कमीज पहने उनकी तरफ यों देखता था मानो खाक के ये पुतले जीने लायक नहीं । शरीर के साथ मैंने जो ज्यादती इस तरह की है उसका नतीजा यह है कि अब जाड़े-भर मुझे नहाने के लिए गरम पानी चाहिए।

यदि आप पूछेंगे या पता लगावेंगे तो इस तरह के अनुभव आपको बहुतों के मुँह से सुनाई देंगे । चाहे मनुष्य कितना ही पतला-दुबला हो आम तौर के उसमे काफी ताक़त होती है । प्रकृति उसे इस रूप में विकसित करती है कि रोग से लड़ने की स्वाभाविक ताक़त शरीर मे होती है । यदि हम अपने शरीर से काम लेते वक्त सदा याद रखे कि हर क्षेत्र और दिशा में उसके काम कर सकने की ताक़त की एक हद है, यदि हम सदा समझदारी और सयम से काम लें तो वह कभी हमारे लिए बोझ न होगा और जिन्दगी की गाड़ी आसानी के साथ यों चलती रहेगी जैसे असफाल्ट की सड़कों पर रबर टायर की गाड़ियाँ चलती है । धक्का न लगेगा या लगेगा तो कम से कम लगेगा ।

शरीर के संयम के बाद वाणी के संयम की बात आती है जो व्यावहारिक दृष्टि से सामाजिक और विशेषतः गृहस्थ जीवन में शायद सबसे उपयोगी है। अक्सर जो घरों में, या बाहर भी, बात

वाणी का संयम

का बतंगड़ बन जाता है उसकी वजह यही होती है कि बहुत कम लोग बातचीत करते वक्त ज़बान पर क़ाबू रख पाते हैं। मैं ऐसे अनेक आदमियों और औरतों को जानता हूं जो नेकदिल हैं पर ज़बान की कर्कशता के कारण उनकी जिन्दगी हाय-हाय करते बीत रही है। एक समझदार लेखक और पत्रकार को मैं जानता हूँ जो अक्सर अपनी असफलता पर कहते रहते हैं—"भई क्या करूँ ? मैं तो मुँहफट आदमी हूँ। जो मन में आया कह देता हूँ। दिल में कुछ नहीं रखता। और अमुक आदमी बड़े चतुर हैं। समय देखकर बातें करते हैं। काम बना लेते हैं।" वह शायद समझते हैं कि उनका इस तरह मुँहफट होना उनकी सच्चाई का द्योतक है और जो लोग समय देखकर बातें करते हैं वे शायद आचरण में इनसे नीचे हैं पर यह सिर्फ अपने को धोखा देना है। जब जो मन में आये बक देना सज्जनता का कोई लक्षण नहीं है, बल्कि इसके विरुद्ध वह इस बात का सुबूत है कि इस आदमी का अपनी इन्द्रियों पर कोई क़ाबू नहीं है और वह सभ्यता के बिल्कुल नीचे वाले स्टेज में है।

एक स्त्री को मैं जानता हूँ जो बड़ी नेक और साफ दिल की औरत है। सीधी-सादी; पर गृहस्थी के काम में उसने अपनी जवानी लगा दी

डंक मारने वाली जिह्वा

है। और विवाहित जीवन में स्त्री को जो हिस्सा देना चाहिए उससे ज्यादा उसने दिया है। काम से कभी उसने मुँह न मोड़ा और न कभी उसने अपने लिए ज़रूरत से ज्यादा सुविधाओं की माँग की। जो उसे पहनने को मिल गया, उसने पहन लिया। जो खाने को मिला, खा लिया। पर इन बातों के होते हुए भी पति सन्तुष्ट नहीं; स्त्री भी सन्तुष्ट नहीं। दोनों में अतृप्ति और खीझ है। ज़रा-सी बात पति ने कही तो स्त्री तमतमा

उठती है। उसके मुँह से काँटों-से चुभने वाले और तीखे शब्द निकलते हैं: "अपना भाग सराहो जो मै तुम्हें मिली। इतने दिन बीत गये, मैंने कभी उफ नहीं की। मिली होती दूसरी तो मज़ा मालूम पड़ता। नाकों चने चबवा देती। ऐसी-वैसी मिलती तो उसकी जूतियाँ चटकाते,

"अपना भाग सराहो जो मैं तुम्हें मिली!"

जूतियाँ। फलाँ को देखो, अपनी स्त्री को हाथों हाथ रखते है। उसकी भौ पर बल आये और उनके प्राण सूखे। पर मै हूँ कि रात-दिन काम करते-करते मरी जा रही हूँ और उसपर तुम्हारी बातें भी सुनती हूँ।" शिकायतों का यह सिलसिला इतना लम्बा होता है कि सुनने वाले ताज्जुब करें। जिस स्त्री को बोलना इतना कम आता है उसकी जबान पर शब्दों का यह तूफान न जाने कहाँ से पिल पड़ता है। जब शब्द खत्म हो जाते हैं तब रोने का क्रम चलता है।

इस स्त्री का सारा परिश्रम फिजूल है। वह खुद अपने किये पर चौका लगा देती है। अगर वह ज़रा मीठा बोल सकती, अगर वह जानती कि कब बोलना चाहिए और किस वक्त चुप रहना अच्छा होता है तो वह एक अत्यन्त गुणवती स्त्री होती। उसे पाकर कोई भी पति अपने को धन्य मानता।

यह तो एक उदाहरण है। जो बात स्त्रियों के लिए है वही पुरुषों के लिए भी है। अक्सर पुरुष स्त्री को मीठा बोलने, शान्त रहने और धीरे बोलने का उपदेश करते हैं पर खुद शायद डाँट-डपट, गुस्सा और असंयम को ही मर्दानगी समझते हैं। आज स्त्रियों में विद्रोह का जो स्वर है, उनमें मिठास की जगह जो कर्कशता आ रही है उसका कारण पुरुषों की लापरवाही और स्त्रियों के प्रति उनका खराब व्यवहार ही है। यह कैसे मुमकिन है कि जो आदमी रात-दिन गुस्से में भरा रहता हो, जो खुद अपनी जबान पर काबू न रख सकता हो वह अपनी स्त्री से बोलने में शर्बत घोलने की आशा करे। पुरुष में स्त्री की अपेक्षा स्वभावतः कठोरता ज्यादा होती है। इसलिए उसे अपनी वाणी पर ज्यादा संयम रखने की जरूरत है। मेरे निकट के एक रिश्तेदार हैं जिनकी स्त्री मितव्यय और परिश्रम में हजारों में एक होगी। जब वह व्याह कर आई थी, कुन्दन-सा दमकता उसका चेहरा था। उसने कठिनाइयों से भरी गृहस्थी की आग में तिल-तिल करके अपने को जला दिया है। इसको पति ऐसे मिले जो निकम्मे और निठल्ले थे। जहर दिलों में इकट्ठा होता गया। अब रह-रहकर दोनों में गुत्थम-गुत्थी हो जाती है। फिर जिन्दगी वैसे ही चलने लगती है। यदि वह स्त्री किसी सुशील स्वभाव के आदमी को मिली होती तो घर में सचमुच उजाला हो जाता और गृहलक्ष्मी को पाकर घर धन्य हो जाता।

निकम्मा पति

जिन छोटी-छोटी बातों की हम उपेक्षा करते हैं अक्सर जिन्दगी का सुख उन्हीं पर निर्भर करता है। हम सोचते हैं—इससे क्या होना जाना है ? किसने नहीं देखा है कि सब कुछ होते हुए भी कर्कश स्वभाव के कारण कितने ही घर मर-घट की तरह भयानक हो जाते हैं। कई बार जरा-सी तीखी बात दिल में ऐसा दाग कर देती है जो फिर कभी नहीं भरता। ऊपर-ऊपर कुछ पता नहीं चलता पर भीतर-भीतर नींव दरकी जाती

छोटी बातें ही जीवन बनाती हैं

है। ऐसा भी होता है कि पुरुष ने कोई चुभने वाली बात कह दी पर स्त्री ने जवाब नहीं दिया या कभी स्त्री ने कोई बात कह दी और पुरुष पी गया पर अन्दर-अन्दर कलेजा मसोसता रहा। समझा यह जायगा कि वह बात खत्म हो गई। पर सच तो यह है कि भविष्य के दुःखों का बीज बो दिया गया, जो आगे चलकर हरा-भरा और अच्छा-खासा वृक्ष हो सकता है। इसलिए सबसे अच्छा तो यह है कि हम वाणी पर संयम रखें। कोई बेजा या चुभने वाली बात गुस्से और उत्तेजना में भी न कहें। जरा-सी हँसी दुःख के इन काले और बात की बात में जल-थल एक कर देने वाले बादलों को छिन्न-भिन्न कर सकती है। इसलिए जरा देर के दुःख को स्थायी बनाना किसी तरह अक्लमन्दी नहीं है।

और अगर कोई कड़वी बात, कोशिश करने और सावधानी रखने पर भी, किसी वक्त भूल से मुँह से निकल जाय तो अकड़ जाने या अलग बैठकर पछताने से कुछ न होगा। इधर तुम कोयल और कौवा रो रहे होगे, उधर तुम्हारी गृहस्थी के खिले फूल पर पाला पड़ रहा होगा। तुम्हें चाहिए कि तुरन्त तुम उस बात के लिए दुःख प्रकट कर दो या क्षमा माँग लो। गृहस्थ जीवन व्यावहारिक बुद्धि के प्रयोग से ही उठ सकता है। तुम्हारे दो शब्दों से क्षण-भर मे फिर तुम्हारी खेती लहलहा उठेगी।

बचपन में तुममें से बहुतों ने यह दोहा पढा होगा—

कागा काको लेत है, कोयल काको देत।
मीठे बचन सुनाय के, सब को वश कर लेत॥

'कौआ किसका कुछ छीनता है और कोयल क्या किसी को कुछ दे देती है? नहीं, पर मीठी बोली सुनाकर वह सबको वश कर लेता है।'

यह मामूली सा दोहा यदि तुम सदा याद रखो तो तुम्हारे बड़े काम का सिद्ध होगा। अगर तुम वाणी पर संयम रखो तो तुम्हारा घर तुम्हें सदा ताजे फूल की तरह खिला हुआ और प्रसन्न दिखाई देगा।

इसके बाद विचारों के संयम की बात आती है। असल में तो यह

वाणी के संयम के पहले की चीज़ है और उससे ज्यादा महत्वपूर्ण भी है क्योंकि जब तक विचारों पर संयम न हो, जीभ पर काबू पाना मुश्किल ही है पर मैंने व्यावहारिक दृष्टि से जो बातें सरल और अभ्यास से जल्दी साध्य हैं, उन्हें पहले लिखना ठीक समझा ।

कोई भी आदमी तबतक सुखी नहीं हो सकता जबतक उसका मन शान्त न हो, जबतक उसकी बुद्धि में गम्भीरता और स्थिरता न आ गई हो । स्वस्थ दिमाग़ के बिना ज्यादा दिन तक विचारों का संयम शरीर को स्वस्थ रखना असंभव है इसलिए दिमाग़ को, मस्तिष्क को उचित मार्ग पर चलाने की आदत भी हमें डालनी होगी । किसी ने कहा कि सब दुःखों का मूल बुद्धि है । इसमें कुछ सचाई तो ज़रूर है । दिमाग़ वह दोधारी तलवार है जिससे जीवन की रक्षा की जा सकती है और उसे टुकड़े-टुकड़े भी किया जा सकता है । इससे आदमी की ज़िन्दगी नरक बन सकती है और ठीक उपयोग करने पर इसी के कारण हमारा जीवन नन्दन-वन की तरह सदाबहार के फूलों से भर जा सकता है । दुनिया में जितने दुःख हैं उनमें से ज्यादातर दिमाग़ की खराबी या अस्वस्थता के कारण पैदा होते हैं । असंयत बुद्धि ही जगत् के समस्त बन्धनों का कारण है । जहाँ कुछ भी नहीं है, वहाँ इसे पहाड़ दिखाई देते हैं । यह आत्मविश्वास की शत्रु है और सन्देह के साँप इसी के स्तन पीकर पलते हैं । एक वैद्य हैं । बहुत अच्छे और समझदार आदमी हैं पर जब क्षय या अन्य छूतरोग के किसी रोगी को देखकर वह आते हैं तो व्यर्थ विचार करने लगते हैं— 'कहीं उसके कीटाणु तो हमें नहीं लग गये ।' इस तरह की मानसिक स्थिति दयनीय है । यह बड़ी खतरनाक है । कीटाणु लगे हों या न लगे हों पर सन्देह और शंका के खतरनाक कीटाणु तो इनके दिमाग़ में पहले ही घर कर चुके हैं ।

विचारों के असंयम ने दुनिया में क्या नहीं किया है ? इसने हमें नग्न बनाने में कोई कसर नहीं रखी है । एक नास्तिक के पास एक

बजता है और इसी पर सैकड़ों सिर उतार लिये जाते हैं। एक मुसलमान लड़का किसी हिन्दू लड़का को खेल-खेल में पीट देता है, हजारों की भीड़ लग जाती है, इसे साम्प्रदायिक झगड़े का रूप मिल जाता है। विचारों के असंयम का इससे दुखःदायक रूप और क्या होगा कि जो लोग कलतक अच्छे और शरीफ़ पड़ोसियों की तरह रह रहे थे; जिनमे आपस में व्यापार-व्यवसाय चलता था, वे जरा-सी घटना पर पागल हो उठते है और हिंसक जानवरों की तरह व्यवहार करने लगते हैं। भाई भाई के खून का प्यासा हो जाता है। बच्चो और औरतों की जिन्दगी और इज्जत भी खतरे में पड़ जाती है।

यह विचारों के असंयम का ही तो परिणाम है। न मुसलमान यह सोचता है कि घण्टा बजने से उसके नमाज़ मे जो थोड़ी-बहुत बाधा पड़ती है उससे पागल होकर अपने पड़ोसी को मारना कहीं ज्यादा दीन के खिलाफ़ है, न हिन्दू यह सोचता है कि यो आदमी से जानवर बन जाना सबसे बड़ा अधर्म है। जब ये धर्म की रक्षा का दावा कर रहे होते हैं तभी सबसे बड़ा अधर्म भी कर रहे होते है। बात इतनी ही है कि इन्होंने अपने विचारो पर सयम रखना नहीं सीखा, जो न सिर्फ सब धर्मों की कुंजी है बल्कि जिसके कारण हम दुनिया की बहुतेरी तकलीफ़ों से भी आसानी के साथ बच सकते है।

गृहस्थ-जीवन मे तो विचारों का संयम और भी जरूरी है। यहाँ कदम कदम पर उत्तेजना के मौके आते है, दिमाग मे एक फितूर पैदा

हो जाता है जिसका असर घर के हर एक आदमी

पतन का क्रम और हर, काम पर पड़ता है। वह खुद दुखी होता

है और औरों को भी दुखी करता है। सीधा-सादा आदमी खब्ती और सनकी बन जाता है। लोग उसे अपने मनोविनोद और व्यंग का साधन समझते है। इस गलतफहमी और लोगों के ग़लत रवैये के कारण उसके मन मे और भी खीझ बढ़ती जाती है। वह चिड़चिड़ा हो जाता है और आखिरकार अपने होश-हवास भी खो

बैठना है। इस तरह विचारों के असंयम का परिणाम न सिर्फ़ कुटुम्ब, घर और समाज के लिए दुःखदायी होता है बल्कि स्वयं उस आदमी के लिए भी वह हानिकर होता है।

इसलिए आजकल की जिन्दगी में, खास तौर पर एक गृहस्थ के लिए, विचारों के संयम की बड़ी आवश्यकता है। विचारों पर संयम रखने से वाणी के संयम का काम अपने-आप सरल हो जायगा और बहुतेरी व्यर्थ की और झूठी कठिनाइयों से तुम बच जाओगे।

पर संयम के जीवन का यह सिलसिला तबतक पूरा नहीं हो सकता जबतक कल्पनाओं के संयम की चर्चा न कर ली जाय। इस माला में यह प्रधान दाने के समान है। यह इसकी सबसे उपयोगी और जरूरी कड़ी है जिसके बिना और तरह के सयम बिलकुल फीके पड़ जाते है।

जीवनलाल की हरी-भरी गृहस्थी इस कल्पनाओं के असंयम में जल गई। अच्छे खाते-कमाते आदमी थे। ढाई सौ तनख्वाह मिलती थी; अलाउन्स कुछ ऊपर से मिल जाता था। आफ़िस के काम से जब बाहर जाते तो उसका कुछ अलग से मिलता था। उनके छोटे-से कुटुम्ब के लिए जिसमें वह, उनकी स्त्री और एक छोटा बच्चा भर था, वह आमदनी जरूरत से कुछ ज्यादा ही थी। इससे भी बड़ी बात यह थी कि जीवनलाल स्वयं एक बहुत सुशील पुरुष थे। उनको कोई बुरी लत न थी। उन्होंने कभी किसी अन्य स्त्री की ओर रसिकता के साथ न देखा। वह अपनी स्त्री को पाकर सुखी थे। उनके आकाश में वह पूर्ण चन्द्र की भाँति राज्य करती थी। जीवनलाल को भी जो जानता था उनके स्वभाव की बड़ाई करता था। वह नम्रता और शिष्टाचार की मूर्ति थे। सच-मुच ऐसे व्यक्ति आज की दुनिया में बहुत कम दिखाई पड़ते है।

सोने की गृहस्थी राख होने का उदाहरण

पर सोने में सुगन्ध यह था कि उनकी स्त्री इस विषय में उनसे भी दो क़दम आगे थी। अक्सर दुनिया में होता यह है कि जिसे कोयल मिलनी थी उसे बगुली मिल जाती है और जिसे हंस मिलना था उसे

कौआ ही मिलता है। अगर मर्द अच्छा हुआ तो औरत पूरी डाइन मिलती है और स्त्री गौ हुई तो पति कसाई निकलता है। विधाता को इस तरह की दिल्लगी में एक मज़ा आता है। ऐसा लाखों में एक उदाहरण मिलता है कि पति पत्नी दोनों भले हों।

जीवनलाल के साथ यही बात थी। उनकी स्त्री साक्षात् लक्ष्मी थी। कुन्दन-सी चमक, गोरा-गोरा चेहरा, आँखों में नूर बरसता हुआ। जिस कमरे में प्रवेश करती वह झक से प्रकाशित हो उठता था। चेहरे पर ऐसा तेज कि देखने मे आँखें झपक जायँ। इससे भी बड़ी बात यह कि जैसा रूप वैसा ही गुण। स्वभाव मे वह उमा और रूप में लक्ष्मी थी। कभी कोई कड़ुवी बात उसके मुख से किसी ने न सुनी। किसी को कष्ट में देखती, उसकी मदद को, उसे दिलासा देने को झट आगे आ जाती थी। किसी बच्चे को देखती, गोद मे उठा लेती, उसे चुमकारती, प्यार करती और उसमें यो भूल जाती थी जैसे उसी का अपना बच्चा हो।

लक्ष्मी

जीवनलाल के मित्र तथा परिचितों को उनके भाग्य पर ईर्ष्या होती थी। और इस देव-दुर्लभ सुख पर किसे ईर्ष्या न होगी? ऐसी सुखी जोड़ी आज-कल बहुत कम देखने में आती है।

पर यह हरा-भरा बगीचा संयमहीन कल्पनाओं के तुषारपात मे झुलस गया। बात जरा सी हुई पर जो आग बड़े भवनों और हवेलियों को जलाकर खाक कर देती है वह भी तो जरा-सी चिनगारी के रूप मे ही आरम्भ होती है। जीवनलाल के एक मित्र थे रामकृष्ण। जीवनलाल उनको बहुत मानते थे। जीवनलाल का घर रामकृष्ण की शांति का केन्द्र था। रामकृष्ण अकेले आदमी थे; स्त्री मर चुकी थी। तब से विवाह न करने का पक्का इरादा कर चुके थे। १२ वर्ष का एक लड़का था जिसे गुरुकुल में भेज दिया था। एक आफिस में बड़े बाबू थे। डेढ़ सौ मिलते थे। बेफिक्र आदमी। दिन आफिस में बीतता; रात का अधिक समय तथा

जीवनलाल के मित्र रामकृष्ण

छुट्टियों के दिन जीवनलाल के यहाँ बीतते थे। जब जीवनलाल रामकृष्ण को अपना दिली दोस्त मानते थे तब इसमें कोई बुराई या अस्वाभाविकता न थी कि जीवनलाल की स्त्री नर्मदा भी उन्हें बहुत ज्यादा मानती। रामकृष्ण नर्मदा को भाभी कहते थे और जीवनलाल के प्रति उनका सचमुच भाईचारे का भाव था। वह उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

जीवनलाल को रामकृष्ण पर पूरा भरोसा था। जब वह बाहर आफ़िस के काम से जाते तो नर्मदा को रामकृष्ण के भरोसे अकेले छोड़ जाते थे। एक बार की बात है; जाड़े के दिन थे। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। जीवनलाल एक हफ्ते के लिए बाहर गये थे। संयोग की बात, पहले जीवनलाल के बच्चे को सर्दी लगी। उसके बायें फेफड़े पर निमोनिया का आक्रमण हुआ और उसकी देख-रेख करने तथा असंयम में नर्मदा को ब्रांको-निमोनिया हो गया। माँ-बेटे खाट पर पड़ गये। बेचारे रामकृष्ण बड़ी चिन्ता और पशोपेश में पड़ गये। मित्रता और कर्त्तव्य दोनों का तकाजा था कि वह अपनी भाभी तथा उसके बच्चे दोनों के निकट रहें। हिचकिचाहट हुई पर ऐसी विपदा के समय उन्होंने उसे दूर कर देना ही मुनासिब समझा। रोगियों के पास ही उनका भी बिस्तर लग गया। उन्होंने आफिस से छुट्टी ले ली और रात-दिन भाभी और बच्चे की सेवा में एक कर दिया।

चूँकि जीवनलाल बराबर यात्रा में थे उनको घर की कोई खबर न मिली। कार्य-वश वह आठ-दस दिन के लिए और रुक गये। इस बीच रामकृष्ण की सेवा ने भाभी और बच्चे को खतरे की सीमा के बाहर कर दिया था। सोलहवाँ या सत्रहवाँ दिन था। बच्चा आज प्रसन्न दीखता था। रामकृष्ण बच्चे की खाट पर बैठ गये। उसे गोद में ले लिया और प्यार करने लगे। भाभी का हृदय इस दृश्य को देखकर और कदाचित् रामकृष्ण की सेवाओं का ख्याल कर भर आया और उनकी आँखों में झरझर आँसू निकलने लगे। रामकृष्ण ने यह देखा तो बच्चे को लिटा दिया। एक मिनट पेशोपेश में पड़े देखते रहे। फिर हिम्मत करके

भाभी की खाट पर उनके सिरहाने बैठ गये और रूमाल से आँसू पोंछने लगे। नर्मदा एक बार झिझकी पर भावों का वेग इतना प्रबल था कि रामकृष्ण को मना कर देने की शक्ति न बटोर सकी।

ठीक इसी नाटकीय अवसर पर जीवनलाल ने कमरे में प्रवेश किया। दस ही मिनट पहले वह आये थे और नौकर से पत्नी की बीमारी का हाल सुन कर बड़े चिन्तित हो गये थे। कपड़े सन्देह का साँप उतार कर तुरन्त स्त्री के कमरे में पहुँचे। वहाँ का दृश्य देखकर एकाएक यों ठिठक गये जैसे रास्ता चलता हुआ मुसाफिर पाँव के सामने साँप देखकर ठिठक जाता है।
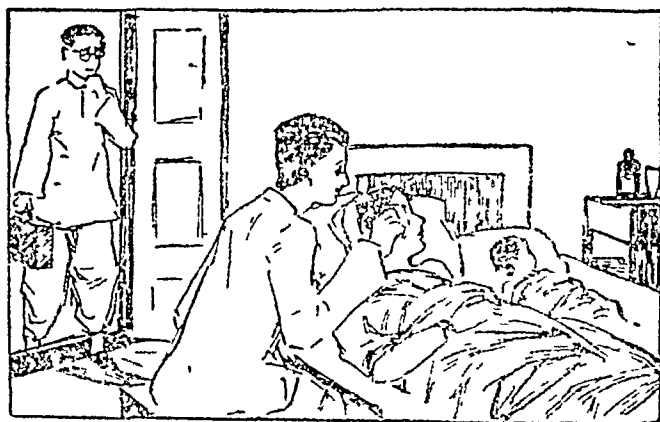
वहाँ का दृश्य देखकर यों ठिठक गये जैसे रास्ता चलता हुआ मुसाफ़िर आगे साँप देखकर ठिठक जाता है।

उनका चेहरा क्षण भर के लिए बिल्कुल सफेद हो गया। उनका दिल एकाएक घृणा से भर गया। मन में आया कि 'जिसे मै साध्वी समझे हुए था, जिसे पाकर पृथ्वी पर मेरे पाँव सीधे न पड़ते थे उसका असली रूप यह था। और यह रामकृष्ण! आस्तीन का साँप निकला!" जीवनलाल उलटे पॉव लौट गये। उनको नर्मदा और रामकृष्ण ने आते-जाते देखा भी नहीं।

उसी दिन से उनकी सोने की गृहस्थी राख होने लगी। जीवन की इस होली में एक-एक करके सब स्वाहा हो गया। नर्मदा ने पहले तो कुछ न समझा। कुछ दिन प्रतीक्षा और उदासीनता

दृश्य-परिवर्तन

में बीते। उसने समझा, यात्रा की थकान होगी और आफ़िस के कामों का बोझ होगा। अपने कायदे के अनुसार उसने पति के कर्त्तव्य-पालन में बाधा न दी। उधर जीवनलाल के मन में बुरी और सयमहीन कल्पनाओं का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह खत्म ही होने पर न आता था। सन्देह और अविश्वास से उनका मन भर चुका था। वह हर एक बात को अब इसी प्रकाश में देखते थे। उनको एक-एक पुरानी घटना याद आ रही थी जिसपर उन्होंने नर्मदा की पीठ ठोकी थी। अब मन कह रहा था कि इसका असली अर्थ कुछ और था। एक बार रामकृष्ण एकाएक बीमार पड़ गये थे। नर्मदा और जीवनलाल का सिनेमा का कार्यक्रम बन चुका था। ये तीनो प्रायः साथ सिनेमा वगैरा देखने जाते थे। नर्मदा ने प्रस्ताव किया कि चूँकि रामकृष्ण बीमार पड़ गये हैं हमारा सिनेमा देखना उचित न होगा। जीवनलाल कुछ दूसरे काम से बाहर गये; नर्मदा रामकृष्ण को देखने चली गई। उसके इन उच्च भावों पर जीवनलाल ने उसकी बड़ी प्रशंसा की थी। आज उनकी कल्पना ने इस घटना को तरह-तरह के रगों में चित्रित करना शुरू कर दिया।

एक बार रामकृष्ण को जीवनलाल के यहाँ ही भोजन करना था। नर्मदा की तबियत रात से कुछ खराब थी—ज्वर हो आया था। फिर भी उसने बड़े उत्साह से खाना बनाया और बनवाया। पर स्वयं खाना खाने लायक तबियत न होने से उसने खाना खाने से इन्कार कर दिया। इस पर रामकृष्ण भी अड़ गये और कहा कि यह कैसे हो सकता है कि भाभी भूखी रहें और मैं माल-ताल उड़ाऊँ। काफी देर तक प्रेम के झगड़े चलते रहे। अन्त में भाभी ने थोड़ा-सा खाना स्वीकार किया; तब रामकृष्ण भी खाने बैठे। जीवनलाल ने रामकृष्ण को इस विजय

पर बधाई दी थी और कहा था कि भई! मै तो ईश्वर से मना रहा था कि जल्दी यह झगड़ा खत्म हो क्योंकि पेट में चूहे तो पहले से ही उछल-कूद कर रहे है, फिर तरह-तरह की चीजे देखकर मुंह में राल भी भरी आ रही है।

आज इस तरह के प्रेम-भरे मान का अर्थ उनकी निगाह में बिल्कुल दूसरा हो रहा था। वह सोच रहे थे कि तभी यह रामकृष्ण बार-बार अच्छी जगहों से शादी की मॉग आने पर भी उन्हें मंजूर नहीं करता था। जिसे वह अपने जीवन की सबसे बड़ी साख समझ रहे थे वह सबसे बड़ा बोझ निकला!

इस तरह की कल्पनाओं का आदि-अन्त तो कुछ होता नहीं, न उनका सिलसिला ही कभी खत्म होता है। जीवनलाल सूखने लगे; जिस चेहरे पर हमेशा हॅसी का प्रकाश रहता था वहाँ कालिमा छा गई। अब उनको नर्मदा से मिलने की या बातचीत करने की फुर्सत ही न मिलती थी। वह उसकी नजर बचाते थे। कुछ दिनों बाद बात-बात पर चिढ़ना शुरू हुआ। फिर व्यंग की बारी आई। नर्मदा को इस परिवर्तन का कारण मालूम हुआ तो उसे ऐसी चोट लगी कि वह खाट पर ही पड़ गई और जो खाट पर पड़ी तो फिर न उठी। पहले हलका-हलका ज्वर रहने लगा। फिर खाँसी शुरू हुई। फिर भूख ने जवाब दे दिया। शरीर सूखने लगा। तपेदिक ने घर दबाया और जब जीवनलाल का नशा उतरा, उन्हें होश आया तब नर्मदा की जिन्दगी पूरी होने में सिर्फ २० दिन की कसर थी।

मृत्यु का बढ़ता हुआ पंजा

फिर वह बहुत रोये। उन्होंने बड़ी कोशिश की। जमीन-आसमान एक कर दिया। यत्र-मंत्र, दवा-दारू जिसने जो बताया, किया। सोना छूट गया, खाना छूट गया। शरीर की सुध-बुध न रही। जो उन्हें देखता था, आश्चर्य करता था। उनकी शक्ल पागलों सी हो रही थी। एक मिनट के लिए वह नर्मदा को छोड़ते न थे।

पर सब व्यर्थ गया। २० दिन बाद पति की गोद में हँसते-हँसते, उनके चरणों की धूल माथे पर रखकर और उन्हें सब तरह के आश्वासन देकर वह सौभाग्यवती सती उस शरीर को छोड़कर चली गई।

इस घटना को दो वर्ष बीत गये हैं। जीवनलाल ने नौकरी छोड़ दी है। उनकी दशा पागलों-सी है। बच्चे को उन्होने उसकी मौसी के सुपुर्द कर दिया है। खुद उस घर में, जिसमें नर्मदा ने शरीर त्याग किया था, उसके चित्र को छाती से लगाये, ज्यादा समय पड़े रहते हैं। कभी-कभी रात-रात भर रोया करते हैं। दो-दो दिन बीत जाता है, खाना नहीं खाते। शरीर सूखकर लकड़ी हो गया है। चेहरे पर बालों के झुरमुट उग आये हैं और उसे और भयानक बना दिया है। रामकृष्ण ने भी नौकरी छोड़ दी और कहाँ चले गये, इसे ठीक-ठीक कोई नहीं जानता। अफ़वाह यह है कि वह संन्यासी हो गये।

यदि हम खोजें तो समाज में इस तरह की छोटी-मोटी अनेक घटनाएँ मिलेंगी। जरा-सी बात ने सोने की गृहस्थी तबाह कर दी। कई जीवन नष्ट हो गये। फूलता-फलता बाग श्मशान हो गया।

कैसे आश्चर्य और दुःख की बात है कि रामकृष्ण की जिस सेवा और वफ़ादारी पर जीवनलाल को उसे छाती से लगा लेना था उसका ऐसा बुरा, दुःखदायक और विकृत रूप जीवनलाल की आँखो में समा गया। जीवनलाल भावुक आदमी थे। कल्पनाओं की उनमें अधिकता थी। उनका कल्पनाशील मानस पहले जिस बात में अच्छाई-अच्छाई देखता था वही भ्रम और सन्देह के कारण अब उसमें बुराई देखने लगा।

समाज में आज लाखों आदमी इस तरह की कल्पनाओं के शिकार है जिनका आदि-अन्त कुछ नही है। हजारों युवक ऐसे है जो झोपड़ी मे पड़े हुए महलों का स्वप्न देखते हैं। वह उस महत्वाकांक्षा से अलग चीज है जिसमें कर्त्तव्य का प्रकाश और वेग होता है। लाखों युवक ऐसे हैं जिन्होंने जीवन के बारे में, अपने विवाहित जीवन और भावी स्त्रियों के बारे में, कल्पनाओं का एक जाल बुन रखा है और स्वयं उस

जाल में फँस गये है। जीवन की वास्तविकताओं के विरुद्ध जाकर ये लोग दुःख और कष्ट के शिकार होते है। कोई परी सी स्त्री की कल्पना करता है; कोई लाखों रूपये कमाकर आराम और आसाइश की ज़िन्दगी के स्वप्न देखता है।

मैं मानता हूँ कि जीवन को नरक बनाने का सीधा नुस्खा कल्पनाओं का असंयम है। मन ही सब दुःखों का जनक है। अगर कल्पनाओं पर संयम रखा जाय तो ज़िन्दगी के ज्यादातर दुःख दूर हो जायँ। गृहस्थ-जीवन तो कल्पनाओं के सयम के बिना एक कदम नहीं चल सकता।

जीवन को नरक बनाने का नुस्खा

निश्चय ही आत्म-संयम वह चिन्ताहरण कवच है जो सब तरह के दुःखों से हमें बचा लेता है और यह वह म त्र है जिसके सिद्ध होने से जिन्दगी वसन्त के सुगन्धित फूलों से भर जाती है। क्या तुम जीवन के इस अमृत को ग्रहण न करोगे?

: १४ :

गृहस्थ-जीवन एक समझौता है!

दुनिया एक अजीब-सी जगह है। लोग आते हैं, जाते हैं और सब अरमानों की बस्ती दिलों में बसाये हुए। यों मालूम यह पड़ता है मानों यहाँ कोई नियम नही है—कोई व्यवस्था नहीं है, और संसार की विचित्रता जो चीज़ एक के लिए विष है वही दूसरे के लिए अमृत है। समुद्र की अनन्त लहरों की तरह एक इच्छा दूसरी के ऊपर उठती है और हमें चैन नहीं लेने देती। स्वस्थ जवान आदमियों को ज़िन्दगी और परिस्थिति से ऊबकर और परीशान होकर मैं मौत के लिए तड़पते देखता हूँ और ऐसे बूढ़े, जो खा नहीं सकते, पी नहीं सकते, चल-फिर और उठ नहीं सकते,—मतलब हर तरह से लाचार, लालसाओं की एक दुनिया लिये, कुछ और जीने के लिए प्रति क्षण मर रहे हैं। जिनका घर भरा-पूरा है और लाखो बैंक में हैं, ऐसे आदमी गृह-त्यागी होकर फकीर की धूनी रमा लेते हैं और जिनको मशक्क़त और मजूरी से १५) मिलते हैं, वे अपने कुटुम्बो से चिपटे हुए हैं। धनवान रोता है और कहता है इससे तो मेरे नौकर अच्छे है। ग़रीब रोता है कि ये धनवान् उसकी छाती पर बैठे भोगविलास कर रहे हैं। वह दुःखभरी निराशा और लालसा से उन बाबुओं की ओर देखता है जो अपने साथ एक सजी हुई, तमाशे की चीज़-सी, श्रीमती को लिये, उसे डाँटते-फटकारते और ईमानदारी का उपदेश देते, चीजें पर चीजें खरीदते और उन्हें उसके सिर पर यों लादते जा रहे हैं जैसे उसके कंधे और सिर इसीलिए बनाये गये हों और उसके लिए वज़न का कुछ ख्याल करना ज़रूरी नहीं है। अच्छी, हरी-भरी गृहस्थियाँ देखते-देखते मिट जाती हैं और जिनको मिटना है, वे मानो अमृत पीकर दुनिया में आई हैं।

जब मैं देखता हूँ तो यह सब एक अजीब तमाशा-सा लगता है। जैसे हमारी आँखों के आगे एक अत्यन्त-विविधतामय चित्रपट तह पर तह खुलता जा रहा हो। क्या अच्छा होता कि हम सिर्फ इसके दर्शक रह सकते, पर कठिनाई यह है कि हम भी उसी के अंग हैं और अगर नहीं हैं तो बहुत जल्द बन जाते हैं।

हमें अपना पार्ट अदा करने में बड़ी सहूलियत हो अगर हम अपने अन्दर विनोद की वृत्ति पैदा कर लें और ठीक-ठीक समझ लें कि क्या करने से ज़िन्दगी मे जो इतनी खराश और तुर्शी है, इतनी पीड़ा और दुःख है वह दूर किया जा सकता या कम किया जा सकता है।

समाज का एक लघु चित्र

चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसीलिए वह गृहस्थ भी है। गृह-जीवन समाज का एक लघु चित्र है। समाज की नींव मिलनसारी, एकता, स्वार्थों के समन्वय और सामञ्जस्य पर है। यह बात समाज के लिए जितनी ठीक है, उससे भी ज्यादा गृहस्थ-जीवन के लिए ठीक है। जो आदमी इसे नहीं समझता कि ज़िन्दगी एक समझौता है और विवाहित जीवन पूरा-का-पूरा समझौते और समन्वय, मेल-जोल, आदान-प्रदान की एक श्रेष्ठ साधना का जीवन है, वह मानो आँख रहते हुए भी देखकर चलने से इनकार करता है। सैकड़ों लहलहाती हुई गृहस्थियाँ इस बात को न समझने के कारण श्मशान बन गई हैं। सैकड़ों दिल इस पर, ध्यान न देने के कारण फट गये है। उनमें खटाई पड़ गई है। वे रोते है, कराहते हैं, मसोसते हैं, सिसकते है। उनका दम घुट रहा है और ज़िन्दगी भारी पड़ गई है।

एक दुखी युवक

कुछ दिन हुए एक अजनबी सज्जन मेरे यहाँ आये। अकस्मात् इनका आगमन हुआ। गोरे—चिट्टे, सुन्दर चेहरा, भरपूर जवानी, स्वास्थ्य भी कुछ बुरा नहीं। देखने से मालूम हुआ, आदमी दिल का भला है। उनका चेहरा दूसरों में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करता था। मैं इन्हे जानता न था, न इसके आने की कोई सूचना मुझे थी। इसलिए मैंने

प्रश्नभरी आँखों से उनकी ओर देखा। बड़ी नम्रता और संकोच से उन्होंने मुझसे कुछ समय माँगा और एकान्त में बात करने की इच्छा प्रदर्शित की। खैर, मैं उन्हें अलग ले गया; खूब खुलकर बातें हुई। वे सारी बातें उस व्यक्ति के गृहस्थ-जीवन से सम्बन्ध रखती थी और उनका विवरण देना न यहाँ इष्ट है और न यह उस आदमी के प्रति न्याय ही होगा। पर उन बातो का सारांश इतना ही है कि यह सज्जन आगरा के रहनेवाले, अच्छे पढ़े-लिखे और घर के सम्पन्न हैं। इन्होंने मेरी पुस्तक 'भाई के पत्र' पढ़ी थी तथा समय-समय पर पत्रिकाओ में निकलनेवाले गृहस्थ एवं विवाहित जीवन-सम्बन्धी मेरे अधिकांश लेखों को भी इन्होने पढ़ा था। इससे उनकी मेरे प्रति एक सद्भावना—जिसे श्रद्धा भी कह सकते हैं—थी। उनके मन में यह ख्याल था कि मै गृहस्थ-जीवन की कठिनाइयों के बारे में उनका कुछ पथप्रदर्शन कर सकता हूँ। इसलिए वह आये। उन्होने अपनी पत्नी की बड़ी तारीफ की और उसके प्रति अपने प्रेम का मुझे विश्वास भी दिलाया। पर दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हुए, दोनों एक-दूसरे के शुभाकान्क्षी होते हुए भी, आचरण में कुछ ऐसी बातें कर जाते थे कि दोनों के दिल मिल नही पाते थे। दोनो को अपनी इस असफलता पर दुःख था कि सब कुछ पाकर भी वे सुखी नहीं हो पाते।

बात इतनी है कि दोनों के जीवन और कार्य करने की दृष्टियों मे, ढंग में कुछ भेद है। और पति महोदय अपनी दृष्टि और कार्य-प्रणाली के प्रति इतना आग्रह रखते हैं, उस पर इतना जोर देते है कि यह विभेद ठोस रूप धारण कर लेता है। और सम्पूर्ण शुभाकांक्षाओं और सहानुभूतियो के बावजूद दोनों रह-रहकर टकरा जाते हैं। पति का कहना है कि मै जो कुछ अपनी पत्नी से चाहता हूँ वह उसी की उन्नति के लिए आवश्यक है। फिर पति महोदय सार्वजनिक जीवन के प्रति भी कुछ आकृष्ट है और चाहते हैं कि पत्नी खिंचकर उनके साथ आ जाय तो समाज मे

अपनी प्रवृत्तियों के प्रति आग्रह

कुछ उपयोगी कार्य कर सकने का रास्ता सरलता से निकल आवे और उन दोनों की मर्यादा और सामर्थ्य मे भी सुधार और विकास हो। पत्नी पति की इन आकांक्षाओं के प्रति सजग तो है और उनके प्रति सहानुभूति भी रखती है, पर उसका स्वभाव कुछ ऐसा है कि वह अपने घर की तरफ, अपने बाल-बच्चो की तरफ और गृहस्थ-जीवन की बहुतेरी दैनिक आवश्यकताओ की तरफ अधिक आकृष्ट है और अपने बच्चों के पालन-पोषण तथा संस्कार को उसने जीवन मे अधिक महत्त्व दे रखा है।

मैंने इस भाई से जो कहा, वही सबसे कहने की आवश्यकता है। वह यह है कि भरसक अपने सिद्धान्तों के अनुसार जीवन व्यतीत करते हुए भी हमे अपने घर वालों, अपने साथियों तथा समाज के अन्य लोगो के प्रति काफी उदारता और सहिष्णुता का व्यवहार करना चाहिए। जैसे हम अपने को अपने विश्वास के अनुकूल चलने को स्वतन्त्र मान लेते हैं और तदनुकूल आचरण का अधिकार भी चाहते है, वैसे ही दूसरों के विश्वास और अधिकार को भी हमे मानना चाहिए। 'मेरा ही मार्ग और धर्म ठीक है', इसको लेकर ही दुनिया नरक बन गई है। मेरा मार्ग मेरे लिए ठीक हो सकता है, और मैं दूसरों से भी उस पर चलने को कहूँगा पर मेरी सम्मति न स्वीकार करने वालो के साथ लड़ाई या जोर-ज़बरदस्ती नहीं करूँगा। बिना इसे माने एक क्षण दुनिया का काम नहीं चल सकता।

दूसरो के प्रति उदारता

दुनिया मे जो इतना दुःख और कष्ट, इतनी हाय-हाय है, उसके मूल में यदि हम जायॅ तो वहॉ यही बात मिलेगी कि आदमी खुद अपने को तो बड़ी सहानुभूति और उदारता से देखता है और दूसरों की जरा-जरा-सी बातों पर एक तूमार खड़ा कर देता है। यह दुनिया में रहने का बिल्कुल ग़लत तरीका है। हम अपनी ग़लती की लम्बी-चौड़ी सफ़ाई देते है; अपनी विवशता दिखलाकर दूसरों से सहानुभूति चाहते हैं, पर दूसरों की राई भर ग़लती को पहाड़ के रूप मे देखते हैं। मै

मानता हूँ कि इस दृष्टिकोण को लेकर कोई आदमी सुखी नहीं हो सकता।

फिर मैत्री, प्रेम और सामञ्जस्य के लिए कुछ यह अनिवार्य नहीं है कि जीवन के ब्योरे की बातों में पति-पत्नी, या और लोग, हर वक्त एक ही राय रखते हों। अनिवार्य इतना ही है कि अलग-अलग राय रखते हुए भी दोनों के दिलों में एक दूसरे के प्रति वफ़ादार रहने, एक-दूसरे को ईमानदारी और सच्चाई के साथ समझने की कोशिश हो। दोनों में एक-दूसरे के लिए दर्द और अपनेपन का भाव हो। छोटी-मोटी बातों पर इतना ध्यान न दिया जाय कि जिन्दगी के वास्तविक तत्वों के प्रति, उन चीज़ो के प्रति जिनपर जीवन के सुख की नींव है, उपेक्षा हो।

पूर्णमतैक्य अनिवार्य नही

मैंने इन मित्र से कहा और उसे दोहराता हूँ कि आपने जान बूझ-कर अपनी जिन्दगी में कड़ुआहट पैदा कर रक्खी है। यह बैठे-बिठाये दुःख खरीदना है और जिस जमीन में फूल उग सकते हैं उसमें कांटे बोना है। कोई भी जीवन एकाङ्गी दृष्टिकोण लेकर जब चलता है तो सिवा असहिष्णु और दुखी होने के और वह क्या हो सकता है? फिर विवाहित जीवन तो किसी तरह केवल एक विन्दु या क्षेत्र मे समर्पित होकर फूल-फल नही सकता। यह विविध दृष्टिकोणों और विविध स्वार्थो के सामञ्जस्य की साधना है, जिसमे सब न सिर्फ अपना बल्कि दूसरो का भी हित देखते हैं और यह अनुभव करने की कोशिश करते हैं कि दूसरों के हित से अपना हित अलग नहीं है—उसी के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए आपकी पत्नी यदि सदा आपके साथ सभा-सोसायटियों में नहीं जा सकतीं अथवा आपकी मित्र-मण्डलियों का साथ नहीं दे सकती तो इसमें दुखी होने लायक तो कोई बात नहीं है—तब तक जबतक आपके जीवन से उसकी सहानुभूति है; जबतक वह आपके प्रेम-सूत्र में बँधी हुई है और आप फूलें-फलें एवं सुखी हों इसकी चिन्ता रखती है,—इसके लिए सचाई के साथ कोशिश भी करती है। विवाह में

पति-पत्नी दोनों का व्यक्तित्व लोप नहीं हो जाता बल्कि दोनों की सहायता से दोनों का व्यक्तित्व विकसित होता और मानव-समाज से विस्तृत और सहानुभूति के सम्बन्धों में जुड़ता है। जहाँ आग्रह है, तहाँ स्वार्थ है। इसलिए पत्नी के झुकाव को लेकर इतना दुखी होने की जरूरत क्या है ?

चाहे समाज को हम स्थायी या पेशेवर वर्गों मे बाँटें या न बाँटें, पर सब काम सब लोग कर नहीं सकते। जीवन में विविधता निरर्थक नहीं है। प्रत्येक प्राणी का अपने सस्कार, परिस्थिति और प्रेरणा के अनुसार अलग-अलग प्रवृत्तियों की तरफ झुकाव होता है और हम सबको एक ही प्रवृत्ति को ग्रहण करने के लिए विवश नहीं कर सकते। ऐसा होने से व्यक्ति का विकास रुक जायगा, वह एक यंत्र मात्र रह जायगा, अपनी विवेचन और चुनाव की शक्ति खो देगा और समाज अव्यवस्थित तथा त्रस्त हो जायगा। आवश्यकता इतनी ही है कि हम विभिन्न प्रवृत्तियों को ग्रहण करके भी अपने को सकुचित न होने दे।

विविधता निरर्थक नही है

हमारे उपर्युक्त मित्र की पत्नी किसी प्रकार उनके जीवन के विकास या उन्नति में बाधक नहीं है। वह समाज की जिम्मेदारी का एक भारी बोझ उठाये हुए है। अपने पति से उसकी समाज-सेवा कुछ कम नहीं है—हाँ, वह इतनी वाचाल नहीं है और शायद सेवा एवं त्याग के गम्भीर नामों का उपयोग करने की कला भी उसे मालूम नहीं है। यदि वह पति के मार्ग पर पड़े कंकर और काँटों को चुन रही है तो पति के साथ-साथ क्या उसकी यात्रा जारी नहीं है। उसका काम उस श्रमिक या मज़दूर का काम है जिसने मकान की नींव में बड़ी ईमानदारी के साथ कंकरियां डाली हैं, सुर्खी पीटी है और नींव को इतना पुष्ट कर दिया है कि उस पर सुन्दर और विशाल मकान उठाये जा सकते है। अवश्य ही जो दर्शक इस भव्य भवन को देखने आयेगा वह उसमें किये रंग एव चित्र-

मार्ग के ककरों के चुनने का काम

कारी को देखकर आश्चर्य से दाँतों तले अँगुली दबा लेगा और उस शिल्पकार और चित्रकार की प्रशंसा करेगा। उस वक्त उसका ध्यान उस गरीब मजदूर की ओर न जायगा जिसकी मेहनत से कूटी-पीटी गई नींव पर वह विशाल भवन खड़ा है। पर इससे उस मजदूर के कार्य का महत्व कुछ घट नहीं जाता। दुनिया प्रदर्शन-प्रिय है, पर दुनिया के निर्माण और विकास के मूल में प्रदर्शनप्रियता नहीं, कर्त्तव्य और प्रेम की आराधना है।

किसी पति का अपनी पत्नी (अथवा कुटुम्ब के एक सदस्य का दूसरे) से अपने ही मार्ग पर चलने का आग्रह न न्यायोचित है और न सम्भव ही है। ऐसा करना विवाहित जीवन की जड़ में कुल्हाड़ी मारना है। विवाहित जीवन अनुभूतियों एवं सहानुभूतियों के क्षेत्र-विस्तार का क्रियात्मक अभ्यास है। इसका आदर्श ही समाप्त हो जाता है यदि हम एक हठ पकड़ कर बैठ जॉय और सब से आशा करें कि वह जिन्दगी की हर बात में हमारा ही अनुकरण और अनुसरण करे। जो पति ऐसा चाहता है वह पत्नी के मानों प्राण हरण कर लेता है।

श्रेष्ठता की स्वीकृति या बेचारगी!

मैं मानता हूँ, बहुतेरी स्त्रियाँ पुरुष के प्रभुत्व को मानकर सिर झुका देती है। पर यह पुरुष की श्रेष्ठता की स्वीकृति नहीं है; यह अपनी विवशता और बेचारगी की अनुभूति है। बहुत संभव है, तुम दबाओ और तुम्हारी पत्नी तुम्हारी आज्ञा पर 'डिटो' (ऐजन=ज्यों का त्यों मान लेना) कर दे—ओठ हिलादे; पर उसी क्षण उसकी आत्मा मुरझाने लगती है और प्राणों के उगते और खिलते हुए अंकुर सूखने लगते हैं। एक जीवित, तेजस्वी प्राणमय पत्नी की जगह हम शिथिल, अधमरे और विवेकशून्य प्राणी की जीवन मे प्रतिष्ठा करने लगते है। यह कैसा आश्चर्य है!

इस तरह की बाते बहुत कही जा सकती है और उदाहरण भी बढ़ाये जा सकते है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि समाज-जीवन की यात्रा मे, यह बात याद रखने की है कि जिस नींव पर मनुष्य

के सब प्रयत्न खड़े हैं, जिस सिद्धान्त और विश्वास पर समाज खड़ा है, वह समझौते, मेल-जोल और सामञ्जस्य का सिद्धान्त है। अविवाहित या विवाहित कोई आदमी इसे भूलकर एक क़दम नही चल सकता और चलता है तो वह अवाञ्छनीय परिणामों का शिकार होता है।

इसलिए जो युवक व्याह कर चुके हैं या जो व्याह करने जा रहे है और जो चाहते हैं कि यह विवाहित जीवन एक बोझ, एक दुःख, एक गतानुगति और काँटे-सी चुभनेवाली चीज़ बनकर न रह जाय, बल्कि फूल-सा खिल उठे और सुगन्ध की तरह जीवन के कण-कण में बस जाय, उनके लिए बहुत जरूरी है कि वे इस बात को अच्छी तरह समझ लें। स्थिति को गलत समझने के कारण हजारों गृहस्थियाँ उजड़ जाती हैं। मैंने कितने ही ऐसे घरो को मिटते देखा है जिनमें पति और पत्नी दोनों अच्छे, नेक, शरीफ और एक-दूसरे को प्रेम करनेवाले थे। मुश्किल यह है कि झगड़े जिन्दगी के उद्देश्य, लक्ष्य या बड़े सवालों पर उतने नहीं पैदा होते जितने छोटे-छोटे और देखने में गैरजरूरी मस्लों पर पैदा होते हैं। आदमी सोचता है—इन पर क्या ध्यान देना है। उधर जहर नीचे इकट्ठा होता जाता है, और हम चौकन्ने तब होते है जब नासूर पड़ जाता है। नासूर का कायदा है कि वह हमें अक्सर धोखा देता है। जब वह नीचे से सड़ रहा होता है तब ऊपर से हमे स्वस्थ दिखाई देता और जब हमें उसकी ओर से कोई भय नहीं होता तब वह एकाएक फूटकर बह निकलता है।

दाम्पत्य जीवन मे पीड़ा और दुःख का अनुभव अक्सर इसलिए नहीं होता कि पति-पत्नी एक-दूसरे को सुखी करने को उत्कण्ठित नहीं होते बल्कि इसलिए होता है कि हम एक खास रास्ते पर चलने का ही हठ पकड़ लेते है और प्रकृति और स्वभाव की भिन्नता को भूल जाते है।

मैं एक मित्र को जानता हूँ जो अपनी पत्नी के लिए प्राण तक देने की तैयारी का दावा करते हैं। उनके इस दावे में मुझे अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। पर अक्सर मैंने देखा है कि उस वक्त

जब 'क' कहना चाहिए, वह 'ख' कह जाते है; जब चुप रहना चाहिए तब एक व्यङ्ग मुँह से निकालने का लोभ समेट नहीं सकते। जब जरा हँसाने और गुदगुदाने की जरूरत है तब वह चेहरा बना लेते है। जब पत्नी उनके मुँह की तरफ़ प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखती है, जब वह उनसे कुछ बात-चीत करना, कुछ सुनना, दिल की दो बातें कहना, चाहती है तब उनका शास्त्र का अध्ययन करना और वैज्ञानिक विषयों पर चिन्ता करना जरूरी हो उठता है। इससे दिलों में प्रेम और वफ़ादारी होते हुए भी दोनों दिल सतह के अन्दर अलग-ही-अलग रह जाते हैं। दोनों मिलने के लिए तड़पते होते है पर मिल नहीं पाते। और एक बार यह अकड़ने का, यह झूठे मान का अन्दाज आया कि हम दुःख और विवशता की खाईं में गिर पड़ते है। हाथ-पाँव मारते है पर निकल नही पाते। इस लाचारी पर हममें खीझ और पश्चात्ताप का भाव पैदा होता है—हम रोते हैं, पर हमारे आँसू बिल्कुल व्यर्थ चले जाते हैं।

गलत तरीका

जैसा कि मै बहुत बार कह चुका हूँ, दाम्पत्य जीवन के सुख बड़े-बड़े सिद्धान्तों पर उतने निर्भर नही है जितने उन सिद्धान्तों का दैनिक जीवन मे हम प्रयोग किस प्रकार करते है, इस पर निर्भर हैं। हम प्रेम और उदारता की बाते बहुत करते है, निरभिमानता की सीख देने मे सबसे आगे होते है, पर जब जरूरत पड़ती है कि हम इनसे काम ले, न जाने हमारी दृढ़ता कहाँ लोप हो जाती है।

हम जीवन के आधारभूत सत्यों के प्रति अक्सर इतना कम जाग-रूक रहते है कि आश्चर्य होता है। अधिकाश व्यक्ति भूल जाते हैं कि गृहस्थ-जीवन अनेक जीवनों, अनुभूतियों, कल्पनाओं और विश्वासों का सामञ्जस्य है। यह औसत, यह समन्वय ही सुख का मार्ग है और उन्नति की सीढ़ी है। यदि तुम इसे जीवन की यात्रा मे चलते हुए सदा याद रख सको तो तुम्हारे पाँवो में काँटे न चुभेंगे और जो काँटे तलुवों-तले आयेंगे वे फूल बनकर तुम्हारे चरणों का वन्दन करेंगे।

: १५ :

सुख आत्मोत्सर्ग में है, अधिकार में नहीं !

आज कल की दुनिया में शायद ही कोई दूसरी बात इतने जोर से कही जाती हो जितनी अधिकारों की मॉग की बात कही और दुहराई

जाती है। राजनीति में, सामाजिक क्षेत्र मे, साहित्य

एक ही बात मे सर्वत्र अधिकारों की मॉग की प्रबल प्यास

हममे जग उठी है। बिना अधिकार के कोई सुखी न होगा। इस अधिकारवाद ने गृह मे भी प्रवेश किया है और स्त्री-पुरुष आज सहयोगी के रूप मे नहीं प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे अखाड़े में प्रविष्ट हुए हैं। औरतों की कोई पत्र पत्रिका उठा लीजिए; अन्य पत्र-पत्रिकाओं के स्त्रियोचित स्तम्भों को देख जाइए, किसी में कोई नई या मौलिक बात न मिलेगी। सब मे सिर्फ पुरुषों की बेवफ़ाई और स्त्रियों पर सदियो से उनके द्वारा होते चले आने वाले अन्याय-अत्याचार का ही रोना है। 'वे गुलाम नहीं रहेंगी, उन्हे घरों को तोड़ देना चाहिए; सदाचार के नियम उनको दासी बनाये रखने के लिए गढ़े गये है; चूल्हे और बच्चों के जंजाल से निकलकर आज नारी को राजमार्ग के कोलाहल मे शामिल होने की जरूरत है।' नारी-समितियों और सभाओं का भी मुख्य कार्यक्रम यही है कि पुरुषों के कथित अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाये।

मैं इस आन्दोलन की निन्दा नही करता। पर इतना अवश्य है कि राजमार्ग का यह कोलाहल आज घरों के शान्त वातावरण में भी फैल गया है और उसने विवाहित जीवन या गृहस्थ-जीवन की नींव को हिलाकर जर्जर कर दिया है। विवाह तो आज भी होते ही हैं, स्त्रियों

अपने अधिकार जोर

को घर की देख-भाल भी करनी पड़ती है और बेचारे पतियों को कोल्हू के बैल की तरह, समाज की आर्थिक चक्की को जारी रखते हुए, चलना भी पड़ रहा है। पर संयुक्त जीवन मे सुख का जो केन्द्र था, वह टूट गया

है। इन सब कठिनाइयों और आपदाओं के बीच जीवन का जो सोता बहता था, जिसमें दोनों के मैल धुल जाते थे और जिसमें स्नान करके शरीर और मन की थकावट दूर हो जाती थी, वह सूख गया है या उसे विषैला कर दिया है। अब उसमें नहाने जाकर और उसका पानी पीकर थकावट तो क्या दूर होगी, दिल फट जाते है और जीवन सुन्न एवं पंगु हो जाता है। दो दिलों को जोड़ने वाली चीज आज अपनी जगह से हट गई है। दिलों मे गाँठ पड़ती जाती है और एक क्षोभ है। सब है पर जैसे उसे शान्ति और सुख नहीं है। इस असफलता के दंश और पीड़ा के कारण उसकी कराह बढ़ती जाती है और विद्रोह एवं खीझ का स्वर ऊँचा उठता जाता है। उधर पुरुष इस परिस्थिति में घबड़ा उठा है। वह सोचता है—इस तरह दिन-रात की लड़ाई, खींचातानी और झिकझिक से तो यह स्वतंत्रता का स्वाद ही अच्छा है। वह अपने रास्ते, मै अपने रास्ते। वह अपना अधिकार ले, अपना सुख देखे, मै अपने अधिकार और सुख को सँभालूँ।

इस तरह संयम की बाँध टूट रही है और लूट और भोग की चाट लग रही है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध निरानन्द होता जा रहा है। खींचतान बढ़ती जा रही है। अब दोनों में परस्पर सौदा कर लेने की मनोवृत्ति जगी है। सौदा भी ईमानदारी के साथ नही होता है। कौन किसको कितना मूर्ख बना सकता है, इसी पर उसकी सफलता निर्भर करती है। दोनो दिलों में एक एक अलग दुनिया छिपाये हुए चलते है।

मै टीका नही कर रहा हूँ—केवल जो बात है, उसे बयान कर रहा हूँ। इससे निष्कर्ष अपने आप निकल आता है। अधिकार अच्छी चीज

प्रकृति का नियम

है पर जो आदमी यह सोचता हो कि अधिकार के साथ स्वच्छन्दता बढ़ती है, वह अपने को धोके में रख रहा है। अधिकार के साथ यदि दायित्व नही है, तदनुकूल शील और संयम नहीं है तो अधिकार सिर्फ कागजी है। इसके विरुद्ध यदि चारित्र्य है, शील है, आत्म-सामर्थ्य है, आत्मानुशीलन

और दायित्व की अनुभूति है तो अधिकार चाहे मुँह से स्वीकार न किये जायँ, चाहे कानूनों और किताबों मे न लिखे हों पर वे अपने-आप मिल जाते हैं। यह प्रकृति का कानून है जिसके आगे सब बातें लचर और हेच हैं।

मेरा मतलब इतना ही है कि अधिकार की माँग अच्छी है पर जिस रूप में यह सब चल रहा है उससे प्रश्न कुछ हल नहीं हुआ है; हल होता दीखता भी नहीं है। इससे सभ्यता की जटिलताएँ जरूर बढ़ गई हैं और मानव-जीवन स्त्री-पुरुष के सहयोग से सुखी हो, यह समस्या तो कतई हल नहीं हुई है—कुछ उलझ जरूर गई है।

यदि गृहस्थ जीवन का उद्देश्य एक दूसरे की सहायता और सहयोग से स्त्री-पुरुष का सर्वाङ्गीण उन्नति के पथ पर अग्रसर होना है, यदि इसका उद्देश्य सच्ची शान्ति और सुख प्राप्त करना है तो यह कहने मे कोई हिचकिचाहट नहीं हो सकती कि अधिकारवाद इसका एक महज झूठा और निस्सार प्रलोभन है। इसने गलत दृष्टिकोणों की सृष्टि अवश्य की है। इसने सुख के स्रोत से हमे दूर धकेल दिया है। जिन्दगी की मजिल मे इसने हमे कुछ खास आराम दिया हो या हमारे दिल में आशा की ज्योति जगा दी हो, सो नहीं। दिल का दिया इसने बुझा दिया है और बाहर के एक प्रतिबिम्ब को प्रकाश की चमक के रूप में हमारे सामने रख दिया है।

दिल का दिया बुझ रहा है।

दृष्टियों मे जो विकार आज हम देखते है और विचार करते हुए जो आत्म-वचना हमे कहीं से कही ले जा पटकती है उसका एक मुख्य कारण यह है कि हम सुख की प्रकृति और उसके सहज स्रोत को भूल गये है। हम समझते है, सुख का मूल बाहरी चीजो एवं सुविधाओं के बाहुल्य में है। आकाक्षाओं का एक गाढ़ा और कभी खत्म न होनेवाला धुआँ हमारे दिमाग मे शुरू से भरने लगता है—यह हमारी दृष्टि पर छा जाता है।

आकांक्षाओं का धुआँ

उसके बीच हरएक चीज़ एक अप्राकृतिक रूप और रंग में दिखाई देती है।

अधिकार में सदा अपने भौतिक सुख-भोग में मनुष्य केन्द्रित होता है। वह सुलभ परिस्थिति चाहता है, धन चाहता है, विश्राम चाहता है। हर तरह की सुविधाएँ चाहता है। इसमें जटिलताएँ आती है क्योंकि इन सब में बहुत ही असंस्कृत स्वार्थ की प्रधानता होती है। संघर्ष होता है क्योंकि एक की सुविधा दूसरे की असुविधा बन जाती है। उत्पीड़न और दलन होता है क्योंकि अधिकारों की प्यास जब लगती है तब कहाँ जाकर खत्म होगी, कोई नहीं कह सकता। 'एक प्याला और', फिर और—और इस तरह उसका सिलसिला चल निकलता है।

स्वभावतः इसमें सामञ्जस्य की गुञ्जाइश नहीं है। इसमें होड़ है; प्रतिद्वंद्विता है। इसलिए इसमें अशान्ति है। और अशान्ति है, इसलिए सुख तो नही ही है। सुख बिना मानसिक शान्ति के सम्भव नहीं है। वस्तुतः सुख आत्म-निमज्जन और आत्मोत्सर्ग मे है, अधिकार मे नही है। जहाँ प्रेम है, वहाँ अधिकार का कोई प्रश्न नहीं है; प्रेम अधिकार को लेकर नहीं जीता; वह अपने को देकर, आत्मार्पण के द्वारा, जीता है। हृदय का आनन्द इसी आत्म-दान में है। सुख भी इसी आत्म-दान में है। इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि जहाँ अधिकारो का झगड़ा है, जहाँ केवल अपने सुख और सुविधा का ख्याल प्रधान है तहाँ प्रेम नहीं है; तहाँ लेना-लेना है, प्यास है; देना नहीं है; तृप्ति नहीं है, आह्लाद नहीं है।

आनन्द आत्मदान में है

आजकल की शहरी ज़िन्दगी को देखता हूँ और उसमें स्त्री-पुरुष की ओर आँख उठाता हूँ तो मुझे कहना चाहिए कि सिवाय अवाक् रह जाने के कुछ सूझता नहीं है। नारी अपनी जार्जेट, एयरिंग, अँगूठी, हार, ऊँची एड़ी के जूते, साड़ी के नीचे के लहँगे जिसकी वेलें साड़ी पर फटी पड़ती हुई, पोमेड, लवेंडर और लिपस्टिक के लिए बेचैन है—उनमे भूली हुई

शहरी ज़िन्दगी में नारी

है। अगर नहीं है, अभाव है तो इनका स्वप्न उसको बेचैन किये हुए है; अगर है तो वह किंचित् गर्विता-सी उसी के नशे में मग्न है; पति उसके लिए 'सेकेंड थाट' है—गौण हो गया है। याद आती है; चेतना है पर इसलिए नहीं कि यह पति है; हमारे निजत्व का ही अंग है—हमारी

दिल का दिया बुझ गया है और आकांक्षाओ का धुआँ दिमाग में भर रहा है। (देखिए पृष्ठ १८७)

चेतना का केन्द्र है बल्कि इसलिए कि वह फर्माइशें पूरी करनेवाला, सुविधाएँ जुटानेवाला और उन चीजों को एकत्र करनेवाला है जिनको लेकर उसका जीवन या जीवन का खेल चल रहा है। पति या तो अपने कठिन 'रोल' में नारी पर जला-भुना, पग-पग पर उसे कोसता हुआ अथवा फिर उसकी विषैली और शरारती नजरों का मारा हुआ, उसके यौवन-मधु पर आसक्त, स्त्रैण, उसकी हाँ मे हाँ मिलाने वाला बन गया है। कुछ ऐसा, मानो दुनिया मे उसका एक-मात्र कर्त्तव्य शरीर-रंजन

और पति ?

और स्त्री का शृंगार है और इसके लिए उचित-अनुचित कोई काम करके उसे पत्नी की हर एक फरमाइश पूरी करनी चाहिए। लोलुपता से भरा हुआ यह पति अपने जीवन, अपने कर्त्तव्य के प्रति मोहान्ध हो अपने को विषय-भोग की आग में होम रहा है और पत्नी को भी तिल-तिल विनाश की

ओर धकेल रहा है। यह आदमी, जो खुले आम पत्नी के रूप-सौरभ के प्रति उन्मत्तता प्रकट करता है; जो बच्चों के सामने भी अपनी पत्नी को उनकी माँ नहीं केवल अपनी प्रेयसी समझकर अनर्गल व्यवहार करता है और फिर भी बच्चों को हरिश्चन्द्र और बुद्ध बनने का उपदेश करते नहीं थकता, हमारी सभ्यता के लिए एक जबर्दस्त खतरा है।

इस प्रकार के जीवन में, जो स्वार्थ की धुरी पर नाच रहा है, शान्ति कैसे मिल सकती है; सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? इसमें हिंसा है क्योंकि इसमें भोग है, लूट है, होड़ और शोषण है। तब अधिकार के लिए अगर खींचातानी होती है तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

मैं अपने को स्त्रियों का एक श्रद्धालु भक्त मानता हूँ—इसलिए मैं उनका हिमायती हूँ, यह कहते समय मुझे ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं होती है। पर दवा वह नहीं है जो आँख की कड़ुआहट दूर करने की जगह आँख ही फोड़ दे। स्त्रियों को, और पुरुषों को

दवा यह नहीं है

भी, सब उपयुक्त अधिकार दिये जायँ। और क्या एक बिल्कुल तुच्छ झगड़ा उठा हुआ है कि दोनों बराबर हैं या नहीं? गृहस्थ-जीवन में दोनों का महत्व एक सा है और किसने अस्वीकार किया है कि प्रजनन और उत्तम सन्तति के दान एवं निर्माण-द्वारा समाज के विकास की क्रिया में नारी का महत्व पुरुष से अधिक है। हमने अनादिकाल से माता की पूजा की है और उसे सदैव पिता के पहले स्थान दिया है। तब यह झूठा और असयत विवाद कैसा है?

कहना हमारा यह नहीं है कि स्त्रियों को उनके माँगे हुए अधिकार न दिये जायँ। उनकी माँग से भी अधिक उनका है, उनको मिलना और दिया जाना चाहिए। हमारा प्रश्न सिर्फ इतना है कि क्या इससे गृहस्थ-जीवन के सुख और सफलता की समस्या हल हो जायगी?

मैं कहता हूँ कि यह संघर्ष फिजूल पैदा किया जा रहा है। किसी भी क्षेत्र में सुख का स्रोत अधिकार नहीं हुआ करते; सेवा और वह लगन—वह तल्लीनता हुआ करती है जिसमें मनुष्य अपना, अपनी आत्मा का,

अपनी महत्ता और अपने देवत्व का प्रतिबिम्ब देखता है । इस तल्लीनता और आत्म-निमग्नता के लिए आमोत्सर्ग की आवश्यकता है ।

'नीरो' बहिन का उदाहरण

एक बहिन हैं । सुविधा के ख्याल से मै इन्हे श्रीमती 'क' कह लेता हूँ । वैसे प्रेम से हम इन्हे 'नीरो' भी कहते रहे है । खैर, नीरो एक बहुत अच्छे और प्रतिष्ठित वश की लड़की थी । भगवान ने उसके माता-पिता को धन, बुद्धि, स्वास्थ्य और चरित्र चारों चीजे दी थीं । लड़की उस स्वस्थ वातावरण में पली और सौभाग्य से, अच्छे संस्कारो को लेकर पल्लवित हुई, बढ़ी । रूप, स्वास्थ्य और गुण तीनों का उसमे अपूर्व समन्वय था । पिता ने उसे, पहले संस्कृत और बाद मे अंग्रेजी की अच्छी शिक्षा दी । 'नीरो' जिनकी लड़की थी, उनके घर परदा नहीं होता था । सामाजिक रूढ़ियाँ और कुरीतियाँ भी न थीं । पिता, अपनी मर्यादा मे, समाज-सुधारक भी थे । इसलिए उन्होने लड़की को शिक्षा भी अच्छी दी थी । इस प्रतिभा-शालिनी लड़की को १५ वर्ष की अवस्था में उपनिषद् तथा हेकेल और नीत्शे के तत्त्वज्ञान पर धारा-प्रवाह बात करते देख मै चकित हो गया था । मिथ्या दभ या अभिमान का भाव भी उसमे न था । यह भी नहीं कि आधुनिक विज्ञान के प्रति उसका विरोध का भाव रहा हो । एक प्रकार से वह काफी आधुनिक भी थी ।

खब्त पतिदेव

इस लड़की की शादी एक ऐसे युवक से हुई जो चरित्रवान था और जिसने अच्छी शिक्षा पाई थी । इसके घरवाले लड़की के पिता की तरह धनवान तो न थे पर उनकी हालत कुछ बुरी भी न थी । खाने-पीने की चिन्ता से मुक्त थे । कई मकान थे जिनसे अच्छा किराया आता था । कुछ पूँजी एक अच्छे बैक में जमा थी । और भी कुछ इधर-उधर लेन-देन था, जिसके बारे मे निश्चित रूप से मै कुछ नहीं कह सकता । यह लड़का बड़ा सुशील था पर इसमे एक विचित्र सनक, पता नहीं कैसे, पैदा हो गई और बढती ही गई । वह यह कि स्त्री पुरुष की आश्रित है—उस

पर पुरुष का अधिकार है। उसकी कोई पृथक् सत्ता नहीं, न उसे अधिकार एवं बराबरी का दावा करने का हक है। वह गृह के लिए, पुरुष की सेवा करने एवं उसकी सन्तति की रक्षा करने के लिए बनाई ही गई है। बातचीत, तौर-तरीके में यह अत्यन्त उदार लड़का था। यह भी नहीं कि स्त्रियों के प्रति उसका व्यवहार बहुत रुक्ष हो पर स्त्रियों को अधिकार की बातें करते देख वह जल उठता था। जिन्हें सभ्य समाज में 'सोसायटी वीमेन' (सामाजिक नारियाँ) कहा जाता है उन्हें वह अत्यन्त घृणा करता था। बनी-ठनी स्त्रियों को वह यों देखता था जैसे प्रदर्शनी में सजावट था तस्वीरों या मनोरजन की चीज़ों की ओर दर्शक विस्मय से देखता है।

मुझे ठीक पता नहीं कि दोनों की शादी कैसे हो गई। नीरो के पिता तो लड़के को जानते थे; अपनी लड़की के प्रति उनका असीम स्नेह था। शायद उन्होंने समझा हो, समय के प्रवाह मे, यह सनक खत्म हो जायगी या इस बात को कुछ ज्यादा गंभीरता से न लिया हो। बहरहाल शादी हो गई। मुझे जब मालूम हुआ तो मैंने नीरो के पिता को बधाई न दी बल्कि नीरो की किस्मत पर मुझे भय और दुःख हुआ। कैसी लड़की कहाँ चली गई। लड़का वैसे अच्छा था पर उसकी सनक नीरो के साथ क्या करेगी, इसका बड़ा भय था।

इसके बाद संयोग ऐसा हुआ कि राजनीतिक आन्दोलन में, या फिर जीविका के चक्र मे पड़कर, मै दूर छिटक गया। जीवन के व्यस्त क्रम में नीरो, कार्यतः, भूल ही गई।

चन्द दिनों पहले की बात है, मैं लखनऊ की एक सड़क पर जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाता किसी काम से जा रहा था। रास्ते में एकाएक
मुझे नीरो के पति देवता मिल गये। वह रहने वाले
आकस्मिक मिलन दूसरे शहर के थे। मैने जिज्ञासा से उनकी ओर
देखा। वह मुस्कराकर मुझसे गले मिले और मुझे
ज़बर्दस्ती घर लिवा ले गये। मालूम हुआ कि पिछले भूकम्प मे उनकी

अधिकाश सम्पत्ति स्वाहा हो गई और वह बैंक फेल हो गया जिसमें उनके घर का अधिकाश रुपया जमा था। पिता तथा सब लोग उसी मे खत्म हो गये और अब वह लखनऊ के एक कालेज मे अध्यापक है।

नीरो काफी प्रफुल्ल और सुखी मालूम पड़ी और उसके पति तो मानो उस पर जान देते दिखाई पड़े। प्रोफेसर साहब के विचार स्त्रियो की तरफ से बिल्कुल बदल गये थे और उन्होंने नीरो को जो अधिकार एवं स्वतन्त्रता दे रखी थी उससे मुझे आश्चर्य हुआ।

यह सब परिवर्तन कैसे हो गया? बात यह थी कि जब नीरो के पति अनाथ, बेघर-बार हो रहे थे तब उस लड़की ने, जिसने कभी शारीरिक परिश्रम नहीं किया था, अपने हाथ से घर का सब काम-काज सॅभाल लिया। वह झाड़ू देने, बर्तन मॉजने, कपड़े धोने के अलावा

परिवर्तन कैसे हुआ

आघात के कारण बीमार पड़ गये पति की पूरी सेवा करती। उसने दिन-रात न देखा, अपना शरीर न देखा, अपने को भूल गई; अपनी सुविधाओं को भूल गई। तन-मन से उसने पति की सेवा की। उसके पिता ने उसे बहुत समझाया, रुपये-पैसे से मदद करनी चाही पर नीरो ने पिता के चरणों में प्रणाम कर क्षमा मॉग ली। पिता दुखी भी हुए; मॉ तो अक्सर रोती पर नीरो का ध्यान इन सब बातों की ओर न था। वह सेवा में अपने को भूल गई थी। वह कही ऊँचे स्तर पर थी। उसने कसीदे का काम करके और प्रभाकर परीक्षा मे बैठने वाली दो लड़कियो को पढ़ाकर पति की चिकित्सा की।

इसका परिणाम यह हुआ कि पति देवता गऊ बन गये। जहॉ वह

भेड़िया गाय बन गया!

स्त्री पर शासन करना और रोब जमाना पति का सनातन धर्म मानते थे, तहॉ अब स्त्रियों की शक्ति और श्रेष्ठता की प्रशंसा करते थकते नहीं। उन्होंने अपनी स्त्री को पूरी स्वतन्त्रता दे दी है। वह कहॉ जाती है, क्या करती है, इसमे कुछ बाधा नहीं देते। जो कमाते हैं, चुपचाप पत्नी के हाथ पर रख देते

है और फिर कभी उसकी व्यवस्था में टाँग नहीं अड़ाते। पूछने पर भी कहते है, तुम जो करोगी, मुझसे अच्छा करोगी। उपेक्षा की जगह उपासना ने ले ली है और नारी की प्रतारणा की जगह अब उसका अधिकार स्थापित हो गया है। दोनों अपना सुख नहीं देखते, एक दूसरे का सुख देखते है। एक का सुख दूसरे के सुख को लेकर ही है। यही प्रेम है।

जिसने कभी प्रेम नहीं किया है, वह कभी सुख और आनन्द प्राप्त कर सकेगा, इसकी आशा भी नहीं है। जिसके हृदय में आनन्द है, उसके हृदय में प्रेम अवश्य है। बिना प्रेम के आनन्द मिल नहीं सकता। आनन्द की गंगा के लिए प्रेम गङ्गोत्री है। और प्रेम अधिकार की प्यास लेकर कभी पनप नहीं सकता। प्रेम में लेना नहीं है; देना ही देना है। यह अपने को देकर अपने को पाता है—यह आत्मार्पण का, आत्मोत्सर्ग का मार्ग है जिसके बिना आनन्द का अनुभव संभव नहीं है।

जो उदाहरण यहाँ दिया गया है वह पुरुष के लिए उससे भी अधिक आचरणीय है जितना स्त्री के लिए है। जो पुरुष नारी पर केवल अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहता है; जो केवल उस पर अधिकार चाहता है, जो उसका शासक बनकर रहने के लिए लालायित है, वह अपने पाँव मे कुल्हाड़ी मारता है। वह नारी पर नियंत्रण और अधिकार कर ले तो भी उसे वह आनन्द कभी प्राप्त न होगा जिससे हृदय तृप्त होता है।

जो बात मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि शान्ति चाहते हो तो अपनी अहंता को भूलकर चलो; प्रेम करते हो तो स्वार्थ को भूल जाओ और सुख चाहते हो तो आत्म-दान करो। बिना हृदय दिये, बिना आत्मार्पण एवं आत्मोत्सर्ग किये आनन्द मिलता नहीं। तुम्हारा गृह-जीवन सुखी होगा यदि तुम अपनी सुविधाओं पर दूसरों के सुख एवं सुविधाओं को तरजीह दोगे। तुम सुखी होगे, जब तुम भूल जाओगे कि पत्नी तुम्हारे शरीर-रंजन और भोग के लिए नही हैं; वरन् एक-दूसरे में अपने को खोकर एक श्रेष्ठ जीवन के विकास के लिए ही तुम विवाह-सूत्र मे बँधे हो।

———

मरुस्थल का झरना !

सुखी गृहस्थ-जीवन मरुस्थल के झरने के समान है। जलती हुई रेत में चलनेवाले यात्री के पैर यहाँ आकर शीतल हो जाते हैं। दिलों में ठण्डक पहुँचती है, आँखों की ज्योति बढ जाती है और जिह्वा तृप्त हो जाती है। जीवन का उत्ताप धुल जाता है और उसमें गति, स्फूर्ति तथा तेजस्विता भर जाती है।

निश्चय ही आज के सामाजिक वातावरण मे ऐसा गृहस्थ-जीवन अपवाद मात्र है। मरुस्थल में झरने विरल ही होते है और दैव संयोग से ही मिलते हैं। और आज तो हमारी सस्कृति ऐसी विकृत हो रही है, हमारा भाग्य इतना निस्तेज हो गया है कि जो झरने हैं वे भी सूखते जाते है। स्नेह का जल देखने को भी मुश्किल से मिलता है, उसकी वर्षा तो क्या होगी ?

सच पूछें तो आज का औसत गृहस्थ-जीवन नरक हो गया है। बडी-बडी हवेलियाँ अपने अन्दर जीवित शवों के झुंड लिये हुए सो रही हैं। हँसी का फौआरा सूखा पडा है; आनन्द

नरक-सा जीवन

और सुख कल्पना की चीजें है, और जीवन निर्जीव और शिथिल है और सिर्फ परम्परा का बोझ ढो रहा है। कलह है; खींचातानी है, अतृप्ति है। एक दूसरे को मूर्ख बनाने का प्रयत्न भी है। प्रत्येक अपने भाग्य को कोसता है। जीवन के अन्दर ऐसी कोई चीज नहीं रह गई है कि दिलों को जोडे, फैलाये, ऊँचा उठाये और उसे संस्कार दे, और ऊपर के बोझ को फूल-सा उठा ले।

परन्तु इस स्थिति को पसन्द कोई नहीं करता। सब इससे निकलना चाहते हैं। और सबसे अधिक आश्चर्य की बात, जो मैं तुमसे कहना चाहता हूँ, यह है कि इस स्थिति से निकलना बिल्कुल तुम्हारे वश की

बात है और इस निरानन्द मरुस्थल में बेशक तुम आनन्द और तृप्ति का एक झरना बहा सकते हो। हाँ, इसकी कुछ शर्तें अवश्य है।

साहचर्य और उसका रहस्य

पहली बात तो यह कि अगर तुमने विवाह कर लिया है तो विश्वास और सहानुभूति के साथ जीवन का आरंभ करो। साहचर्य सुखी विवाहित जीवन की पहली शर्त है। इसका मतलब यह

निजत्व की आकांक्षा है कि पति और पत्नी दोनों को एक दूसरे का सच्चा साथी बनना चाहिए। जहाँ पत्नी पति की सहचरी है तहाँ पति पत्नी का सहचर है। सच्चे साहचर्य को पाकर पत्नी का जीवन फूल की तरह खिल उठता है और नारी किसी चीज़ की उतनी भूकी नही होती जितनी इस चीज़ की कि उसका भी कोई 'अपना' हो। जीवन के कोलाहल में अनेक वाणियाँ सुनाई देती है। यह मिश्रित वाणियों का कोलाहल मनुष्य को घबड़ा देता है। नारी इसके बीच एक विशिष्ट, एक इन सब से ऊपर उठकर उसे अलग पुकारनेवाली आवाज़ सुनना चाहती है। वह इस भीड़ मे चलती हुई भी विशिष्टता चाहती है; अपनी एक स्वतंत्र मर्यादा चाहती है। भीड़ को वह आत्मसमर्पण नहीं कर सकती। इसलिए स्वभावतः उसका हृदय एक विशिष्ट व्यक्ति की माँग करता है जिसे वह आत्मार्पण कर सके, जिसे वह सम्पूर्ण शक्ति से अपना सके; जिसे वह पूरे बल से अपना कह कर पुकार सके।

भीड़ से अलग होकर नारी आज तुम्हारे निकट आई है। उसका मन अनेक आकाक्षाओं से भरा है। उसमें उमंगे हैं; हौसले हैं। अधखिली कली के समान उसका मकरन्द उसके चारों ओर छा रहा है।

रिक्तता दूर करने की प्यास

सुगन्ध से उसका मानस पूर्ण है। यह सुगन्ध उठना और फैलना चाहती है। यह तृप्त करना और तृप्त होना चाहती है। यह दुनिया से अलग होकर भी तुम्हारे आस-पास अपनी एक अलग दुनिया बनाने के लिए आई हुई नारी चाहती है कि वह तुमको कृतार्थ करे और तुम्हारे द्वारा स्वय भी कृतार्थ

हो। वह तुम्हारे जीवन को भर देना चाहती है और अपना सब कुछ देकर स्वय अपनी रिक्तता को दूर कर देना चाहती है।

यदि तुम मरुस्थल मे झरना बहाना चाहते हो; यदि तुम एक तृप्त, शान्तिपूर्ण गृहस्थ-जीवन की नींव डालना चाहते हो तो तुम्हे सबसे पहले नारी के साहचर्य की शर्त पूरी करना चाहिए। दुनिया मे केवल तुमको लेकर, तुम्हारे साथ चलने का उसका जो भाव है उस पर ही तुम्हारा सुख का महल खड़ा होगा। उसे अनुभव न होने दो कि उसका 'अपना' कोई नहीं है। दुनिया को त्यागने की जो रिक्तता उसके मानस मे है उसे तुम चारों ओर से छा लो। उसका सारा जीवन तुमसे पूर्ण हो उठे। पर इस साहचर्य का अर्थ क्या है?

इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम रात-दिन अपनी पत्नी के साथ परछाईं की तरह लगे रहो; न इसका यह अर्थ है कि तुम उसे वैभव से पूर्ण कर दो। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि तुम विदूषक नही, पति उसकी प्रत्येक आकांक्षा और प्रत्येक बात पर सिर झुका दो। ऐसा पति, जिसके जीवन का मेरुदण्ड टूट गया है और जो केवल पत्नी का गुलाम बन गया है, नारी को कुछ विशेष गौरव नहीं प्रदान करता। सच तो यह है कि वह पत्नी को विशेष आकर्षित भी नहीं कर सकता। वह जीवन का एक विदूषक, एक खिदमतगार मात्र होकर रह जाता है। नारी उसे पाकर गौरव का अनुभव नहीं कर सकती। न ऐसे पति से उसके साहचर्य की भूख मिट सकती है।

नारी चाहती है कि उसका पति उसका मित्र हो। वह चाहती है कि उसके और तुम्हारे हृदय के बीच कोई परदा, कोई दीवार न हो।

नारी क्या चाहती है?

वह चाहती है, तुम उसके गुरु बनो। उसके जीवन की कमियों को, दोषों और दुर्बलताओं को, पूरी सहानुभूति से तुम देखो और धीरे-धीरे उन्हें दूर करो। जीवन के मार्ग पर वह तुम्हारा पथप्रदर्शन चाहती है। वह चाहती है कि तुम उसके रक्षक बनो। जब कठिनाइयाँ आवे, विपत्ति के बादल

घिर रहे हों; जब उस पर आक्रमण होने की संभावना हो, तुम उसे अपनी भुजाओं की छाया में रखो, उसे बचा लो। वह चाहती है कि तुम स्त्रैण न बनकर सच्चे पुरुष बनो। प्रेम से उसके हृदय पर शासन करो।

मतलब तुम्हारी पत्नी तुम्हें अपना सखा, रक्षक, स्वामी, गुरु और भर्त्ता के रूप में चाहती है। जब तक इन बातों पर तुम ध्यान न रखोगे, पूर्ण साहचर्य का अनुभव करना उसके लिए संभव नहीं है। और जब-तक वह पूर्ण साहचर्य का अनुभव न करेगी, उसका अन्तर खिल नहीं सकता और तब तक वह अन्दर ही अन्दर कुम्हलाती जायगी।

इस घटना से कुछ सीखो!

मैंने देखा है कि नारी की इस भूख को न समझ सकने के कारण कितने ही व्यक्ति अपने गृहस्थ जीवन मे बुरी तरह असफल होते है। नारी के लिए पतित्व सर्वाङ्गीण साहचर्य का प्रश्न है। कुछ ही दिन पूर्व मेरे पास मध्यप्रान्त के एक व्यक्ति का पत्र आया। यह साधारणतः एक अच्छे व्यापारी हैं। इनके पास मिट्टी के तेल तथा पेट्रोल की एजेन्सी है। खाते-पीते गृहस्थ हैं। औसत जीवन-मर्यादा और औसत मनोवृत्ति तथा मनःस्थिति के आदमी है। स्वास्थ्य अच्छा है। व्यवहार और शिष्टाचार का ज्ञान रखते है। स्वभाव के बुरे नही। इनका विवाह हुए भी कई वर्ष हो गये। इन्होंने अपना दुखड़ा लिख भेजा था। इनका कहना यह था कि मैंनें पत्नी के सुख के लिए सब संभव उपाय कर देखे। जब वह व्याह के वाद घर आई तब से मैं उसके लिए खाने-पीने, कपड़े-लत्ते, रहन-सहन की हर तरह की सुविधाएं जुटाता रहा। कुछ दिन तक तो यह समझा कि अपने मायके से बिछुड़ने का दुःख होगा परन्तु महीने पर महीने बीतते गये। और उसकी उदासीनता बनी रही। यह सोचकर कि शायद सम्मिलित कुटुम्ब में, सास इत्यादि के कठोर नियंत्रण से, उसका मन न लगता हो, अलग मकान लेकर भी रखा। पर पता नही, उसका कैसा स्वभाव है। मुझे लोगों ने दूसरा व्याह करने पर काफी ज़ोर दिया; अब भी घर

एक उदाहरण

के लोग बराबर यही कहते है कि तुम इसके फेर में पड़कर क्यों अपना जीवन नष्ट कर रहे हो पर मैं सोचता हूँ कि शायद आगे चलकर उसका स्वभाव बदल जाये। फिर ऐसा करना उस पर अन्याय होगा, इन बातों को विस्तारपूर्वक उन्होंने लिखा था और मुझसे सम्मनि माँगी थी कि क्या करना चाहिए।

मानव-चरित ऐसा गहन है कि हर हालत मे उसके सम्बन्ध मे कुछ निष्कर्ष निकाल लेना सरल नहीं है। जीवन में अनेक प्रवृत्तियाँ, अनेक जटिलताएँ और अनेक गुत्थियाँ होती हैं। मन की प्रकृति को समझना कोई खेल नही है। प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति अपने संस्कार, वातावरण, परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग होती है। इसलिए हर एक के ऊपर सामान्य नियमों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। यह हो सकता है कि कोई स्त्री बिल्कुल जड़ हो, या उसके दिमाग मे कोई दोष हो अथवा पति से उसका स्वभाव मिलता ही न हो। ऐसे मामलों मे सामान्य नियम बहुत कम काम देते हैं। इस मामले मे भी मुझे कुछ ऐसी ही आशंका हुई। मैने स्त्री के पक्ष का भी अध्ययन किया, उससे पता लगाया गया कि आखिर बात क्या है। मालूम हुआ कि पति देवता कुछ तो सनकी हैं। प्रायः घर से निकल जाने, संन्यासी हो जाने की धमकियाँ देते हैं। वैसे भी दिमाग मे कुछ फितूर है। कुछ और भी गोपनीय बातें मालूम हुईं जिनको यहाँ लिखना उचित नहीं है, आवश्यकता भी नहीं है। मेरे प्रसंग के लिए इतना ही काफी है कि स्त्री को अपने पति से साहचर्य की जो भूख थी वह मिटती न थी। पति-देवता सोचते थे कि खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने की सब सुविधाएँ हैं तब यह दुखी क्यों है? पर स्त्री इसके लिए पति के निकट नहीं आती। वह अपना सर्वस्व लिये, किसी के हाथ मे अपने को सौंपने की आकाक्षा के साथ, आती है। वह आत्म-समर्पण करना चाहती है। और जब नहीं कर पाती तो उसका हृदय खीझ से भर जाता है और एक व्यापक उदासीनता जीवन पर छा जाती है।

याद रखने की बात है कि बिना आकांक्षा और बदले के पति के निकट आत्मार्पण करनेवाली प्रातःस्मरणीय सतियाँ आज की दुनिया में अपवाद मात्र रह गई है। उनका दर्शन आज के सामाजिक जीवन में दिन-दिन दुर्लभ होता जाता है। अब नारी जीवन के एकान्त में केवल अन्तःसम्बन्ध और मानसिक सौख्य से तृप्त होकर चलने को तैयार नहीं है। आज उसे मानवी के रूप में ही ग्रहण करना है।

और यह मानवी सबसे पहले एक जीवन-सखा चाहती है। ऐसा साथी जो उसकी पहुंच से दूर न हो; जो उसके मानसिक क्षितिज को प्रकाशित और रंगीन करे; जो उसके प्राणों को स्वप्नों और आकांक्षाओं से भर दे; जिसे पाकर वह अनुभव करे कि मुझे 'अपना आदमी' मिल गया है; जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका सच्चा सहचर सिद्ध हो और जब वह जीवन के बीहड़ और अनजाने स्थान में खड़ी हो और तब भी जिसके साथ रहकर उसे इकलेपन का अनुभव न हो।

स्नेह का केन्द्रीकरण

प्रेम विश्व की प्राणशक्ति है

स्नेह का केन्द्रीकरण गृहस्थ-जीवन की सफलता की दूसरी शर्त है। इसका अर्थ यह है कि तुम्हे अपनी पत्नी को अपने स्नेह का केन्द्र बना लेना चाहिए। उसे अनुभव हो कि तुम सम्पूर्णतः उसके हो; किसी और नारी का तुम्हारे लिए, रमणी रूप में, कोई आकर्षण नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम दुनिया मे और किसी को प्यार नहीं कर सकते। प्यार तो तुम हर एक को कर सकते हो और हर एक को करना चाहिए। यह जो जीवन है, प्रेम को लेकर ही उसका अस्तित्व है। सारी दुनिया प्रेम की धुरी पर ही घूम रही है। समाज का विकास इसके बिना संभव नहीं है। इसलिए तुम अपनी स्त्री में ही संकुचित होकर नहीं रह सकते। उसको लेकर तुम्हें दुनिया बनानी है और दुनिया के साथ चलना भी है। मेरा मतलब यह हर्गिज़ नहीं कि पत्नी तक ही तुम्हारी आशाएँ—आकांक्षाएँ समाप्त हो जाँय। मेरा अर्थ इतना ही है कि जीवन के प्रत्येक

क्षेत्र में तुम उसके प्रेम को लेकर चलो। प्रेम दुधारी तलवार की तरह है। विकृत और सकुचित होकर यह ज़हर का काम करता है, जीवन की समस्त सात्त्विक स्फूर्तियो का गला घोट देता है। परिष्कृत, सुसस्कृत और उदार भावों से युक्त प्रेम अमृत है, जीवन की शक्तियो को प्रकाशित और विकसित करता है तथा दिव्य भावों एवं संस्कारों से मन को भर देता है। कौटुम्बिक जीवन का सफल निर्वाह तलवार की धार पर चलने के समान है। ज़रा सी गलती जीवन का नाश कर देती है; सतर्कता कॉटों को फूल बना देती है। आज हमारा सामाजिक जीवन इतना दूषित और शिथिल हो गया है कि प्रेम का व्यावहारिक अर्थ केवल वासनाओं की पूर्ति रह गया है। जब मै स्नेह के केन्द्रीकरण की बात कह रहा हूँ तब मेरा कदापि यह भाव नहीं है कि प्रेम के इस बाजारू अर्थ में तुम अपनी पत्नी मे केन्द्रित हो। अधिकांश गृहस्थ ऐसा ही करते हैं। जवानी के दिन राग-रंग, विषय-भोग मे बिता दिये जाते हैं। चार दिनों की चुहल और छेड़खानियॉ जवानी को गुदगुदाती हैं; जीवन मे एक रस का अनुभव होता है। आदमी उसमें बेहोश हो सामने आती हुई आफतों की ओर से ऑंखे मूँद लेता है। नशे के क्षणिक आनन्द से अग-अंग उमॅग रहे होते हैं। पर जवानी ढली और इसकी भयकर प्रतिक्रिया होती है। हँसी की कलियाँ अश्रुबिन्दुओं से पूर्ण हो जाती है और एक हाय, अतृप्ति तथा खीझ से मन भर जाता है।

जवानी का क्षणिक नशा

अवश्य ही जीवन मे वासना, विषयेच्छा, सर्वथा निरर्थक नही है। जगत् मे अपने-अपने स्थान पर विषों का भी प्रयोजन है। ये विष कई बार जीवन के कवच का काम कर जाते हैं। वासनाओं की आग में तपकर ही मनुष्य उठता है। पर जगत् में जितनी भी वस्तुऍ है उनका एक सीमा तक ही प्रयोजन है। वह जवानी भी निरर्थक है जिसमे बिल्कुल नशा न हो। पर इस नशे मे भी होश-हवाश दुरुस्त करके चलने की जरूरत है।

वासना निरर्थक नही है

मैं जिस स्नेह और प्रेम की बात कर रहा हूँ वह हृदय को संकुचित नहीं बनायेगा। प्रायः अपनी स्त्री के प्रति पति का स्नेह आजकल परिवार के अन्य लोगों के प्रति अन्याय का द्योतक होता है। अपने बच्चे के प्रेम मे अन्धे माता-पिता दूसरे बच्चों को फूटी आँखों नहीं देखते। दूसरों की बुराई तथा हानि पर अपने कल्याण और लाभ के महल खड़े किये जाते है। यह प्रेम नहीं है; यह विकृत, दूषित और स्थानभ्रष्ट ('इनवर्टेड') प्रेम है। इसमें हिंसा है। इसके मूल में पैठकर देखें तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि ऐसे आदमी अपने बच्चों को भी

स्थान भ्रष्ट प्रेम

वस्तुतः प्यार नहीं करते; वे केवल स्वार्थ और अपने हित वा सुविधा का ख्याल रखते है। यह बात आश्चर्यजनक-सी लगेगी पर सत्य है कि जो दूसरों के बच्चो को प्यार नही कर सकता वह अपने बच्चों को भी प्यार नहीं कर सकता। प्रेम के विषय में यह सदैव सत्य है। जो अपनी पत्नी को सच्चे भाव से प्रेम करेगा वह औरों के प्रति भी प्रेम और कल्याण के भाव ही रखेगा। प्रेम जब किसी हृदय में आता है तो वह वर्षा की बाढ़ की तरह सर्वत्र फैल जाता है। जीवन का प्रत्येक कोना उसकी आर्द्रता से उपजाऊ हो उठता है।

इसलिए जब मै कहता हूँ कि तुम्हारे स्नेह का केन्द्रीकरण पत्नी में होना चाहिए तब उसका अभिप्राय इतना ही है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तुम्हारी यात्रा पत्नी के साथ हो। उसके प्रति तुम्हारा प्रेम सारे जीवन मे प्रकाशित हो। उसके कारण तुम्हारा सम्बन्ध प्रत्येक के साथ प्रेममय हो। जैसे दर्पण पर पड़ी किरणें उलट कर अन्य स्थानों को प्रकाशित कर देती है वैसे ही उसके साथ जीवनोद्देश्य की एकता के भाव से, उसमें केन्द्रित प्रेम से तुम्हारे सम्पूर्ण जीवन-विस्तार को प्रकाशित हो उठना चाहिए। कहीं मैंने कहा है कि विवाहित जीवन सामाजिक जीवन की शिक्षणशाला है। यह तुम्हारे हृदय को संस्कारसम्पन्न करता है; यह तुम्हारे मानस को उदार और बलवान बनाता है। पर

यह सब तभी संभव है जब तुम उसे उचित रूप में बिताने का मर्म समझ कर उस पर आचरण करो। नहीं तो उलटा हो सकता है और प्रायः होता है। यदि तुम्हारा प्रेम परिष्कृत होगा तो तुम्हारा सम्बन्ध परिवार के अन्य लोगों के साथ भी प्रेममय और उदार होगा। तुम्हारे हृदय मे अन्य कुटुम्बियों के प्रति, जो संभव है, जीवन की विभूतियों के विषय में तुम्हारे समान भाग्यशाली न हों, पूरी हमदर्दी होनी चाहिए। तुम्हारे प्रेम के छींटे उनपर भी पड़ने चाहिएँ।

इसके अलावा स्नेह के केन्द्रीकरण का एक विशिष्ट पक्ष और है। इसका सम्बन्ध व्यावहारिक नीति से अधिक है। तुम्हें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि विवाहित जीवन अवि-वाहित जीवन से भिन्न वस्तु है। इसमे बचपन की आजादी, फक्कड़पन और शरारतों की बहुत ही थोड़ी गुञ्जाइश है। इसमे तुम्हारे शिक्षण-काल के दिनो के स्वप्नों को भी बहुत स्थान नहीं। कालेज के दिनों मे तुम्हें दूर की सूझती थी, तुम बड़े नटखट थे। एक तरह की लापरवाही और बेफिक्री तुम्हारे मन में भरी थी। दूसरे साथियो और शिक्षकों को बेवकूफ बनाने मे तुम्हें मज़ा आता था। तुम जिन्दगी को बड़े हलकेपन से ग्रहण करते थे। पर अब वे दिन चले गये। वे लौट नहीं सकते। उनका स्वप्न देखना व्यर्थ है। अब तुमने जीवन की जिम्मेदारियाँ उठा ली है। तुम्हारी जिन्दगी एक प्राणी के साथ, और उसके द्वारा अनेक प्राणियों के साथ, जुड़ गई है। अब तुम एक से अनेक होने के मार्ग में हो। तुम्हारी जिम्मेदारियाँ बढ रही हैं। अब तुम केवल अपने को लेकर लापरवाह और बेफिक्र नहीं हो सकते।

इसका ख्याल रखो !

मैंने कहा है कि तुम पर नई जिम्मेदारियाँ आ गई है। इसमें डरने की जरूरत नहीं है पर सावधान रहने की जरूरत अवश्य है। एक बात जिसका तुमको खास तौर पर ख्याल रखना है यह है कि दूसरी स्त्रियों की ओर से तुम अपना ध्यान हटा लो। विवाहित आदमी का रस और आकांक्षापूर्वक

दूसरी स्त्रियो का सम्पर्क

दूसरी नारियों की ओर ध्यान देना विष-तुल्य है। दूसरी स्त्रियों के साथ अपने सम्बन्ध, अपनी बातचीत और अपने झुकाव में तुम्हें बड़ी सावधानी रखनी पड़ेगी। कोई चीज पति-पत्नी से सम्बन्ध पर उतना असर नहीं डालती जितना दूसरे स्त्री-पुरुषों के प्रति उनका विशेष झुकाव डालता है। स्त्रियाँ दूसरी स्त्रियो के साथ अपने पतियों के सम्पर्क पर कड़ा ध्यान रखती हैं। यह हो सकता है कि जब तुम अपनी असावधानी के क्षणों में रिश्ते-नाते की किसी लड़की या स्त्री से बिल्कुल निर्दोष हँसी-मजाक कर रहे हो, जब मीठी बाते करके और सुनकर तुम्हारे हृदय की कली खिल रही हो तब दूर किसी कोने से झाँकती हुई तुम्हें देख रही, श्रीमती जी के तेवर चढ़ रहे हों, उनके भवों पर बल हो और उनके दिल में उस भावी सन्देह की एक काली छाया धीरे-धीरे उतर रही हो जो एक ही धक्के में जीवन को टुकड़े-टुकड़े कर देगी। स्त्री सब कुछ सहन कर सकती है परन्तु अपने पति को दूसरी के हाथ में नहीं सौंप सकती। जब वह पति को दूसरी स्त्रियों वा लड़कियों से घुल-घुलकर बातें करती देखती है तब उसके कलेजे पर चोट लगती है। उसे लगता है, उसका सौभाग्य छिना जा रहा है और उस अधिकार की जड़ कटी जा रही है, जिसे उसने अपना सम्पूर्ण जीवन देकर पाया था। मै यह नहीं कहता कि सदा ही इस तरह के विनोद सदोष होते हैं। अनेक बार पति बिल्कुल निर्दोष होता है और उसके व्यवहार में कामुकता वा वासना नही होती। परन्तु जैसा कि मै पहले भी कई बार कहता रहा हूँ, विवाहित जीवन की सफलता सिद्धान्तों पर उतनी आश्रित नही है जितनी व्यवहार-कुशलता पर निर्भर है। तुम्हारा निर्दोष होना ही काफ़ी नहीं है; तुम्हारा निर्दोष दिखना भी जरूरी है। यह याद रखना चाहिए कि तुम दुनिया में अकेले नहीं हो; तुम एक समाज में रहते हो; उसमें उठते-बैठते और जीवन व्यतीत करते हो; तुम उसके भावों को कुचलकर, उनकी उपेक्षा करके चैन नहीं पा सकते। एक सीमा तक, उसके भावों का विचार करते हुए तुम्हें चलना पड़ेगा।

मैं मानता हूँ, तुम्हारे हृदय में कोई पाप नहीं है और क्षण भर के लिए यह भी मान लेता हूँ कि तुम्हें ऐसा करने का अधिकार भी है। परन्तु इससे तुम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि तुम्हें प्रत्येक निर्दोष कर्म करना ही चाहिए। जहाँ तक उन विचारों और कार्यों का सम्बन्ध है जिनका अन्त और परिधि (विचार) केवल तुम्हारी ज़िन्दगी तक है तहाँ तक तुम उन्हें ग्रहण करने में स्वतंत्र हो पर जहाँ तुम्हारा जीवन सर्वथा एकाकी नहीं है, उसके साथ दूसरे प्राणियों का सम्बन्ध आता है तहाँ तुम केवल अपनी भावनाओं का विचार करके आचरण का निर्णय नहीं कर सकते। जब ऐसा किया जाता है तब जटिलताएँ पैदा हो जातीं हैं और जीवन का मार्ग काँटों से भर जाता है।

महाशय 'क'

'क' नाम के एक आदमी को मैं जानता हूँ। यह बड़े ऊँचे विचारों के सदाचारी व्यक्ति हैं। रहन-सहन सीधी। एक स्त्री इनको भाई मानती थी। यद्यपि वे सहोदर भाई-बहिन न थे परन्तु उनमें जन्मजात भाई-बहिन सा ही स्नेह था। यहाँ तक कि दूर के नाते-रिश्ते के लोग तथा उनके सम्पर्क में आने वाले अन्य लोग भी उन्हें सगे भाई-बहिन के रूप में ही जानते थे। इस स्त्री के पिता भी उक्त सज्जन को अपने लड़के की तरह ही मानते थे। इस भाई का अपनी इस बहिन के प्रति अगाध प्रेम था। वह उसके सुख के लिए सब उचित काम कर सकते थे।

आग लगानेवाली स्त्रियाँ

उस बहिन ने ही जोर देकर इनकी शादी की। शादी के बाद भी इनका वही व्यवहार बना रहा। निर्दोष और सीधे आदमी, बेचारे यह न समझ सके कि विवाह करते ही दुनिया के सम्बन्धों और उसकी जिम्मेदारियों में परिवर्तन हो जाता है। उधर जो एक नया, उस संस्कार और वातावरण से बिल्कुल अपरिचित, प्राणी घर में आया तो यह माजरा देखकर उसके होश फाख्ता हो गये। उसकी समझ में न आया कि यह क्या नाटक है। कुछ दिनों तक वह चुपचाप सब देखती रही पर यह चुप्पी सर्वनाश

की चुप्पी थी क्योंकि सन्देह और अविश्वास, कुतर्क और आशंकाओं से उसका मन भर चुका था और इस चुप्पी के दिनों में सारा विष उसके अन्दर घनीभूत होता गया। इधर-उधर की मिलने-जुलनेवाली जो

जिनकी जीभ दूसरे घरों में आग लगाती है!

स्त्रियाँ आईं—वे स्त्रियाँ, जिनकी जीभ दूसरों के घरों में आग लगाने का काम करती है—उन्होंने नमक-मिर्च लगाकर बहू को और भी चंग पर चढ़ाया। अन्त में वही हुआ जो होना था। वह खिले फूलों से महकते हुए बगीचे के समान सुरभित और आनन्द से भरा जीवन नष्ट हो गया। यह बहिन इस स्त्री के व्यंग-बाणों से बिंध-बिंध कर बीमार पड़ गई। बच्चे-सी उसकी निर्दोष हँसी, रात-दिन का खिलखिलाना सब ग़ायब हो गया। इस समय वह मृत्यु-शय्या पर है। उसकी बलि पाकर भी वह देवी स्थिति समझ नहीं पाई और आज भी वह पति के हृदय को जब-तब छेदती रहती है:—'जब एक पहले से थी तब मुझे क्यों लाये?' जब-जब उन्होंने मुँह खोला या समझाने की कोशिश की तब-तब उस स्त्री पर उलटा ही असर हुआ। श्रीमती जी के वाग्बाणों से बेचारे पति देवता का हृदय छलनी हो गया। वह जब शान्त करने या समझने की चेष्टा करते तब देवी बोलतीं—'वाह रे धर्मात्माओ! अब भगत

तो तुम्हीं दोनों रह गये। भाई-बहिन (अट्टहास)! अरे! इन बातों से किसी मिट्टी की पुतली को समझाना। मैने भी अपनी माँ का दूध पिया है। आँख-कान अभी बेकाम नहीं हुए है। मै भी कुछ जानती-समझती हूँ।' ज्यादा कुछ कहने पर एक आफत बरपा कर लेती—एक तूफान खड़ा कर देती। अन्त में पति ने बात-चीत भी छोड़ दी। मन मारकर भाग्य के आगे उन्होंने भी कन्धा डाल दिया। तब भी श्रीमती जी की विषैली जिह्वा अपना काम करती ही रही। 'मेरे तो भाग्य फूट गये। मैं क्या जानती थी कि एक को तुमने पहले से ही बिठाल रक्खा है। मैंने गलती की जो तुम लोगों के बीच बोली, अगर चुप रहती तो कम से कम तुम लोगों की निगाह मे अच्छी तो बनी रहती। पर कलेजे पर का फोड़ा किससे सहा गया है।' तब वह क्रोध मे माता-पिता तथा सगे-सम्बन्धियों को भी उपहार प्रदान करती जिन्होंने उसकी शादी यहाँ लगाई थी।

अविश्वास और सन्देह की साँपिन ने इस घर को डॅस लिया और सारा घर नष्ट हो गया। ऐसी घटनाएँ प्रायः होती रहती है। इसमे देखने की बात यह है कि निर्दोष होते हुए भी, पति-पत्नी का सम्बन्ध व्यावहारिक बातों पर आश्रित न होने के कारण, घर का घर उजड़ गया। दाम्पत्य जीवन सैद्धान्तिक जीवन नहीं है। यह दलीलों पर निर्भर नहीं करता। यह जीवन के अनुभवों के प्रकाश का, चतुराई और सावधानी के साथ, नित्य के पारस्परिक व्यवहारों पर प्रयोग करने का नाम है। दलील और सिद्धान्त यहाँ सदा काम नहीं देते। पति का केवल निर्दोष होना काफी नहीं है। यह देखना भी उसका कर्त्तव्य है कि जिस स्त्री को, गलत या सही, उसने जीवन-सगिनी के रूप में अपना लिया है, वह उसके किस काम को कैसा समझती है। क्योंकि जब दो जीवन जुड़ गये हैं तब तुम्हारा सुख तुम्हारे और तुम्हारी पत्नी के दिलों के मिलने, तुम्हारे हार्दिक सहयोग पर ही निर्भर करता है। यदि तुम अपने भोलेपन में

सन्देह का भयानक परिणाम

अपनी पत्नी के दिल में अपने कार्यों के प्रति सन्देह पैदा कर लेते हो तो समझ लो कि अपने सुखी जीवन की जड़ काट रहे हो या यों कह लो कि आगे के सर्वनाश का बीज बो रहे हो। जब तक अपने कार्यो, अपने व्यवहार और अपनी शिक्षा से तुमने पत्नी का हृदय उस स्टेज पर नहीं पहुँचा दिया है कि वह तुमको गलत न समझ सके वा अन्य स्त्री-सम्बन्धों को केवल काम-वृत्ति के ही प्रकाश में देखना बन्द न हो जाय तब तक हर क़दम उठाते हुए, हर स्त्री से बोलते-चालते हुए, तुम्हें बहुत ही सावधान रहना चाहिए।

तुम कहोगे कि यह तो स्त्री का अत्याचार हुआ। परन्तु गहराई में प्रवेश करने पर मालूम होगा कि स्त्रियों के हृदय मे जो इस प्रकार की शंकाएँ पैदा होती है वे सर्वथा निर्मूल नही है। इसके लिए वे ज़िम्मेदार भी नहीं हैं। ऐसी शंकाओं का भी कारण है। पहले हम अपने चारों ओर निगाह डालें। जिस समाज में हम रह रहे है या जिस वातावरण में साँस लेकर साधारण औसत नारी अपना विवाहित जीवन आरम्भ करती है उसका विचार करने से ही सारी बातें साफ़ हो जाती हैं। समस्त वातावरण अविश्वास और संशय से भरा हुआ है। सड़कों से निकलती हुई स्त्रियों को अधिकांश पुरुष लालसा की दृष्टि से देखते हैं। तीर्थ-स्थानो में वही बाते है। स्कूल-कालेजो में वही बातें है। हमारे सारे संस्कार क्षीण पड़ गये हैं। स्त्रियों में भी टीम-टाम बढ़ रहा है। और अच्छे संस्कारों की कमी होती जा रही है। जीवन मे दैन्य, कुरुचि, कुसंस्कार और सस्ती लालसाओं की वृद्धि हो रही है। लड़की लड़कपन की ड्योढ़ी पार भी नहीं करने पाती कि वह लोगों की निगाहों पर चढ़ने लगती है। अड़ोस-पड़ोस के पुरुषो की निगाह उसके साथ लुका-छिपी करती है। नाते-रिश्ते की औरतों को लड़की के अविवाहित रहते अपने नरक मे फिसलने का खतरा दिखाई देता है। ये सब बातें लड़की में भी, असमय, काम-भावना जाग्रत कर देती हैं। उसे भी गुद-

इन सन्देहों का कारण है

गुदी होने लगती है। वह भी विवाहित जीवन के सपने देखने शुरू करती है। आश्चर्य तो यह है कि वर-कन्या खोजने और विवाह का सरंजाम करने मे हमारे बुजुर्ग लोग जितनी परीशानी झेलते हैं उसका चौथाई कष्ट भी लड़के-लड़कियों को भावी जीवन के लिए तैयार करने मे नहीं उठाते। ऐसी अवस्था मे ज़रा भी अपरिचित बातें सामने आते ही जीवन का क्रम भंग हो जाता है। वह बेसुरा हो उठता है।

समाज में चरित्र-निर्माण और सच्चाई तथा वफ़ादारी का चलन कम होता जाता है। उसकी कीमत बहुत कम हो गई है। इसी वातावरण में पली लड़की यदि तुम्हारी दूसरी स्त्रियों की घनिष्टता को शका एवं भय की दृष्टि से देखती है तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? सौ मे नब्बे आदमियों के विषय मे स्त्रियो की शंका प्रायः ठीक होती है। बाकी जो बचते है उनकी गिनती असामान्य लोगों में की जानी चाहिए और, जैसा कि मै कह चुका हूँ, विवाहित जीवन सामान्य जीवन है।

पर इन सब बातों के अलावा तुम्हारे हित के ख्याल से भी पराई स्त्रियों वा लड़कियों के आकर्षण मे पड़ना ठीक नहीं। शुद्ध स्नेह और लालसा की विभाजक रेखा आरम्भ मे इतनी बारीक होती है कि सब लोग उसे पहचान नहीं सकते। ऐसी अनेक घटनाएँ मै जानता हूँ जिनमे आरम्भ बिल्कुल निर्दोष था परन्तु बाद मे काम-भावना पैदा हो गई। मेरा ख्याल है, हममे से बहुतों के निकट अनुभव मे ऐसी बाते आई होंगी। स्त्री-पुरुष का आकर्षण अत्यत रहस्यपूर्ण वस्तु है। प्रायः आदमी अंध-कार में बहुत आगे बढ़ जाता है और जब उसे होश आता है कि मै कहाँ आ गया हूँ तब लौटने में असमर्थ होता है। पुरुष के हृदय मे नारी के प्रति एक सहज आकर्षण होता है। यदि आरम्भ मे ही प्रयत्न किया जाय तो आदमी उस पर काबू कर ले सकता है। पर एक बार फिसलने पर फिर बीच में रुकना मुश्किल हो जाता है।

पराई स्त्रियों का आकर्षण

जब किसी लड़की या स्त्री की तरफ बार-बार देखने की इच्छा हो

और तुम दूसरों की आँखें बचाकर उसकी तरफ देखते हो; जब उसे देखने के बाद भी तुम्हारे हृदय में एक हसरत, एक आरम्भ में सँभली लालसा, एक अतृप्ति रह जाती है कि इसे और देखता; जब मन में आता है कि वह मेरे संपर्क में आवे, मैं किसी प्रकार उसके निकट पहुँचूँ, उससे बातें कर सकूँ, अपने बारे में उसकी दिलचस्पी पैदा करूँ, वह मुझपर दूसरों से कुछ ज्यादा ध्यान दे, मुझे एक विशिष्ट पुरुष समझे; जब उसे देखने, उससे मिलने उसके निकट होने की इच्छा बार-बार उदय होती है और मिलने तथा बोलने के बाद भी *बेचैनी बढ़ती ही जाती है* तब समझ लो कि सर्वनाश का आरम्भ हो चुका है। भगवान् से अपने को उबार लेने की प्रार्थना करो और ऐसी स्थिति से तुरन्त अपने को हटा लो।

पर जब ऐसा न हो तब भी किसी भावी जटिलता से बचने के लिए अच्छा है कि युवक, लड़कियों वा युवतियों से एकान्त में न मिलें। मैं गांधी जी के निकट रहने वाले एक विद्वान को जानता हूँ। यह एक विद्यापीठ के आचार्य रह चुके हैं; शिक्षण-कार्य के विशेषज्ञ हैं; अच्छे लेखक तथा संस्कारी पुरुष हैं; अवस्था भी काफी है और उनके आचरण के विषय में कभी किसी को कोई शिकायत नहीं हुई। पर जब उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई तो लड़कियों को खुले में पढ़ाने का नियम उन्होंने बना लिया। जीवन में इस तरह की सावधानी रखने से मनुष्य अनेक आपदाओं, जटिलताओं और झंझटों से बच जाता है।

विवाहित जीवन आज एक यांत्रिक क्रम के रूप में बदल गया है। उसमें कोई शान्ति और तृप्ति नहीं दिखाई देती है। आन्तरिक उल्लास

सच्चा प्रेम बनाम झूठा प्रेम

और आनन्द का अभाव हो गया है। इसका कारण यह है कि जिस प्रेम का नशा यौवन काल में दिखाई पड़ता है वह प्रायः झूठा होता है। इसमें विषय-भोग की प्रधानता होती है। वाणी में, व्यवहार में असंयम झूठे प्रेम का एक मुख्य लक्षण है। प्रायः भावावेश में युवक पति अपनी

पत्नी से तरह-तरह की लम्बी-चौड़ी बातें करता है। वह कहता है—'तुम मेरे लिए प्राणों से भी अधिक प्यारी हो या तुम्हारे लिए मै प्राण भी दे सकता हूँ। तुम मेरे जीवन की सर्वस्व हो।' यह स्पष्ट है कि ऐसी बातों का कुछ मतलब नहीं होता। वे मन के एक असंयत तूफान की द्योतक भर हैं। इसमे शब्दों का खर्च बड़ी उदारता के साथ किया जाता है युवक के मन की स्थिति ऐसी होती है कि वह जो कुछ कहता है उसका अर्थ पूरी तरह समझता भी नहीं। हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार श्री प्रेमचंद ने कहीं लिखा है कि युवावस्था को अतिशयोक्ति से प्रेम है। यह सत्य है। जब जवानी ढलने लगती है या विवाह को पाँच-सात वर्ष बीत जाते है तब वही युवक अपनी पत्नी से नज़र बचाता है; उससे दूर-दूर रहने की कोशिश करता है। कम से कम पहले की उमंगों का अब कहीं निशान भी नहीं रह जाता। अन्त मे जीवन में गति नहीं रह जाती। सब कुछ निरानन्द हो जाता है।

इसके विरुद्ध सच्चा प्रेम धीरे-धीरे पनपता है और ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, उसका प्रकाश और उसकी शक्ति बढ़ती जाती है। उसमे नशा नहीं आनन्द होता है; उसमें प्यास नहीं तृप्ति होती है। सच्चा प्रेम भगवान् का स्वरूप है। इसलिए उसमे छटपटाहट और बेचैनी नहीं, गहरा सन्तोष होता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है :—

जाको लहि कछु लहन की, आस न जिय में होय।
जयति जगतपावन करन, प्रेम बरन यह दोय॥

'जिसको पाकर और कुछ भी पाने की इच्छा हृदय में नहीं होती' वही प्रेम है। सच्चे और झूठे प्रेम की दो प्रधान कसौटियाँ हैं। पहली कसौटी तो यह है कि सच्चा प्रेम अधिकारमूलक,

प्रेम की कसौटी भोगमूलक नहीं बल्कि आत्मार्पणमय होता है। उसमें प्रियजन पर अधिकार की, उससे अपना मतलब निकालने की, उसे अपने सासारिक सुख का साधन बनाने की, भोग की, भावना नहीं होती। उसमें जिसे प्रेम किया जाता है उसके सुख की,

उसकी सुविधा और कल्याण की भावना होती है। सच्चे प्रेम में आत्म-निवेदन और समर्पण है। उसमें देना ही देना है। प्रेम जीवन-भर अपने को देता ही रहता है। उसका दान कभी समाप्त नहीं होता क्योंकि प्रेम का अन्त नहीं है। प्रेम में बदला भी नहीं है। यह कोई सौदे की चीज़ नहीं है।

सच्चे प्रेम की दूसरी कसौटी उसका स्थायी होना है। काल की, समय की कसौटी पर जो खरा उतरता है वही सच्चा प्रेम है। सच्चे प्रेम में संयम होता है इसलिए गम्भीरता भी होती है और चूँकि गम्भीरता होती है इसलिए वह धीरे-धीरे बढ़ता है; तूफ़ान की तरह एकाएक नहीं। हाँ, यह है कि बराबर बढ़ता ही जाता है। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते है इसका आनन्द और स्वाद भी गहरा होता जाता है। इसका रहस्य प्रकट होने लगता है और इसकी अनन्त महिमा और शक्ति के दर्शन होने लगते है। कवि ने ठीक ही कहा है:—

आरभ गुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्ध भिन्ना,
छायेव मैत्री खल सज्जनानाम् ॥

खलों और सज्जनों की मित्रता दिन के पूर्वार्द्ध और परार्द्ध की छाया की तरह होती है। दिन के पूर्वार्द्ध की छाया पहले तो बड़ी होती है परन्तु धीरे-धीरे घटती ही जाती है। (इसी प्रकार खल लोगों की मित्रता बड़े जोर-शोर से आरंभ होती है परन्तु धीरे-धीरे क्षीण पड़ती जाती है।) इसके विपरीत दिन के परार्द्ध (दूसरे आधे हिस्से) की छाया पहले छोटी होती है परन्तु बाद मे बढ़ती जाती है। (सज्जनों की मित्रता संयमपूर्वक थोड़ी मात्रा से आरंभ होती है और बराबर बढ़ती जाती है।)

यह ठीक है कि पत्नी के प्रति एक दम शुद्ध प्रेम होना संभव नहीं है क्योंकि दोनों में शारीरिक भोग-विलास का भी भाव होता ही है। परन्तु जो कुछ कहना मै चाहता हूँ वह यह है कि आरंभ से ही पति

को अपने भावोद्वेग पर, अपने हृदय के तूफान पर संयम रखकर चलना चाहिए। पत्नी को सच्ची जीवन-सगिनी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि तुम उसके हृदय मे प्रवेश करो। उसके अन्दर जो सर्वोत्तम कोमल भावनाएँ है उनको उभाड़ो और उसके सुख और कल्याण का ध्यान रखो। ज्यों-ज्यों विषय-भोग की वृत्तियों पर तुम अधिकार करते जाओगे, त्यों-त्यों दोनों के हितों की एकता का रहस्य तुम्हारे सामने अपने-आप प्रकट होता जायगा। सच्चे पति-पत्नी वे हैं जिनके बीच जीवन की संध्या में गाढ़ा प्रेम बना हुआ है—वह प्रेम जो जवानी का विकार-मात्र नहीं है बल्कि जीवन की गहराई में पैदा होता और पनपता है।

आजकल का युवक पति अक्सर रूप-लिप्सा को भी प्रेम समझ लेता है। दरअसल स्त्री-पुरुष के सब तरह के सस्ते आकर्षण को आजकल बाजार में प्रेम नाम से पुकारा जाता है। नारी की ज़रा-सी मुस्कराहट, उसकी अँगड़ाई, उसकी चाल, उसकी छवि दिल को खींचती है, यौवन की प्यास को उभाड़ती है। बस, युवक इसी को प्रेम समझ लेता है। वस्तुतः स्त्री-पुरुष का यह सस्ता आकर्षण यौवन के भीतर की वासना का सूचक मात्र है। यह वासना निरर्थक नहीं है। यह प्रजा (सन्तान) की उत्पत्ति के क्रम को सरल बनाने के लिए है। यह इस बात का सूचक है कि तुम्हारे शरीर में सृष्टि का सबसे मूल्यवान पदार्थ एकत्र हो रहा है और उसका सदुपयोग करके तुम प्रजोत्पत्ति के अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकते हो। यह कुरुचिपूर्ण और सस्ते वासनारञ्जन के लिए नहीं है।

प्रेम बनाम रूप-लिप्सा

परन्तु आजकल हमारी सारी जिन्दगी उलटी हो रही है। जीवन का क्रम और आधार बिल्कुल गलती और बनावटी हो रहा है। प्रायः हर प्रसिद्ध अखबार मे विवाह-सम्बन्धी विज्ञापनों का कालम ज़रूर होता है। इन विज्ञापनों पर नज़र दौड़ाइए। लड़का चाहिए—पढ़ा-लिखा हो, व्यापार या नौकरी मे लगा हो, कमाऊ हो। कोई-कोई स्वास्थ्य की भी मॉग

विवाह-विज्ञापनो की समीक्षा

करते हैं, नही तो आर्थिक स्थिति पर सबसे ज्यादा जोर दिया जाता है। इसी तरह लड़की चाहिए:—सुन्दरी हो, गोरे रंग की हो, पढ़ी-लिखी हो, घर-गृहस्थी के काम में निपुण हो, सीना-पिरोना और गाना जानती हो। इत्यादि, इत्यादि। पहले तो आजकल युरोपीय ढंग की सभ्य लड़कियाँ घर-गृहस्थी का कितना काम जानती और करती हैं, यह छिपी बात नहीं है परन्तु इस समय मै इस झगड़े को उठाना नहीं चाहता। मैं यहाँ सिर्फ यह दिखाना चाहता हूँ कि इन विज्ञापनों में रूप को पहला स्थान दिया जाता है या दिया गया है और जो चीज़ जिन्दगी की गाड़ी को आगे बढ़ा सकती है—जिसको लेकर नारी महान् है, उसका यानी उन गुणों का इनमें कोई जिक्र नहीं। लड़की के गुणों का, उसके स्वभाव का कोई जिक्र इनमें नहीं होता, मानो आजकल के जीवन में उनकी माँग नहीं; उनका मूल्य आज के युवक की आर्थिक प्रणाली में गिर गया है। जीवन का सारा दृष्टिकोण आर्थिक है—'खाओ, पिओ, मौज करो।' बस। इसके लिए जिन बातो की जरूरत है, उनकी माँग सबसे पहले है!

बर्फ की तरह गलने वाले लड़के

कालेजों के लड़कों को देखिए—जरा-सी चटक-मटकवाली किसी लड़की को देखते हैं और पिघल पड़ते है। उसने इनसे दो बातें कीं, बस इनका कलेजा चाक हो गया; मुँह को आने लगा। अब जिन्दगी सूनी लगती है। आहों का वह धुआँ उठता है कि जिन्दगी भयानक कोहरे से ढक जाती है। सस्ते शेर याद किये और दोहराये जाते हैं।

इन भलेमानसों से पूछो कि क्या कभी तुमने यह भी सोचा है कि यह लड़की, जिसकी सारी क़ीमत उसके मुख को लेकर है या उस मुख को वह दुनिया के सामने किस श्रृंगारपूर्ण ढंग से पेश कर सकती है, इसे लेकर है, अगर तुम्हारी पत्नी बना ही दी जाय तो क्या तुम्हारा जीवन सार्थक हो जायगा? मैंने ऐसे विवाह भी देखे हैं; हँसते हुए किये गये थे; जिन्दगी रोते-रोते बीती। कभी-कभी तो भयंकर विस्फोट होता है और जीवन की नींव के धुर्रे उड़ जाते हैं। जब गाढ़े दिन आते

है; जीवन की चढ़ाई शुरू होती है तब ऐसे लोगों का दम फूल जाता है और वे हाय करके बैठ जाते हैं या कराहते हुए, घिसटते हुए चलते है और थोड़ी यात्रा में ही दम तोड़ देते हैं।

मैं यह नहीं कहता कि रूप का कोई मूल्य नहीं है पर मैं इतना ज़रूर कहता हूँ कि जीवन के संघर्ष में इस हलकी और क्षणस्थायी चीज के भरोसे तुम ज्यादा सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। उसके लिए कहीं ज्यादा ठोस चीज़ की जरूरत है। रूप-लिप्सा मे अंधे बनकर दूसरी ज्यादा ज़रूरी चीजों की तरफ़ से मुँह मत मोड़ो। यह रूप पहले तो सयोग से मिला हुआ पदार्थ है। यानी इसके प्राप्त करने मे लड़कीने कोई परिश्रम नहीं किया। इससे उसके गुणों का, या योग्यता का कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे उसके सस्कारों का भी कुछ पता नहीं चलता। तब इस चीज़ के प्रति तुम्हारी इतनी ललचाई नज़र क्यो है? क्यों नहीं लड़की मे पहले शील, गुण, स्वभाव की अच्छाई की माँग की जाती? मधुर बोली, सहनशील स्वभाव, परिश्रमशीलता, सन्तोषी वृत्ति, उदार मानस—ये वे चीजे है जिनके कारण नारी गृहलक्ष्मी है। पर आज इन बातो पर कौन ध्यान देता है? आजकल का युवक पति तो पत्नी में चटक-मटक, रूप और यौवन का नशे से पूर्ण तोड़ चाहता है। और तभी गृह इतने सूने तथा निरानन्द हो रहे है।

जो पति सुख चाहता है उससे मैं कहूँगा कि रूप की नींव पर अपने सपनों के महल न खड़े करो। केवल चमड़ी के ऊपर जो चीज़ है उस पर अधिक विश्वास और भरोसा न करो। गुणों को देखो, हृदय को देखो, स्वभाव और संस्कार को देखो और उनके चुनाव में सावधान रहो, तुम सुखी होगे।

: १७ :

स्त्री की शिक्षा

एक नई स्त्री जो घर में आती है, बहुत सँभालकर रखने और वर्त्तने की चीज़ है। घर के, कुटुम्ब के और समाज के अनुकूल उसे तैयार करने का काम कुछ हँसी-खेल नहीं है पर इसे पूरा किये बिना दाम्पत्य जीवन में सुख पाने की उम्मीद करना कल्पना-मात्र है। दाम्पत्य जीवन के सुख और शान्ति के लिए स्त्री का शिक्षण बहुत आवश्यक है। शिक्षा से मेरा मतलब अक्षर-ज्ञान या किताबी तालीम से नहीं है। स्कूलों और कालेजों में लड़कियों को जो शिक्षा दी जाती है वह जीवन की आवश्यकताओं की तरफ बिना ध्यान दिये दी जाती है। आठ-दस साल या इससे भी ज्यादा समय हम शिक्षण में खर्च करते हैं। पर कैसे दुःख की बात है कि आगे जीवन में इस शिक्षा का बहुत कम उपयोग हो पाता है। हमारी ज़िन्दगी का एक बहुत कीमती टुकड़ा यों ही बीत जाता है। हमारी मेहनत प्रायः व्यर्थ जाती है। इस तरह की शिक्षा उस 'इन्वेस्टमेण्ट' या रुपया लगाने की तरह है जिसका अच्छा बदला मिलना तो दूर रहा, जो खुद ही डूब जाता है।

कन्याशालाओं में, और घरों पर भी, आज लाखों लड़कियाँ पढ़ रही हैं। हर साल हजारों लड़कियाँ हाईस्कूलों की अन्तिम परीक्षाओं में सफल होकर निकलती हैं और जिनको ईश्वर ने साधन दिये है, वे कालेजों मे भी जाती हैं। पर उच्च शिक्षित लड़कियों मे से कितनी ऐसी हैं जिनका विवाहित जीवन सफल कहा जा सकता है; जिनके जीवन मे अतृप्ति नहीं है, अशान्ति नहीं है और जो अपनी पिछली जिन्दगी पर सहानुभूति की नजर डाल सकती हैं, अपने वर्तमान से सन्तुष्ट हैं और भविष्य की तरफ आशापूर्ण दृष्टि से देखती है? जो कुछ देखने में आता है

आत्म-वंचना

वह तो ठीक इसका उलटा है। यह सच है कि पढ़ी-लिखी लड़कियाँ इससे इन्कार करेंगी, शिक्षित सम्प्रदाय इस पर प्रश्नचिह्न लगायेगा पर इसका कारण यह है कि आधुनिक शिक्षा ने हमे आत्म-वंचना की कला में पारंगत कर दिया है। जब हम घुट-घुट कर मर रहे हों तब भी लोगों से यही कहना पसन्द करते है कि कुछ नहीं हुआ है हम मजे मे हैं। आबरू और इज्जत की एक झूठी धारणा सत्य पर परदे की तरह पड़ी हुई है। शिक्षित लड़कियाँ बोलना जानती है—अनेक प्रकर की विचार-धाराओं से अपने मन के असली भावो की और स्थितियों की छिपा भी सकती है।

यह नहीं कि जो शिक्षा उनको मिल है वह तत्वतः बुरी है। उसमें अच्छाइया हैं, उसमे कल्पना शक्ति और बुद्धि के विकास की गुञ्जाइश है। जो चीज बुरी है वह है उसका गलत प्रयोग। भावी जीवन के उपयोग का ख्याल किये बिना शिक्षा का प्रयोग करना नादानी है और सब को एक ही साँचे की शिक्षा देना भी ठीक नहीं। शिक्षित लड़कियाँ इसीलिए गृहजीवन मे अपनी विद्या का कुछ विशेष उपयोग नहीं कर पातीं क्योंकि शिक्षा देते समय उनके भावी जीवन का कुछ विचार शिक्षकों के मन में अथवा पाठयक्रम बनाने वालों के सामने नहीं होता।

इसलिए मै जब कह रहा हूँ कि दाम्पत्य जीवन के सुख के लिए स्त्री की शिक्षा बहुत जरूरी है तब मै अक्षर-ज्ञान या किताबी ज्ञान की बातें नहीं कर रहा हूँ। मेरा मतलब उस ट्रेनिंग अथवा तैयारी से है जो स्त्री के लिए दाम्पत्य जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान समझने और उस स्थान की जिम्मेदारी ठीक तौर पर निबाहने के लिए जरूरी है।

सबसे पहली बात जो स्त्री को समझाने और उसके अन्दर पैदा करने की जरूरत है, यह है कि वह सहिष्णु हो; सहनशील हो। सपनों के पंखों पर उड़ने वाली नारी काव्य की दुनिया की रानी भले ही हो, दाम्पत्य मे जीवन मे उसका महत्व कुछ भी नही है—उलटे वह उसके लिए एक

सपनो के पङ्खो पर उड़ने वाली

अभिशाप है। जिन्दगी में दुःख-सुख लगे ही रहते हैं। जहाँ चार आदमी रहते हैं तहाँ कभी-कभी कुछ खट पट भी हो जाती है। कुटुम्ब में सभी तरह के लोग होते हैं। स्त्री को इन सब से वर्तना पड़ता है। इसके अलावा

सपनों के पङ्खों पर उड़ने वाली नारी

भी कभी माँदगी है, कभी कोई काम-प्रयोजन है, कभी कुछ और सिलसिला है; किसी का आना लगा है, किसी का जाना। जन्म, मरण, शादी, त्योहार, व्रत, मतलब कुछ न कुछ लगा ही रहता है। नन्हीं-सी जान, उसे चारों तरफ पिलना पड़ता है; सभी उसे खींचते है। सभी की दिलजोई उसे करनी पड़ती है; सब की सुननी पड़ती है। ऐसी लगातार मेहनत और चिन्ता की जिन्दगी में केवल भावनाओं के बल पर कोई ज्यादा दिन नहीं ठहर सकती। भावुक नारी को ऐसी जिन्दगी में रोना ही रोना आता है। उसे अपने उषा से सोनहले बचपन के दिन याद आते हैं; उसे माँ का दुलार और पिता का स्नेह याद आता है। उसे अपनी सहेलियो की चुहलबाजियाँ और ठिठोलियाँ याद आती हैं और फिर वह सोचती है—कैसे अरमान लेकर मै आई थी। मुझे कहना चाहिए कि ऐसी स्त्री व्याह करके कभी सुखी नहीं हो सकती। सुखी वही स्त्री हो सकती है जो अपने भूतकाल को, अपने बीते जमाने को भूल

जाती है और कल्पनाओं को छोड़कर, जो उसके सामने है उसी के सहारे, सच्चाई के साथ, अपनी गृहस्थी का निर्माण करने मे लग जाती है। जो

अतीत जीवन की स्मृतियाँ

था या जो हो सकता था इसकी कल्पना को समझदार स्त्री दूर कर देती है। जो नहीं है, उस पर दुखी होने की जगह जो है उसको लेकर, उसका संस्कार और विकास करके एक सुखी और तृप्त जीवन की रचना करने में तत्पर नारी विवाहित जीवन की देवी है।

स्त्री को सहिष्णुता की, सहनशीलता की शिक्षा देना माता-पिता का, और उससे ज्यादा पति का, पहला कर्त्तव्य है। विवाहित जीवन में

गृह-समाज की रानी

सन्तोष और क्षमा की वृत्ति वह कवच है जिस पर विपदाओं के अनेक प्रहार विफल हो जाते हैं। दूसरी बात नारी में उदारहृदयता का विकास करना है। परिस्थिति, वातावरण, संस्कार और घर के प्राणियों तक ही सहानुभूति के सकुचित हो जाने के कारण उदार माताओ का समाज से लोप होता जा रहा है। प्रायः नारी अनुदार और सकुचित होती जाती है। उसकी सकुचितता को दूर कर उसके अन्दर उदार हृदय पैदा करना पति का काम है। केवल जबानी उपदेश देने से यह न होगा। जब तक पति स्वयं अपने आचरण से इस प्रकार की शिक्षा न देगा तब तक उसका कुछ फल न होगा। पति को समझना चाहिए कि गृह स्वयं एक छोटा समाज है। नारी इस समाज की रानी है। यद्यपि उसका हृदय पति में केन्द्रित है पर उसे देखना सबकी तरफ है। पति के प्रेम, उनके प्रति श्रद्धा, से वह बल ग्रहण करती है। वही उसका कवच है, परन्तु वह केवल रमणी नहीं है। वह बेटी है, वह पत्नी है, वह माता है, वह बहिन है। उसे केन्द्र के चारों ओर फैले हुए अनेक बिन्दुओं का पोषण करना है। सास और ससुर उससे सेवा चाहते हैं—वे चाहते है, लक्ष्मी-सी एक बहू आकर उनके घर के सब अभावों को पूरा कर दे। बहू को अपनी विनय, अपनी सरलता, और अपने

प्रेम से उनके हृदय के उस खाली स्थान को भर देना है जो उनकी अपनी लड़कियों के ससुराल चले जाने से पैदा हो गया है। उसे ऐसा बनना है कि देवरानियाँ उसे पाकर समझें कि उनकी बड़ी बहिन आ गई है। ननदें फूल-सी खिल उठें। पति आश्वस्त होकर प्रभु को धन्यवाद दे कि उसके पुण्य का फल उदय हुआ है और बच्चे उसे पाकर अपना सब कुछ भूल जायें। मतलब उसे सबकी जरूरतों की जानकारी रखनी है और सबको सन्तुष्ट और सुखी करने का प्रयत्न करना है। एक साथ उसे कई तरह की सेवाएँ देनी पड़ती है और यहीं उसकी जिन्दगी की सबसे कठिन परीक्षा ली जाती है।

प्रफुल्लता को भी यों हम सहनशीलता और उदारहृदयता के अन्दर ही शामिल कर सकते हैं। पर असल में यह चीज गृहस्थ-जीवन की सफलता के लिए सबसे जरूरी है। दुःख-सुख जो आ पड़े उसे हँसते हुए सहन करना सफल जीवन की कुंजी है। इस ज्वार में सब मैल बह जाता है और वर्षा की दोपहरी में बादलों को फाड़कर निकल पड़नेवाले सूर्य-प्रकाश की तरह दुर्दिन बीत जाते हैं और सौभाग्य हँस उठता है। यदि सच्चाई और ईमानदारी से अभ्यास कराया जाय तो इस गुण को प्राप्त कर लेना कुछ बहुत कठिन भी नही है। अभ्यास से यह सुलभ है।

स्त्रियों का जीवन एक प्रकार का ज्वार-भाटा है। कभी उसमे तूफान आता है, वे लहरों पर नाचती फिरती है। भावनाओं की दुनिया मे उड़ती है और फिर क्षण भर बाद भावना की ये ज्वारभाटा-सा जीवन लहरे उन्हे सूखी रेत के निकट छोड़ जाती हैं। इस-लिए स्त्री को यह भी बताना चाहिए कि जीवन कठोर कर्मक्षेत्र है। इसमें पग-पग पर युद्ध करना है। कॉंटों के रास्ते पर चलना है। धीरज सबसे बडा मित्र है और उस समय भी सहायता करता है जब अपने सब लोग उसे छोड़ देते है। इसलिए जीवन मे आवश्यक गाम्भीरता और धीरज की वृत्ति भी होनी चाहिए।

सबसे बड़ी बात नारी के लिए यह है कि उसे अपने मातृत्व के

गौरव का बोध हो; वह समझे कि वह माँ है; वह समाज की माता है। इसलिए स्वभावतः उसे कष्ट भी अपनी पद-मर्यादा समाज की यज्ञ-वेदी के अनुकूल ही सहन करना है। कोई ऐसी सामान्य नारी नहीं है जिसका हृदय 'माँ' की पुकार पर उमड़ता नही। यह एक शब्द—एक सम्बोधन उसके अन्दर युग-युग से सञ्चित हो रही भाव-राशि को उभाड़ देता है। हृदय की गहराई से वह उस शब्द का उत्तर देना चाहती है। जो नारी अपने इस गौरव को समझती है वह कुटुम्ब का कोई काम करते समय, कठिनाइयों और बोझ के कारण, अधीर नहीं होती। क्योंकि वह माँ है—उसको तो देना ही देना है। उसको तो तिल-तिल करके अपने को खपाना ही है। उसे तो अपने रक्त-मास से सन्तति और समाज की रचना करनी है। उसका दान कभी समाप्त नहीं होता। वह समाज की चिरजाग्रत यज्ञवेदिका है।

ऐसी स्त्री कामों की भीड़ मे नाक-भौ नही सिकोड़ती। उसे हर काम मे एक स्वाद आता है। हर काम में वह निजत्व का बोध करती है। हँसते-हँसते वह दिनों का काम घंटों में पूरा कर लेती है। उसके लिए पहाड़ से दिन फूल हो जाते हैं।

इसके विरुद्ध जो स्त्रियाँ अपने आन्तरिक गौरव को अनुभव नही करतीं वे सदा अपने कष्टो का रोना रोती हैं। उनके दुखड़े का रजिस्टर कभी बन्द नही होता। जब पति जल्द एक ग्लास यह जिह्वा ! ठंडा पानी माँगता है तब वह बड़े आलस्य और कष्ट का भाव जनाती हुई उठती है; जल्दी करने को कहने पर कहती है—'तुम तो हथेली पर सरसों जमाना चाहते हो; कुछ मेरे अन्दर बिजली तो है नहीं कि झट पहुँच गई।' बच्चे आकर मान करते हैं—घेरते है, गले मे हाथ डालते या चारों ओर किल-कारियाँ मारते हैं तो वह कहती है—'बाप रे बाप ! आसमान सिर पर उठा लिया।' वह हर एक काम को दासी—मजदूरनी की तरह करती

है। किसी काम को करते समय उसके हृदय में उत्साह या प्रसन्नता नहीं होती—स्फूर्ति नहीं होती। अगर वह अपने को गृहलक्ष्मी और माता समझती तो सचमुच उसके शरीर में बिजली कौंधती होती। प्रेम वह रसायन है जो जीवन को कभी न मरनेवाली शक्ति से भर देता है। उसी के सहारे जीवन की कठिनाइयाँ बात की बात में पार हो जाती हैं। मन-प्राण-शरीर सब उस जीवनी शक्ति से पूर्ण रहते है जो कामों के बीच अपूर्व उल्लास का अनुभव करती है।

यदि नारी के हृदय में धर्म का भाव है, श्रद्धा है, पति के प्रति सच्चा प्रेम है तो वह प्रत्येक काम को दिल लगाकर और ईमानदारी से करती है। सेवा में ही उसका प्रेम बढ़ता और व्यक्त होता है। उसी में उसका सस्कार होता है और उसी को पाकर वह तृप्ति-बोध करती है।

इसलिए प्रत्येक पति का धर्म है कि वह सच्चे गृहस्थ-जीवन के निर्माण के लिए स्त्री को ऐसी शिक्षा दे और स्वयं तदनुकूल आचरण करके उसके साथ-साथ, उसे प्रति पग पर आश्वस्त करते हुए, उसे सदैव अपने प्रेम और विश्वास की छाया में रखते हुए, चले। इससे गृहस्थ-जीवन का स्वर्ग बनेगा और प्राणो में अमृत का झरना बहने लगेगा।

: १८ :

सम्मिलित कुटुम्ब और उसके दुःख-सुख

आधुनिक सभ्यता ने सम्मिलित कुटुम्ब के ऊपर बहुत बुरा असर डाला है। धीरे-धीरे उसका लोप ही हो रहा है। कुछ जीविकोपार्जन के संघर्ष के कारण, कुछ मानसिक वृत्तियों के कारण और कुछ नागरिक जीवन बिताने की तीव्र आकाक्षा के कारण अलग-अलग रहने का भाव लोगो में बढ़ता जा रहा है। जो लोग नौकरियाँ करते हैं, उनका तो अब कोई अपना गाँव, शहर या घर रह ही नहीं गया है। आज यहाँ, कल वहाँ। जिनके घर हैं, वे भी वर्षों मे कभी एकाध बार, मेहमान की तरह या फिर सैलानी की तरह, उधर आ निकलते हैं—उनका अपने पूर्वजों के घर के प्रति कोई तीव्र आकर्षण या निजत्व भी नहीं रह जाता। उनका कौटुम्बिक व्यक्तित्व भी नष्ट हो जाता है।

पर यह तो शिक्षित लोगो तक ही है। गाँव के लोग कलकत्ता, बम्बई तथा बड़े-बड़े शहरों मे जाते है। कमाते-खाते हैं पर ध्यान उनका घर की ओर ही लगा रहता है। 'कमठ-अंड की नाईं' वे अपने गाँव-घर में केन्द्रित होते हैं। जो बचाते हैं, वह गाँव में जाता है। साल-छः महीने पर घर आते हैं। उनका निजत्व, उनका कुटुम्ब सब बना रहता है। इसमें स्वत्वरक्षण की, अपनापन की भावना होती है। पर यह भी ठीक है कि आर्थिक अवस्था भी इस कार्य में उनकी सहायता करती है।

मतलब, जो हो, इतना तो हम देख ही रहे हैं कि पारिवारिक जीवन या संयुक्त कुटुम्ब-प्रणाली धीरे-धीरे उठती जा रही है। लोग अपना घर अलग बनाना चाहते हैं—अपने-अपने ढंग पर पनपना

चाहते है। अभी बहुत दिन नहीं हुए जब लड़कियो के माता-पिता वर की खोज में निकलते थे तो ऐसा घर तलाशते थे जो भरा-पूरा हो। जिसमें लड़का इकला न हो; माता-पिता हों, भाई-भौजाई हों, जेठानियाँ हों, ननदे हों।

मिटती हुई संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा

अकेले लड़के को लड़की देना कोई पसन्द न करता था। एक व्यावहारिक विचार भी इसके साथ काम करता था। लड़की का जीवन सिर्फ पति की सनकों पर निर्भर नहीं करता था। अगर कभी किसी कारण से पति-द्वारा वह उपेक्षित हो या दैवेच्छा से पति की छाया उस पर से उठ जाय तो ऐसे समय उसके दुःख के दिन उसे उतने भारी न प्रतीत हों—बाल-बच्चो तथा कुटुम्ब के अन्य लोगों के प्रेम के बीच वह अपने जीवन की हरियाली कायम रख सके। उस ज़माने में कुटुम्ब की एक विशेषता यह थी कि जो घर में सबसे बड़ा होता था उसकी इच्छा से ही घर का शासन चलता था। जैसे अगर किसी का बड़ा भाई हुआ तो फिर चाहे वह बेकार ही हो और छोटे भाई की कमाई पर ही घर का खर्च चल रहा हो, घर का 'सरदार' या मुखिया बड़ा भाई ही माना जाता था, उसी का निर्णय या आदेश घरेलू मामलों में अन्तिम माना जाता था। कमाऊ छोटा भाई श्रद्धा और प्रेम-सहित अपनी कमाई उसकी सेवा में रख देता था। पर अब वे बातें नहीं रही। अब जो कमाता है वह सोचता है, और उससे भी ज्यादा उसकी घरवाली सोचती है कि कमावें हम लोग, और हुक्म चलावे दूसरे। हुक्म की बात तो दूर रही अब मन चाहता है कि ये यहाँ से खिसकें; अच्छे बोझ बने हुए हैं। पत्नी सोचती है—इनके कारण मै सुख के दिन नहीं देख सकती; इतने दिन बीत गये, हाथ-पाँव में कोई गहना नहीं—चार पैसे बचते नही कि अपने बच्चों के लिए जुटा कर रखूँ कि समय पर काम आवे। इस तरह के भाव प्रबल होते जाते है; यहाँ तक कि बच्चों से भी बड़े-छोटे का भाव दूर हो जाता है। वे भी समझने लगते हैं कि हमारा बाप असली चीज है—उसी का घर है; वही कमाने वाला है। फिर तो एक तरह का

विष सारे कुटुम्ब के अन्दर ही अन्दर फैलने लगता है, बीच-बीच में चखचख भी होती जाती है और अन्त में चूल्हे-चौके अलग हो जाते हैं और इसकी जगह कि भाई-भाई के लिए जान दे, वे एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं और आपस में मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते।

ऐसा नहीं कि पहले सब देवता ही थे या आपस मे झगड़े नही होते थे पर ऐसी बातें पहले समय में अपवाद थीं। जिस घर मे इस तरह की घटना होती थी, उसकी मर्यादा गाँव के समाज मे गिर जाती थी। लोग कहते थे कि कलियुग आ रहा है, अब लड़का बाप को और भाई भाई को जवाब देने लगा। कुछ अनहोनी और अचभे की बात लोगों को मालूम होती थी। समाज की चलती हुई मर्यादा को एक धक्का-सा लगता था। अब खुले आम वही होता है और निष्ठुरता तथा निर्लज्जता के साथ होता है। बाते इतनी आम हो गई हैं कि अब वे किसी को अनहोनी और अचरज नहीं मालूम पड़तीं।

मेरी बातें सुनकर पढ़े-लिखे तथा नई पौध के लोगों को हँसी आयेगी। लोग कहेंगे, कहेंगे क्या कहते ही हैं, कि वह दकियानूसी सामन्ती जमाना था; आज का युग व्यक्तिगत स्वतंत्रता का है। पहले व्यक्ति रुद्ध था—बँधे पानी की तरह सड़ा करता था; अब वह उन्मुक्त होकर लहराता है। उसको अपनी उन्नति करने का अवसर क्यों न मिले और क्यों एक आदमी पर दूसरा बोझ हो पड़े और दूसरा क्यों उसका बोझ सँभाले।

एक तर्क

जब ऐसी बातें सुनता हूँ तो मेरे ओठों पर दुःख और आन्तरिक व्यथा की हँसी फूट पड़ती है। मैं समझता हूँ कि हमारे तपस्वी ऋषियो की कृपा, शास्त्रों के आदेश तथा समाज-निर्माताओं के लगातार परिश्रम से सैकड़ों हजारों वर्ष मे जिस कुटुम्ब-सस्था का जन्म और विकास हुआ था वह भारतीय समाज-पद्धति के सचालन मे सब से जबरदस्त भाग लेती थी—वह उसका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अविभाज्य अंग बन गई

थी। और उसी के आधार पर समाज की सम्पूर्ण सभ्यता का निर्माण हुआ था। आज उस पर चारों ओर से आक्रमण हो रहा है।

समाज में धन का जैसा महत्व आज है वैसा पहले कभी न था। कुटुम्ब के लिए भी धन वा धन कमाने वाला उतना महत्वपूर्ण न था।

धन का महत्व

जितना कुटुम्ब का बड़ा-बूढ़ा दुनिया के अनुभवों मे तपा हुआ पथ-प्रदर्शक। इसलिए कमाने वाले भी उसके आदेश और राय के अनुसार चलना धर्म समझते थे। जो धन कमाकर लाता था, वह सिर्फ यह समझता था कि औरों की तरह मै भी अपना कर्त्तव्य कर रहा हूँ। उस धन पर अपना कोई अधिकार वह न समझता था। उसका जो था, कुटुम्ब का था और कुटुम्ब के पास जो अनुभव, सेवा, प्रेम और व्यवस्था की पूँजी होती थी वह उसकी सहायता और रक्षा में काम आती थी। सबका जीवन अलग-अलग ढंग पर विकसित होते हुए भी, सब के लिए था। इसीलिए थोड़ी पूँजी से बड़ा काम निकलता था। परस्पर सुमति थी।

अब कमाने वाला कुटुम्ब का अधिनायक है। स्वभावतः अपने लिए, अपने बच्चो के लिए अधिक खर्च करने, अधिक सुविधाएँ जुटाने,

अब कमानेवाला प्रधान है

अधिक अच्छा जीवन बिताने की प्रवृत्ति उसमें बढ़ती है। सामञ्जस्य, मेल, संघटन की जगह विभेद-बुद्धि का प्रयोग होता है। धन कौटुम्बिक मर्यादा की कसौटी बन गया है। धीरे-धीरे कमाने वाले मे अहकार का भाव पैदा होता है। वह सोचता है; मै इनको खिला रहा हूँ—ये मेरी कृपा पर जीवित है। फिर ऊँच-नीच यानी भेद की वृत्ति आती है। चखचख चलने लगता है; झगड़े होते है। खीझा हुआ पति स्त्री को शह देता है। स्त्री की जिह्वा चलती है। 'हमारा ही खाकर हमारी छाती पर मूंग दलना।' बस, हृदयों के बंधन कट जाते हैं; ग़लतफ़हमियाँ बढ़ती हैं। रोज की कटकट शुरू होती है। और अन्त में कुटुम्ब के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। कमाने वाले को हर तरह की सेवा पैसे से प्राप्त कर लेने का

गर्व होता है। पर जीवन के संघर्ष मे यह सर्वदा काम नहीं आता। जीवन प्रेम, स्नेह, सेवा और सहानुभूति की परिधि से दूर हटकर अपना तेज और अपनी अन्तःशक्ति खो बैठता है।

इस आपदा का सामना करना और इसे हटाना प्रत्येक समझदार गृहस्थ का कर्त्तव्य है। सच्चे, तृप्त और भरे-पूरे गृहस्थ-जीवन के लिए सम्मिलित कुटुम्ब सामान्यतः आवश्यक है। इसलिए

गृहलक्ष्मी

पति का कर्त्तव्य है कि वह अपने माता-पिता के प्रति आदर, श्रद्धा और विनय का भाव रखे। और स्त्री को भी माता-पिता तथा गुरुजनों से प्रति आदर का भाव रखने की शिक्षा दे। जो गृहलक्ष्मी होती है वह सास-ससुर को माता-पिता के समान समझकर मन लगाकर उनकी सेवा करती है और उनका आशीर्वाद पाकर उसका जीवन खिल उठता है। उस गृह का भविष्य अंधकारमय है जिसमे बहू को सास-ससुर का आशीर्वाद प्राप्त नहीं है या जिसमे गुरुजनों के प्रति विनय और शिष्टाचार का अभाव है। यह याद रखना चाहिए कि ईमानदारी और सहनशीलता से की हुई सेवा कभी निष्फल नहीं होती। गृहलक्ष्मी को सेवा मे सदैव आनन्द आता है। वह कुटुम्ब मे भेद और कलह नहीं बल्कि अपने प्रेम, उदारता सदाशयता, सेवा और प्यार तथा मधुर बोली से विभेद का विष कहीं हो तो उसे भी दूर कर देती है। बिल्कुल सच है कि ऐसी बहू को पाकर गृह के दुर्दिन दूर हो जाते हैं और घर मे सुख तथा सहृदयता, स्नेह तथा सम्पन्नता का राज्य कायम हो जाता है।

ससार में सबका एक मत नहीं होता। यह संभव है कि एक या ज्यादा मामलों मे तुम्हारा मत माता-पिता के मत से न मिलता हो। शिक्षित-वर्ग मे ऐसी बातें प्रायः दिखाई देती है।

मत-भेद में उदारता

पहले तो मत-भेद की जड़ क्या है, इसे समझने की शान्ति और विचारपूर्वक कोशिश करनी चाहिए; फिर समझकर इसके लिए पूरी चेष्टा करनी चाहिए कि मत-भेद दूर हो जाय

परन्तु यदि वह ऐसा हो कि दूर होने की संभावना न हो तो फिर दोनों को अपना-अपना मत मानते हुए भी एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति और उदारता का भाव रखना चाहिए। कुटुम्ब भी एक तरह का समाज़ है और समाज में भी तो सभी तरह की विचार-धाराएँ रखनेवाले आदमियों के साथ हमारा सम्पर्क होता है; जान-पहचान, घनिष्टता और मित्रता भी हो जाती है। तब यह क्यों असंभव हो कि जिन में एक ही खून-मांस है वे मतभेदों के रहते हुए भी प्रेम और शान्ति का जीवन न बिता सकें? क्या अपने मत को मानने, अपने विश्वास की रक्षा करने के लिए दूसरो की उपेक्षा आवश्यक है? तुम्हारा मत और विश्वास जो भी हो, तुम्हें प्रत्येक काम में माता पिता, भाई तथा अन्य गुरुजनों का आशीर्वाद अवश्य प्राप्त करना चाहिए। तुम्हें बातचीत, तर्क और व्यवहार में उनके प्रति विनयी और शिष्ट होना चाहिए। अपने गुरुजनों के प्रति उद्धतता या उद्दण्डता दिखाना आजकल, बहुतेरे युवक, स्वतंत्र चिन्तन का चिह्न समझते है। पर असल बात यह नही है। जहाँ ज्ञान है, कर्मण्यता है, सच्चाई और ईमानदारी है तहाँ दूसरों के प्रति उपेक्षा और अशिष्टता का भाव भी नहीं होता। दूसरी बात यह है कि संसार के अनेक विषयों मे माता-पिता के अनुभवों से लाभ उठाना प्रत्येक युवक पति का कर्त्तव्य है। प्रायः नये-नये सिद्धान्तों, सामाजिक विचारों, से युवक प्रभावित होता है पर उसे इन बातों का केवल किताबी ज्ञान होता है जो दुनिया के संघर्ष में अक्सर निकम्मा साबित होता है। इसके विरुद्ध बड़े-बूढ़े लोग दुनिया देखे हुए होते हैं; उनके सामने से वैसे अनेक व्यक्ति, दृश्य और बातें गुजर चुकी है इसलिए उनकी बातें अनुभव की आग में तपी हुई होती हैं। उनपर पूरी तरह से ध्यान देना हर युवक पति का कर्त्तव्य है।

सम्मिलित कुटुम्ब में दुःख-सुख तो लगे ही रहते हैं। उसकी जिम्मेदारियाँ भी काफ़ी हैं। इन जिम्मेदारियों को निबाहना सरल काम नहीं है। चार जवान मर्द हैं। इनमें आज एक बीमार है तो कल

दूसरे की नौकरी छूटी हुई है। एक ठीक हुआ तो दूसरे पर कोई विपत्ति आई। किसी को खाँसी है, किसी को बुखार चढ़ा है। किसी बच्चे के दाँत निकल रहे है, कै-दस्त हो रहे है; कही कुछ और बात है। मतलब चिन्ता बढ़ाने वाली एक न एक बात लगी ही रहती है। उस पर कभी-कभी चख-चख भी हो जाती है। जब काम का बोझ ज्यादा होता है; चिन्ताएँ बढ जाती हैं तब जरा-सी बात किसी ने कह दी, वही काँटे-सी चुभ जाती है। बुखार चढ़ जाता है। घर मे चार स्त्रियाँ हैं। एक बीमार पड़ गई; दूसरी प्रसूता है, तीसरी कही चली गई है। चौथी पर सारा बोझ आ पड़ा। कामकाजी और कमाऊ आदमी समय पर अपने काम पर जाना चाहता है; उधर लड़कों को स्कूल जाना ही चाहिए। बस, चारों तरफ से उस स्त्री की खींचातानी होती है। ऐसे समय जरा-सी बात मे मामला बिगड़ जाता है। बातें तूल पकड़ लेती है। मतलब मेरे कहने का यह है कि विश्वास और मतभेद की बात छोड़ दें तो भी सम्मिलित कुटुम्ब की कठिनाइयाँ कुछ कम नहीं हैं।

जिम्मेदारियाँ और कठिनाइयाँ

परन्तु इसके साथ ही इसका दूसरा पहलू भी है। कुटुम्ब में चार भाई हैं। दुःख-सुख तो दुनिया में, कहीं रहे, लगा ही रहता है। एक जगह रहने से सबका दुःख और सबका सुख कुछ न कुछ बँट जाता है। क्योंकि एक पर आई विपदा सारे कुटुम्ब पर आई विपदा होती है। आज एक भाई की नौकरी छूट गई तो सारा कुटुम्ब उसे अनुभव करता है। एकता और सहानुभूति होने से, यह बेकारी की चोट वह सहज ही झेल सकता है क्योंकि एक बेकार है, तो दूसरे तो काम मे लगे हुए है। आज वह बेकार है, कल दूसरे पर ऐसी विपत्ति आ सकती है। इसीलिए बिना अहंकार के सब एक दूसरे के बोझ मे शरीक होने को तैयार होते हैं। इकले जीवन मे एक पर जो पड़ती है, उसी को भोगनी पड़ती है। यहाँ दुःख-सुख सब मे एक दूसरे का ध्यान, चिन्ता, सेवा और सहानुभूति

दूसरा पहलू

प्राप्त है। प्रत्येक सिर्फ अपने लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी जीता है। प्रत्येक को भावनाओं और तूफानों पर संयम रखने की शिक्षा मिलती है। प्रत्येक को एक आश्वासन और एक सहारा है। यहाँ सबके प्रति अपनेपन का भाव लेकर चलना पड़ता है।

ऐसे कुटुम्ब का निर्माण कठिन है। पर उसे बनाने में तुम्हें पूरा हिस्सा लेना चाहिए। तुम्हें स्वयं माता-पिता और गुरुजनों का आदर

तुम्हारा कर्त्तव्य

करना चाहिए तथा अपनी स्त्री को भी इसी साँचे मे ढालना चाहिए। प्रत्येक को अनुभव हो कि तुम पूरी सचाई के साथ उसके दुःख-दर्द में शरीक हो। प्रत्येक के साथ हँसकर बोलना, और उसके प्रति निजत्व का भाव रखना इसकी कुंजी है। जो कुछ सेवा, सहायता, पथ-प्रदर्शन दूसरों को तुम दे सको, अवश्य देने को तैयार रहो। तुम्हारा कर्त्तव्य तुम्हारी स्त्री तक ही नहीं है। तुम्हारे निर्माण मे तुम्हारे माता-पिता, भाई-भौजाई, बहिनों सभी का हाथ है। अब जब तुम योग्य हुए हो, जब तुममें शक्ति है, जब तुम सामर्थ्यवान हो, तब सदा उनको याद रखना तुम्हारा कर्त्तव्य है। क्षुद्र स्वार्थ की भावनाएँ अपने अन्दर न आने दो। माना कि आज तुमको माँ-बाप पुराने और खूसट-दिमाग मालूम पड़ते हैं पर यह मत भूल जाओ कि उन्होंने तुमको अपनी गोद में खिलाया है। एक दिन जब तुम बिल्कुल असहाय थे तो उन्होंने कलेजे के टुकड़े की तरह, तुम्हारी रक्षा की। दिन को दिन नहीं समझा; रात को रात नहीं। तुम्हारी चिन्ता और शुभाकांक्षा मे उनकी कितनी रातें बीती हैं। तुम्हारी शिक्षा के लिए उन्होंने अपना पेट काटकर दिया है। तब आज यदि तुम उनके स्नेह का बदला चुकाते भी हो तो कुछ उपकार नहीं करते। केवल उसे लौटा रहे हो जो तुम्हें दिया गया है। इसलिए यदि भगवान् ने तुम्हें शक्ति और सामर्थ्य दिया है तो निरभिमान और विनयी होकर कर्त्तव्य-पालन करो।

यदि हर एक आदमी इस तरह ईमानदारी के साथ सबका ध्यान रखे तो कुटुम्ब शान्ति और प्रेम का आगार बन जायगा।

: १९ :

यौवन की सन्ध्या में

गृहस्थ जीवन की असली कसौटी तो तब शुरू होती है जब विवाह को चन्द साल गुजर जाते है। तब कल्पनाओं के रंगीन पंखों पर समय के थपेड़े लगते हैं। जब नई-नई कठिनाइयाँ, नई-नई समस्याएँ सामने आती हैं; बच्चों के कारण जिम्मेदारी बढ जाती है; जवानी का नशा उतरने लगता है, वे बातें, वे कल्पनाएँ, वह हर चीज से दिल मे गुदगुदी पैदा होने वाली कैफियत, वे उमगे, वह चढी नदी की धारा-सी जवानी नहीं रह जाती, जब जीवन के मार्ग मे चलते हुए पॉव रुकते हैं, जीवन की आग ट डी पड़ने लगती है, आदर्श और स्फूर्ति का प्रकाश बुझ जाता है और देखते हैं कि सामने चटियल मैदान मे मार्ग चला ही चला गया है, उसका अन्त कहीं दिखाई नहीं देता और अब चलना ही चलना है।

चद साल बाद

आदमी इन मुसीबतों के सामने अपने को भूलने लगता है। उसके आदर्श हवा हो जाते है; उसकी कल्पनाएँ मुरझा जाती हैं, उसके दिल में सूनापन छा जाता है। तब वही दुनिया, जो प्रकाश और रंग से पूर्ण थी, जो दिल को लुभाती थी, मरघट-सी काटने दौड़ती है। शरीर थका-सा, दिलों के अरमान सोये-से। वही तेज-तर्रार आदमी मास के एक लोथड़े सा किसी तरह जिन्दगी के रास्ते पर घिसटता चलता है। ज़िन्दगी दूभर हो जाती है। अच्छी बाते बुरी लगती है। दुनिया शका, सन्देह और अन्धकार से पूर्ण दिखाई देती है। चारो तरफ बुराई ही बुराई नजर आती है।

कैसा भयानक परिवर्तन !

यह अवस्था जीवन के लिए घातक है। यह ज़हर है, आदमी को बुरी तरह मारता है और न केवल उसके शरीर बल्कि उसके दिल-

दिमाग़ को भी खा जाता है। क्योंकि इसमें जीवन का प्रत्येक क्षण निराशा, उत्पीड़न, शंका तथा भय से पूर्ण होता है।

ऐसी अवस्था से बचना हर समझदार गृहस्थ का काम है। और मैं कह सकता हूँ कि यह बिल्कुल अपने बस की बात है।

आजकल की जिन्दगी इतने संघर्षों और चिन्ताओं से भरी हुई है कि अगर आदमी अपने प्रति सावधान नहीं रहेगा तो किसी तरह बच नहीं सकता। कठिनाइयों से पूर्ण इस दुनिया में तुम्हारा स्वास्थ्य ही तुम्हारा साधन और पूँजी है। स्वास्थ्य से मेरा मतलब मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य से है। और इस स्वास्थ्य को क़ायम रखने में कुछ ऐसा खर्च भी नहीं है। स्थायी यौवन का रहस्य बिल्कुल सरल है।

जंगली स्त्रियों को देखो!

तुमने कभी जंगलों के पास रहनेवाली उन जातियों को देखा है जिन्हें हम सभ्य लोग, अपनी आत्मवचना मे, घृणा-वश, जंगली कह कर पुकारते हैं। इन लोगों को खाने को दूध-घी-मलाई नसीब नहीं होती फिर भी वे बीसों मीलों की यात्रा बिना थके हुए करते हैं। उनकी स्त्रियाँ, जिनके तन पर पूरे कपड़े नहीं, हिंसक जन्तुओं से भरे हुए जंगलों में निर्भय चली जाती हैं और लकड़ियाँ काट लाती है। इनके शरीर ठोस फ़ौलाद-से होते हैं।

यह पौरुष!

पूर्वी युक्तप्रान्त के काशी-जैसे पुराने नगरों मे बड़े-बड़े पत्थर के टुकड़े कंधों पर लटकाकर ले जानेवाले पेशराजों को तुमने देखा है? भुजाओं पर वल्लियाँ छिटक रही हैं; सीना उठा हुआ, वैशाख-जेठ की गरमी में नगे पाँव, नंगे बदन, केवल डेढ़ गज की पगड़ी बाँधे पत्थरों को उठाये चले जा रहे हैं—उसी गर्मी मे जब हम खस की टट्टियों के अन्दर बैठे नगरों का तापमान मिला रहे होते है। और गर्मी इनका बाल बाँका नहीं कर पाती।

नहीं, एक पठान के बच्चे को देख लो। कैसा कठोर जीवन है इनका। फिर भी विदेश में यों रहते हैं जैसे गीदड़ों में सिंह के बच्चे छोड़ दिये गये हों। अपने देश में, हजारों की अपनी तादाद को लिये हुए, इनके क्रुद्ध चेहरे देखते ही हमारा खून सूख जाता है। सीमाप्रान्त के पश्चिम की पहाड़ियों पर ये यों चढ़ जाते है जैसे माँ की गोद मे चढ़े जा रहे हों।

ये पठान बच्चे !

मुझे अपने लड़कपन की याद है, जब गाँव मे रहते थे। हमारे यहाँ एक मजदूरनी आती थी। एक दिन सुबह वह नहीं आई। तीसरे पहर आई तो मालूम हुआ कि सुबह उसके बच्चा हुआ है। और अब सब कामो से निपट कर कपड़े बदल वह आ गई है। आजकल की सभ्य औरतें इसे सुनकर दाँतों तले अगुली दबायेंगी, पर कितनी ही बार सन्थालों और गोड़ों में देखा गया है कि स्त्रियाँ काम कर रही है; एकाएक दर्द हुआ। पेड़ के नीचे किसी झुरमुट मे चली गईं और वहीं बच्चा हो गया!

मेरे एक मित्र है जो कहा करते हैं कि दस बच्चे पैदा करके जो स्त्री ऐसी लगे मानो परसाल इसका व्याह हुआ है, उसे ही मै सुन्दरी मानता हूँ। एक दिन उन्होंने मुझे एक मजदूरनी दिखाई जो ग्यारह बच्चों की माँ थी और उसकी अवस्था चालीस के लगभग थी पर देखने मे वह बीस से ज्यादा नहीं मालूम पड़ती थी। उसमें वही शील, संकोच, लज्जा और तरलता थी जो यौवन के आरम्भ मे होती है।

दस बच्चो की सुन्दर माँ

आखिर यह क्यों? क्यों इनके सामने हमारे युवक असमय ही वृद्ध मालूम पड़ते हैं और क्यों हमारी स्त्रियाँ सम्पूर्ण आधुनिक चिकित्सा एवं औषध-विज्ञान की सहायता के बावजूद जीवनहीन, प्राणहीन, अनेक स्त्री-रोगों से ग्रसित, पीलिया और रक्तहीनता की शिकार दिखाई पड़ती हैं? क्यों ये मातृत्व की जिम्मेदारी वहन करने के अयोग्य—उससे दूर भागने वाली हैं? और यदि बच्चा होता भी है तो बच्चे और उनकी

दोनों की जिन्दगी दूभर हो जाती है—दोनों अपनी क़िस्मत को रोते हैं !

पुरुषों का हाल तो और भी गया-बीता है। दस वर्ष में उनकी आँखें ज्योतिहीन होने लगती है; सिर में चक्कर आने लगते हैं; छाती बैठी; पेट निकला हुआ। इनकी वाणी निर्जीव; इनका विनोद कुरुचि-पूर्ण। न उमंगें हैं; न साहस है। जब बोलते हैं, बुजुर्गों की बातें बोलते हैं या फिर मूर्च्छा से भरे हुए वचन। न अपने अन्दर विश्वास है, न दूसरों के अन्दर विश्वास है। ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी जादूगर ने कुछ चेतनाहीन चलती-फिरती पुतलियाँ सामने पैदा कर दी हों। पौरुष इनसे लज्जित है और साहस को इन्हें देख शर्म आती है।

नकली जिन्दगी

इन दोनों 'टाइप' के प्राणियों मे इतना अन्तर क्यों है ? सीधी-सी बात यह है कि हमने अपनी सारी जिन्दगी नकली आधारों पर खड़ी कर रखी है। हमारा जीवन बिल्कुल अप्राकृतिक हो गया है। सत्त्वहीन और दूषित अन्न तथा खाद्य-सामग्री ने हमें खोखला कर दिया और जो बचा उसे झूठी दवाइयों, असंयम तथा अपने-आप पैदा की हुई चिन्ताओं ने खा डाला। शुद्ध हवा, धूप, अच्छे विचार और हितकर भोजन से आज की सन्तति दूर होती जाती है। जब तक जवानी रहती है, लोगों की बातें कड़ुवी लगती है पर ज्यों ही असमय बुढ़ापा धर दबाता है सब सपने हवा हो जाते हैं।

मैं कहता हूँ, तुम अप्राकृतिक जिन्दगी से दूर भागो। अगर तुम चाहते हो कि पचास साल की उम्र में भी तुममें वही दिल की रवानी, वही शरीर की विस्मृति, वही यौवन हो तो जुआरी के दाँव मत खेलो या झूठी वा नकली दवाइयों मे पैसे मत बर्बाद करो।

आत्मविश्वास

यौवन को स्थायी करने वाली सबसे पहली चीज अपने अन्दर का विश्वास है। आत्म-विश्वास जीवन के समस्त निर्माण की नींव है। और यह आत्म-विश्वास वस्तुतः ईश्वर में दृढ़ विश्वास का द्योतक है।

जिसमें ईश्वर के प्रति, किसी अलौकिक लक्ष्य या तत्त्व के प्रति आस्था नहीं है, उसमे आत्म-विश्वास भी संभव नहीं है। इसलिए सबसे पहले तुम ईश्वर में विश्वास रखो।

चिन्ता से दूर रहो!

दूसरी बात यह है कि अच्छा-बुरा जब जो आ पड़े उसे हँसते हुए सहन करो। याद रखो, दु:ख-सुख तो लगे ही रहेंगे। जब से दुनिया बनी, आज तक कोई ऐसा प्राणी इसमे पैदा नही हुआ जिसने सुख ही सुख उठाया हो। सुख है तो दुःख भी है; फूल है तो काँटे भी हैं, प्रकाश है तो अँधेरा भी है। रोकर सहो तो, हँसकर सहो तो, सहना तुम्हे ही है। तब कैसी मूर्खता की बात है कि तुम रो-रोकर दिन बिताओ, अपने को घुला दो और इतना कमजोर कर लो कि आगे की विपत्तियाँ तुम्हें आसानी से निगल जायँ। चिन्ता वह साँपिन है जो घूँट-घूँट आदमी का सारा खून पी लेती है। कभी इसके चक्कर मे मत पड़ो। ऊपर से यह बड़ी लुभावनी होती है, आदमी सोचता है, रो लेने से जी हलका हो जायगा। अपने मन की लगाम ढीली कर देता है। बस; यही क्षण जीवन के लिए घातक होता है। जिसने शुरू में ही दिल पर काबू नहीं किया वह बाद मे भी न कर सकेगा। व्यर्थ की चिन्ता से सदा यों बचो जैसे आदमी गलित कुष्ठ से दूर भागता है।

परन्तु केवल चिन्ता न करना ही काफी नही है। उलटे आदमी को हँसमुख, प्रफुल्ल, होना चाहिए। याद रखो, हँसी से बढ़कर स्वास्थ्य को कायम रखनेवाली दूसरी चीज नहीं है। प्रतिदिन एक बार दिल खोलकर, बिना किसी बाधा-बंध के हँसना सैकड़ो 'टानिकों'—पुष्टइयों—से बढ़कर है। यह वह अमृत है जो शरीर की प्रत्येक शिरा में नवस्फूर्ति, नवजीवन भर देता है, और दिल की बुझती हुई रोशनी को स्नेह की भाँति तेजयुक्त और प्राणवान कर देता है। मुक्त हास्य जीवन की सर्वोत्तम देन है। विनोद वृत्ति एक श्रेष्ठ विभूति है। गाधी जी ने एक बार कहा था कि

हँसना सर्वोत्तम टानिक है!

यदि मुझमें विनोद की वृत्ति न होती तो अब तक मैं कभी खत्म हो गया होता। निश्चय ही यातना की क्रूरता और स्थिति की कठोरता को यह हलका कर देती है और जीवन का बोझ इतना पीड़ाकारी नहीं मालूम पड़ता।

हँसना सर्वोत्तम टानिक है !

हँसमुख आदमी उन बातों को चुटकी में उड़ा देता है जो मनहूस के कलेजे में चुभ जाती और वहाँ वर्षों काँटों की तरह करकती रहती हैं। अगर वह ऐसा न करे तो घर में मुर्दनी और अँधियारी छा जाय। कठोर बातों को वह हँसकर दूर कर देता है। उसकी मुस्कराहट, उसकी हँसी दूसरे के मुँह से निकले हुए व्यंग के विष को नष्ट कर देती है। वही हँसी-खुशी, वही हरियाली घर पर छा जाती है।

हजारों घर इसे न समझने की वजह से मिट्टी में मिल गये हैं और हर रोज मिलते जा रहे हैं। कोई गुण, कोई विद्वत्ता गृहस्थ-जीवन के सुख की उतनी गारंटी नहीं कर सकती जितनी सदा मस्त रहने का, हँसमुख स्वभाव करता है। अनेक मूर्खों की स्त्रियाँ सुखी होती हैं और अनेक सज्जन तथा विद्वान् आदमियों की औरतें अपना करम ठोंकती देखी जाती हैं। वैसे भी जो आदमी मस्त रहता है, कठिनाइयों

और मुसीबतों की ज्यादा परवाह नहीं करता वह सुखी रहता है; रोग और शोक उससे दूर भागते हैं और जो चिन्तनशील होता है वह दुखी रहता है।

यदि तुम चाहते हो कि वह जवानी, जो ईश्वर के वरदान की तरह तुम्हें मिली है, बहुत दिनों तक बनी रहे तो हँसने की, दिल खोलकर हँसने की, आदत डालो।

तीसरी बात यह है कि जहाँ तक हो सके नकली जिन्दगी से दूर रहो। अगर देहात में हो तो वहाँ की शुद्ध हवा, धूप, खुले मैदानों का खूब उपयोग करो। अगर शहर में रहते हो, जीविका के लिए शहर मे रहने को विवश हो, तो भी शहरी—शहराती बनने की कोशिश न करो। जहाँ तक हो सके, सीधा-साधा जीवन बिताओ, शहर की बुराइयों से दूर रहो। एक आम बुराई जो शहरों के बाशिन्दों मे पाई जाती है, यह है कि वे रात को देर से सोते है और सुबह देर से, धूप चढ़ जाने के बाद उठते हैं। पढ़े-लिखे और नई रोशनी के लोगों मे यह बुराई और बढ़ती जा रही है। क्लबों, नाटक-सिनेमाओं और मित्रमण्डलियों के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करने में आधी रात बीत जाती है; फिर कुछ वक्त पलग पर करवटें बदलने मे, नावेलबाजी या इधर-उधर मे जाता है; तब सुबह ८-९ बजे उठना स्वाभाविक ही है। ये लोग जब सुबह उठते है तो इसकी जगह कि रात के विश्राम ने इन्हें तरोताज़ा कर दिया हो, इनका चेहरा पीला होता है; आँखे निस्तेज होती है और मुँह से जँमाइयाँ ले रहे होते है। शरीर मे आलस्य और सुस्ती भरी होती है। काम करने की ललक दिल में नहीं उठती। हाँ, कहीं नौकरी है तो जीविका के लिए तैयार होना ही पड़ता है। अभी हाल मे, एक अच्छे डाक्टर के यहाँ सुबह साढ़े आठ बजे गया तो देखता हूँ कि अभी दातुन भी नहीं हुए है। अखबार और सिगार का शौक चल रहा है। मेरा मन इस आदमी के चिकित्सा-ज्ञान के प्रति घृणा से भर गया।

प्राकृतिक जीवन

यह नहीं कि किसी विशेष कार्य से वह रात को जगे हों; यह उनका नित्य का क्रम था।

याद रखो, बारह बजे रात के पूर्व की नींद शरीर को जितना विश्राम देती है, जितनी पूर्ति करती है उतनी बाद की नहीं। और चार बजे सुबह के बाद की नींद साधारण स्वस्थ आदमी के लिए हानिकारक है। इसलिए ९ बजे और ज्यादा से ज्यादा दस बजे तक तो, सो ही जाना चाहिए और चार-पाँच बजे सुबह तक जरूर उठ जाना चाहिए। सोने के पहले मुँह-हाथ-पाँव धो लो। सबसे अच्छा तो नहा लेना है पर उसकी तैयारी न हो तो इतना ही सही। इसके बाद सब चिन्ताओं को छोड़कर प्रभु का स्मरण करो और शान्त चित्त से सो जाओ। सुबह उठोगे तो शरीर फूल-सा हलका लगेगा। उठकर मुँह-हाथ धो लो, फिर भगवान् का स्मरण करो और निश्चित करो कि आज पूर्ण प्रसन्न रहूँगा और अच्छे विचारों तथा अच्छे काम में मन लगाऊंगा। इसकी दृढ़ कल्पना करो कि वातावरण में चारों ओर शक्ति की तरंगें भरी हुई है और सब तरफ से आकर मेरे अन्दर प्रवेश कर रही है; मैं प्रति क्षण शक्तिमान हो रहा हूँ; नीरोग हो रहा हूँ। कुछ दिनों में देखोगे कि कैसा अद्भुत परिवर्तन तुममें होता है।

जल्दी सोना, जल्दी उठना

इसके बाद कहीं खुले मे घूमने निकल जाओ। चलो, दौड़ो, बच्चों की तरह किलकारियाँ मारो। सुबह का घूमना शाम की शैर से सौगुना अधिक गुणकारी है। उस समय धूल-धक्कड़ नहीं होती; फिर प्रातः काल की हवा शुद्ध होती है। इस स्वच्छ निर्मल हवा को खूब पीओ; अपने फेफड़ों में इसे भरो; शरीर में लगने दो। इस का प्रत्येक श्वास अमृत की घूंट है। यह फेफड़ों को बल देता, हृदय को मज़बूत करता और रक्तसंचार को नियंत्रित करता है। घूमते समय विश्वासपूर्वक सोचते रहो कि तुम्हारे प्रत्येक अंग में नया, ताज़ा, लाल खून तेजी से

वायुपान

दौड़ रहा है, प्रत्येक अंग, अवयव और इन्द्रिय बलवान् हो रही है। नई स्फूर्ति आ रही है। घूमते समय सदा अच्छे विचारो को मन मे स्थान दो। किसी बुरे, प्रतिहिंसा या द्वेष के भाव से मन को मलिन न होने दो, तुम मे जो प्रेम और सहानुभूति है उसे फैलने दो, ऊपर आने दो, चारो ओर छाने दो।

इसमे खर्च कौड़ी का नहीं है। यह कोई गुप्त नुस्खा नहीं है। हर आदमी इसे कर सकता है। आजमाकर देखो, तुम्हारी मिट्टी की काया कंचन की हो जायगी और हृदय तथा मस्तिष्क पुष्ट एवं विकसित होगा। स्वास्थ्य और सौन्दर्य बहुत दिनों तक कायम रहेगा और वह जवानी, जो जिन्दगी को स्वप्नों पर लिये फिरती है, जल्द तुम्हारा साथ न छोड़ेगी और अगर तुमसे रूठकर दूर जा चुका है तो लौट आयेगी।

ये बाते स्त्री-पुरुष दोनो के लिए हैं। इनके अलावा भी कुछ ऐसी बाते है जिन पर ध्यान देने की जरूरत है। स्त्री का स्वास्थ्य समाज के लिए पुरुष से भी अधिक आवश्यक है। सन्तति का भविष्य उसी पर निर्भर है। आज-कल स्त्रियो को प्रायः प्रदर, बदहजमी, सुस्ती तथा पेट के अनेक रोग हो जाते हैं। इसका कारण यही है कि उनको शुद्ध हवा बिल्कुल नहीं मिलती। आज-कल शहर की स्त्रियाँ उन व्यायामो से भी वंचित होती जा रही है जो पहले की औरतों की जिन्दगी मे एक जरूरी अंग थे, और अब भी गाँवो की स्त्रियों को सँभाले हुए है। वे दिन कैसे अच्छे थे, जब स्त्रियाँ ३—४ बजे सुबह उठकर जोड़ी की जोड़ी जाँते (चक्की) पर बैठ जातीं थी, पीसती जाती थी और गाती जाती थी। काम, विनोद और चिकित्सा तीनो साथ हो जाती थी। पेट के लिए चक्की से अच्छा कोई व्यायाम नही और फिर यह उत्पादक व्यायाम है।

स्त्री का स्वास्थ्य अधिक मूल्यवान है।

स्त्री के स्वास्थ्य के लिए दूसरी आवश्यक बात 'सयमपूर्ण' जीवन है। पहले की स्त्रियाँ जो परदे मे रहकर और पुराने विचारों की होकर भी अधिक बलवान और स्वस्थ होती थी उसका कारण यही था। वे

गृहस्थी के बीस कामों मे लगी रहती थीं और रात-दिन चुहलबाजी तथा वैषयिक भावनाओ के प्रति खिलवाड़ करने की आदत उनकी नहीं होती थी। बहुत थोड़ा समय वे पतियों के पास व्यतीत करती थीं। अक्सर यह ख्याल किया जाता है कि आजकल की स्त्रियों में पहले की स्त्रियों से अधिक वैषयिक संयम है। पर यह बात गलत है। संभव है, शारीरिक दृष्टि से इसमें कुछ सत्य हो पर आधुनिक स्त्री किस्से-कहानी, क्लब, मित्रमंडली, नाटक-सिनेमा, शृंगार-प्रसाधन में अपना बहुत-सा समय बिताती है जिसमें उस की वैषयिक प्रवृत्तियों का, मानसिक दृष्टि से, अपव्यय होता रहता है। इसीलिए हमारे यहाँ ये चीजें ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाली मानी गई हैं। इसका असर यह होता है कि मनमें अनेक प्रकार के संघर्ष चलते रहते है; इच्छाओं और उनकी निष्फलता के फल-स्वरूप निराशा, प्रति-हिंसा, खीझ इत्यादि का नाट्य चलता ही रहता है। इन बातों का असर स्वास्थ्य पर पड़ता है। भावनाओं के द्वंद्व में मन और शरीर जर्जर हो जाते हैं।

वैषयिक संयम

स्त्री के स्वास्थ्य के लिए तीसरी बात मन से उसकी पति में श्रद्धा है। यदि श्रद्धा दृढ़ हुई तो बड़ी-बड़ी मुसीबतें भी उसके स्वास्थ्य की जड़ों को हिला नहीं सकतीं। जब मन प्रेम और श्रद्धा से भरा पति के प्रति श्रद्धा होता है, जीवन में अद्भुत स्फूर्ति मालूम पड़ती है। रात-दिन काम करते हुए भी थकावट नहीं महसूस होती; दिल में उमंग और आशा भरी रहती है। नारी जब पति में, और माता होने पर बच्चों में, तन्मय हो जाती है तब उसका जीवन आन्तरिक आनन्द से, आत्मार्पण के प्रकाश से, खिल उठता है। दान ही नारी की मूल प्रकृति है। वह देती है; सदा देती है। इस देने में ही उसके जीवन की सार्थकता है। जिस नारी को आत्म-समर्पण का यह आनन्द नहीं मिला है वह कभी तृप्त नहीं हो सकती। मैं यहाँ यह कह दूँ कि इस आत्मार्पण में दासता का लेश भी नहीं है। दासता बाहरी दबाव

पर आश्रित है, उसमे हृदय की, अन्तःकरण की स्फूर्ति और सहयोग नहीं होता। आत्मार्पण स्वेच्छापूर्वक होता है, उसमे दुःख और व्यथा नहीं, आनन्द और तन्मयता होती है। जिसको चाहना, उसके लिए जीवन का सब कुछ दे देना,—यह उसका लक्षण है। दासता में आत्म-विस्मरण है, समर्पण में आत्मोपलब्धि है, दूसरे के साथ निजत्व का सामञ्जस्य है।

विश्वास और श्रद्धा जीवन के अमृत है। इनके बिना मनुष्य आनन्द और सुख की कामना करे तो उसका दंभ है। जीवन तर्क पर आश्रित नहीं है, उसका स्रोत इससे कहीं गहरा है। श्रद्धा अमृत है! यदि स्त्री मे श्रद्धा है तो उसके जीवन मे निराशा और थकावट नहीं होगी और अन्त तक वह यौवन की स्फूर्ति और तरलता का अनुभव करती रहेगी।

इसी श्रद्धा ने इतिहास के सघर्षों के लम्बे युग के बीच मनुष्य को जीवित रखा है; इसी ने हिंसक लड़ाइयों के बीच भी मानवता की धारा कायम रखी है। मनुष्य ने इसी के सहारे दुनिया के कठिन मार्गों को खोजा, दूर देशों का अन्वेषण किया, पहाड़ो और समुद्रों को पार किया। इसका बल आज भी उन जीर्ण-शीर्ण तीर्थयात्रियों के बीच देखा जा सकता है जिनकी एक एक हड्डी गिन ली जा सकती है, जिनकी कमर वृद्धावस्था ने तोड़ दी है पर जो भयानक पहाड़ी चढाइयों को पार करते इष्ट देवता के दर्शन की लालसा मे, चले ही जा रहे हैं। पूरा खाना नहीं है; कपड़े फटे है, शीत से अग काँप रहे हैं पर दिल मे जो लौ है वह घातक पगडडियों पर उन्हें आगे बढाती जा रही है।

जो बाते स्त्री के लिए हैं, वही पुरुष के लिए भी हैं। आज का पुरुष बड़ा बातूनी हो गया है। जब बाते करने लगता है जमीन-आसमान के कुलावे मिला देता है पर वैसे वह निकम्मा, वेजान, असहाय और पर-मुखापेक्षी है। अपनी शक्ति वह भूल गया है क्योकि वह अपने को भूल गया है। जरूरत इस बात की है कि वह अपने कर्त्तव्य का

बोझ उठा ले और आत्म-विश्वास के साथ जीवन-यात्रा आरंभ करे।

यदि वह संयम का मन्त्र सीख ले; प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे; खुली हवा और धूप का लाभ उठाये ; खूब चले-फिरे, व्यायाम करे ; शरीर और मस्तिष्क दोनों से काम ले और चिन्ता करने की आदत छोड़ दे; छाती फौलाद की करके दुनिया के प्रहारों के सामने खड़ा हो जाय और अपनी पत्नी, अपने बच्चों, अपने आत्मीयों के प्रति प्रेम और शुभ भावना से उसका हृदय भरा हो तो वृद्धावस्था उसकी कमर नहीं तोड़ सकती और जीवन की सन्ध्या भी उसके प्रभात की भाँति ही मोहक और सुखदायी होगी।

— ——

मित्र-मण्डलियों का मोहक जाल

[एक पत्र]

चि० सुरेश,

पिछले पत्र मे मै तुम्हें लिख चुका हूँ कि तुम किस तरह का आचरण करके अपना और अपनी स्त्री का स्वास्थ्य और जवानी क़ायम रख सकते हो। वे नियम सभी के लिए एक-जैसे लाभदायक है। यौवन के संध्याकाल मे यदि तुम उनका पालन करोगे तो सुखी होगे। जवानी के दिन यों बड़े रस-भरे होते हैं। आदमी अपने को एक नशे मे खोया खोया सा अनुभव करता है। उपदेश की बातें सुहाती नहीं; दिल उड़ा-उड़ा फिरता है। जीवन में एक खुमारी होती है। सूखे मे हरियाली दिखती है; मन उछलता-कूदता ताक-झाँक करता फिरता है। उसमे लचक होती है। इससे जुड़ा, उससे लगा। उखड़ा और फिर लगा। आज हँसी, कल रोना, फिर कुछ और। इस जवानी में एक प्रतीक्षा होती है। वह किसी को जोहती, इठलाती फिरती है। सपनों पर तैरती है; कल्पनाओं का संसार रचती है और उमंगो और आकाक्षाओं के नूपुरों को अपने प्रति पग में ध्वनित करती हुई दुनिया के मार्ग पर आँखें मूँदे चलती है।

जवानी के रसभरे दिन

ग्रामीण लोग कहा करते है—लुगाई (स्त्री) रखने से रहती है। जवानी का भी यही हाल है। उसकी रक्षा और संस्कार के लिए बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। जैसी अच्छी चीज़ है, वैसे ही उसके खतरे भी ज्यादा हैं। जब वह भरी-पूरी होती है दुनिया की नज़र उस पर पड़ती है; लोग सिहाते है; उसकी तरफ अनायास खिचते हैं। उसमें मेल-मिलाप की प्रवृत्ति होती है। यारबाशी सूझती है। मीठी बातें अच्छी लगती हैं।

जवानी के खतरे!

खाने-पीने खेलने और मौज-बहार के दिन होते हैं। मित्र इकट्ठे हो जाते हैं। फिर वही गप-शप चलता है। संध्याएँ मित्रों के अट्टहास से गूँजती है; प्रातःकाल आलस्य की अँगड़ाइयों के साथ खत्म हो जाता है।

जवानी जीवन का वसन्त है। इसमें दिल मिलने को उमड़ता ही है। इसमें तोड़ और प्रवाह होता है। मैं नहीं कहता कि तुम दिल को पस्त होने दो; चेहरे पर मुर्दनी छाने दो या सुस्त और काहिल बनकर बैठ जाओ। जवानी में जवानी होनी चाहिए; असमय बुजुर्गी या गंभीरता आई तो समझो कि शरीर में घुन लग रहा है और रोग ने अपनी जड़ जमाने का काम शुरू कर दिया है। ईश्वर करे जवानी की यह चंचलता, यह उफ़ान, ये उमंगें, ये हौसले और ये कल्पनाएँ बनी रहें। तुम खूब हँसो; उछलो, कूदो, दौड़ो, खाओ-पिओ। पर इतना तो तुमको समझना ही चाहिए कि अपने धन की सावधानी के साथ रक्षा करना भी तुम्हारा कर्त्तव्य है। और जवानी से बड़ा धन क्या होगा? ज़माना ऐसा है कि तुम्हारी असावधानी का फ़ायदा उठाने के लिए बहुत से लोग कमर कसे बैठे हैं—ऐसे लोग जो दोस्तों को उल्लू बनाना दोस्ती की कसौटी मानते हैं। इसलिए मैं कहूँगा कि जवानी के दिनों में और उसके बाद जब उसकी संध्या आती है तब तो और भी, विवाहित आदमी के लिए सब से बड़ा खतरा वे लोग हैं जिनको वह मित्र कहता है।

यह मैं कुछ अटपटी-सी बात कह रहा हूँ। पर यह वैसी अटपटी है नहीं। मैं जानता हूँ, मित्र ईश्वर का वरदान है। माता-पिता, भाई कोई

उसकी बराबरी में नहीं आता। पर ऐसे मित्र आज

डँसने वाले मित्र सिर्फ़ कल्पना और कहानी की सामग्री हैं। जिनको

लेकर तुम्हारी जवानी थिरकती है और जिनके साथ

तुम्हारी संध्याएँ बीतती हैं; जो घर पर वक्त-बेवक्त जमे रहते हैं और बात-बात में श्रीमती जी के प्रति जिनकी सहानुभूति का दरिया उमड़ता रहता है; जो उनकी स्वादिष्ट रसोई पर उनको बधाई देना नहीं चूकते

और जिनकी मीठी, भीतरी मार मारनेवाली बातों पर श्रीमती जी की छाती गर्व से फूल उठती है, इनसे सावधान रहो। ये कलयुगी मित्र हैं, साँप की तरह घात लगाये बैठे हैं! मौका मिला, बुरी तरह डसेंगे।

डँसनेवाले मित्र !

अपने झगड़े अपने ही तक रखो!

अगर तुम अपने विवाहित जीवन के रास्ते में काँटे नहीं बोना चाहते तो दो बातों का सदा ख्याल रखो। पहली तो यह कि चाहे तुम दोनों मे कभी झगड़ा भी हो जाय पर तीसरे किसी मित्र को अपने और अपनी पत्नी के बीच न आने दो। खुद समझ लो; समझा लो, आसानी से मामला सुलझ जायगा। सदा ख्याल रखो कि जीवन की लम्बी यात्रा तुम्हीं दोनों को एक-दूसरे की मदद से पूरी करनी है, कोई तीसरा उसे बँटा नहीं सकता। इसलिए अपनी निजी बातें या झगड़े दूसरों तक कभी न ले जाओ।

स्त्रियाँ अक्सर अपनी प्रशंसा की भूखी होती हैं। मीठी, चिकनी-चुपड़ी, अपनी तारीफ से भरी बातें सुनकर वे बहुत जल्द असलियत भूल जाती हैं। प्रशंसा उन्हें पागल कर देती है। ऐसी हालत में यार लोग उन्हें मूर्ख बना लेतेहैं। यह मैं अनुभव की बात कह रहा हूँ। ऐसी हालत मे जो होता है, उसकी एक तस्वीर मै यहाँ देना चाहता हूँ।

एक तस्वीर !

'क' मेरे एक परिचित थे। अच्छे-खासे जवान, रूपवान और स्वस्थ। कमाऊ, हँसमुख आदमी। स्वभाव के भले। स्त्री बड़ी अच्छी। परिश्रमी, सुशील और उदार। 'दोनों में प्रेम था। जिन्दगी सफल थी। हँसते-बोलते दिन बीत रहे थे। 'क' महाशय मित्रों में बड़े लोकप्रिय थे और ऐसे आदमी लोकप्रिय तो होते ही हैं। जिन्दगी आराम से, बिना झंझट के, बीत रही थी। धीरे-धीरे शाम को उनके घर दोस्तों का जमघट लगने लगा। श्रीमती जी जलपान तैयार करतीं। लोग खाते और दाद देते; भई, वाह तुमको स्त्री क्या लक्ष्मी मिली है। ऐसी चीज़ें बनाती है कि मुँह में पानी भर आता है। पान-पत्ते उड़ते; गप-शप होती। इनमें दो-तीन ज्यादा घनिष्ट मित्र थे, जिनके सामने श्रीमतीजी उठती-बैठतीं और बात-चीत भी कर लेती थीं। एक सज्जन, जिन्हें मैं 'म' कहता हूँ, से तो घनिष्टता इतनी बढ़ी कि वह बेधड़क घर में चले जाते थे। श्रीमती जी का उनसे कोई परदा न था। यह धीरे-धीरे घरेलू बातों में रस लेने लगे। पति देवता स्त्री को कोई उचित बात कहते, उसकी कोई ग़लती बताते तो यह झट पत्नी का पक्ष लेते। उसकी तारीफ करते। उनकी प्रशंसाओं ने धीरे-धीरे उस स्त्री को बिल्कुल शिथिल और कमजोर कर दिया। धीरे-धीरे बातें यहाँ तक बढ़ीं कि स्त्री अपने दिल की बातें, अपना रोना, अपनी व्यथा भी उनसे कहने लगी।

बाद में जो घटना घटी उसे न कहना ही अच्छा है। उसने पति पत्नी के दिल अलग कर दिये; दोनों के हृदय फट गये और उसने बने-बनाये घर को नष्ट कर दिया।

सतर्क रहो !

ऐसी घटनाएँ समाज में होती ही रहती हैं पर इस सीमा तक बात न जाय तो भी तुम्हें मित्रों से सावधान रहना चाहिए और जब वे तुमसे भी ज्यादा तुम्हारी पत्नी में दिलचस्पी लेने लगें तब तो उनसे खूब सतर्क रहने की जरूरत है। स्त्रियों को अच्छी तरह समाज की स्थिति का ज्ञान करा देना

चाहिए। संस्थाओं मे, स्कूल-कालेजों में सर्वत्र उनके लिए खतरे मौजूद हैं। आज 'बहिन' जी शब्द उपहास सशय, व्यग और घृणा की चीज बन गया है। इस शब्द के पीछे जो अर्थ और पवित्रता थी, उसे लोग भूल गये हैं।

मैं मानता हूँ, ऐसे भी मित्र होते है जो वफादारी के साथ मित्रता का निर्वाह करते हैं। पर यह विषय ऐसा है कि उनके लिए भी सावधानी और नियंत्रण की जरूरत है। शुरू-शुरू में मित्र के हृदय में वासना न हो पर वह बहुत धीरे-धीरे अपने पाँव फैलाती है—पता भी नहीं चलता कि आदमी किधर जा रहा है। वह समझता है, मेरे अन्दर कोई पाप नहीं है। पर एक वक्त ऐसा आता है कि वह अपने को वासनाओं के प्रवाह मे अत्यन्त दुर्बल अनुभव करता है। तब वह अपने को धोका देने, अपने मन को भुलावे मे डालने की कोशिश करता है। ज्यों-ज्यों आदमी उससे निकलने की कोशिश करता है वह और उलझता जाता है।

इसका यह मतलब नहीं कि स्त्री सिर्फ घर के अन्दर परदे में बन्द रहे, किसी आदमी के सामने निकले नहीं, बोले नहीं। इस तरह के बन्धन न आजकल सभव है, न उचित है। परदा स्त्री की रक्षा नहीं कर सकता। उलटे वह उसे हीन, शिथिल और अपने प्रति अविश्वस्त कर देता है। इसलिए परदा तो दूर होना ही चाहिए। पर उसके साथ स्त्री में मातृत्व के गौरव का भाव भरना चाहिए, उसके आचरण मे गम्भीरता, शील और मर्यादा होनी चाहिए। उसे पुरुषों के विनोद और खेल की चीज बनकर न रह जाना चाहिए, जैसा कि आज दिखाई देता है। केवल रमणीयता का भाव स्त्री मे जगाने का फल यह हुआ है कि नारी एक शृङ्गार और मनोरञ्जन की चीज रह गई है, उसकी जिन्दगी सिर्फ पुरुष के वासनारञ्जन मे और उसके आकर्षण के लिए अपने को सजाने मे बीतती है—यहाँ तक कि स्वतंत्रता का दावा करनेवाली स्त्रियाँ भी

नारी की आत्मशक्ति को जगाओ !

ज्यादातर अपने श्रृङ्गार में ही व्यस्त दिखाई पड़ती हैं। इसीलिए उनकी मनोवृत्तियाँ दुर्बल हो गई हैं और बहुत जल्द वे पुरुषों के षड्यंत्र का शिकार हो जाती हैं। इसलिए जरूरत इस बात की है कि स्त्रियाँ वीर और साहसी बनें; अपने सतीत्व और अपने आचरण के प्रति उनमें गौरव और महत्ता का भाव हो; वे समझें कि पुरुषों के मनोरञ्जन की सामग्री नहीं हैं; अनुभव करें कि वे पुरुष की माता हैं, सन्तति और समाज के निर्माण का बोझ उन पर है, इसलिए उनके आचरण में उचित मर्यादा, गम्भीरता और साहस होना चाहिए।

पर, एक दूसरी दृष्टि से भी इस सवाल पर विचार किया जा सकता है। तुम जानते हो, पुरुष काम-काजी प्राणी है। अक्सर दिन भर वह घर से बाहर रहता है। स्त्री घर में अपने काम-काज में लगी रहती है। सन्ध्या का समय ही ऐसा होता है जब दोनों एकत्र होते हैं। वह स्त्री जिसने पति के लिए दुनिया को छोड़ दिया है और जिसका संसार पति में ही केन्द्रित है, अवश्य चाहती है कि उसको भी पति के साथ कुछ समय बिताने का मौका मिले—ऐसा समय जब दोनों अपने दुःख-दर्द, अपनी बातें, अपने दिल के भाव, अपना हृदय एक दूसरे के सामने रख सकें; खोल सकें। गृहस्थ-जीवन में कितनी ही समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। वीर स्त्री पति के कल्याण के लिए उन्हें चुपचाप बर्दाश्त करती रहती है।

तुम्हारी संध्या किस के साथ बीतती है!

तुम्हारा कर्त्तव्य है कि जीवन की इस यात्रा में, तुम अपनी स्त्री को अकेला न छोड़ो। वह यह अनुभव न करे कि मैं अकेली हूँ, मेरा कोई देखने वाला नहीं है। इस तरह का सूनेपन का भाव, पति या पत्नी किसी में भरना, गृहस्थ जीवन के लिए घातक है। तुम खुद सोचो, तुम्हारा ज्यादा समय तो घर के बाहर ही बीतता है। क्या यह स्वाभाविक नहीं कि तुम्हारी स्त्री भी तुम्हारा कुछ समय लेने की आकांक्षा रखे? वह चाहती है कि कुछ समय तुम घर के लिए भी दो। अगर तुम सुन्दर, सुखी और शान्तिपूर्ण गृहस्थ-जीवन बिताना चाहते हो तो अपनी

स्त्री में दिलचस्पी लेना, बच्चों की प्रगति पर दृष्टि रखना तुम्हारा काम है। मत भूलो कि नारी सदा नारी रहती है। ब्याह के दिन जो आकांक्षाएँ लेकर वह आई थी वे अब भी उसमे है। सबसे पहली बात यह है कि वह तुममे केन्द्रीभूत होना चाहती है। वह चाहती है कि जीवन का कुछ भाग तो ऐसा हो जिसमे तुम केवल उसके हो, और जिसमें काम-काज, बाहरी पद-मर्यादा की कोई झंझट न हो, जिसमे निजत्व के भावों की अभिव्यक्ति हो, जिसमें दिल बोले, दिल सुने; जिसमे अनुभव हो कि सब जिम्मेदारियों के होते हुए भी तुम उसके हो, और वह तुम्हारी है।

वह कब बोले ?

इसलिए जब सन्ध्या समय उसको मौका मिला है और वह तुमसे निजी और घरेलू बाते कर रही है तब स्वभावतः किसी मित्र का उस निजत्व के वातावरण को भङ्ग करना उसे बुरा मालूम पड़ेगा। सम्भव है, वह कुछ न कहे, सम्भव है धीरे-धीरे वह भी इन बातों मे दिलचस्पी लेने लगे पर उसके अज्ञान मे भी उसके अन्दर अतृप्ति भरती जाती है, हृदय प्यासा रह जाता है।

जब वह चाहती है कि तुमसे अपने बच्चे की शिक्षा-दीक्षा की बात करे तब मि० वर्मा आ धमकते है, जब वह चाहती है कि अपने स्वास्थ्य की चर्चा करे तब तुम अखबार लेकर बैठ जाते हो; जब उसके मन मे अपनी बहिनों की याद आती है और वह मायके की बात करती है तब पडितजी अपनी रामकहानी सुनाने आ जाते हैं, जब वह तुम्हारे साथ कही जाने का प्रोग्राम बनाती है तब तुम मित्रों के साथ 'ब्रिज' खेलने बैठ जाते हो। उसके हृदय में सूनापन भरता जाता है और वह अपने को उस मित्रता और सखापन से वञ्चित पाती है जिसकी आशा लेकर एक दिन वह तुम्हारे घर आई थी।

भूल !

मै यह नहीं कहता कि तुम अपनी जिन्दगी को नीरस बना लो, मित्रों से सम्बन्ध तोड़ दो, सदा घर मे बैठ रहो। वह और बुरा होगा।

मतलब की बात इतनी ही है कि तुमको घर पर भी ध्यान देना चाहिए: अपने संग का लाभ पत्नी को भी देना चाहिए और अपने घर पर यार-दोस्तों का जमघट लगाने की आदत छोड़ देनी चाहिए। अभी तुम इस मार्ग में नये हो, तुम्हारी शादी हुई ही है। तुम्हारे मन में यौवन का उद्वेग है। पत्नी भी तुमको अच्छी मिली है। जवानी को उपदेशों से चिढ़ है; वह खतरनाक रास्तों पर और अँधेरी गलियों में चलना पसन्द करती है; राजमार्गों का प्रकाश उसे प्रिय नहीं। उसे उपदेशों से चिढ़ है: दुर्गम मार्गों के प्रति आकर्षण है। वह आस-पास के वातावरण में विद्रोह की तरंगें बहाती चलती है। वह अपनी ठोकरों से मार्ग रोकने-वाली शिलाओं को चूर कर देने का स्वप्न देखती है। पर सँभलने का समय यही है अन्यथा यौवन के संध्याकाल में, जब आदमी कुछ थका-थका-सा अनुभव करता है, जब आकांक्षाओं में ज़रा शिथिलता आने लगती है और जब प्यार की पिछली बातें धुँधली पड़ रही होती हैं तब तुम कठिनाई का अनुभव करोगे। आदमी की परीक्षा ऐसे ही समय होती है। अक्सर लोगों के दिल बैठ जाते हैं। यह वक्त पति-पत्नी दोनों के लिए कसौटी का होता है। उस समय मित्रों को अपने बीच न आने देना। बस।

मित्रों से सावधान रहो!

———

: २१ :

स्त्री-हृदय की दुर्बलताएँ

[एक पत्र]

प्रिय सुरेश,

तुम्हारा पत्र तो समय पर मिल गया था पर कई दिनों से मेरी तबीयत ठीक न थी, इसलिए जल्द उत्तर न भेज सका।

अपने पत्र में तुमने महेन्द्र के घरेलू झगड़ों का वर्णन किया है। तुम उसकी दशा से दुखी हो। उसकी स्त्री कामिनी कैसी भली थी! लोग उसे लक्ष्मी कहते थे। तुम दोनों के प्रेम और सुखी जीवन की चर्चा करते थकते न थे। तुमने तो अपना विवाह ही इन दोनों को देख कर किया था अन्यथा कालेज के दिनों में तुमने अविवाहित ही रहने का निश्चय किया था।

सचमुच महेन्द्र और कामिनी को देखकर बड़ा दुःख होता है। जो कामिनी महेन्द्र को खिलाये बिना जल तक न पीती थी और जो जानती भी न थी कि जवाब देना किसे कहते हैं वह बात-बात में तिनकती है, तीन का जवाब तेरह से देती है। और यह वही महेन्द्र है कि कामिनी के सिर में दर्द होते ही उसकी आँखों से टप-टप आँसू चू पड़ते थे। कैसी मधुर, शीलवती, सुन्दरी थी यह कामिनी। उसकी आँखों से रस टपकता था; बातों में फूल झड़ते थे और देह तथा प्राण में सुगन्ध बसी हुई थी। फूल-सी देह, नवनीत-सा मन और पूर्ण चन्द्रमा-सा खिला हुआ मुँह। और महेन्द्र? जैसे यौवन की शक्ति का पुंज हो। चमकता चेहरा, सदा चैतन्य से भरा, स्वास्थ्य की मूर्ति, हँस-मुख और तेजस्वी। आज इन दोनों को देखकर कलेजे पर साँप लोट जाता है। अभी कुल जमा पन्द्रह वर्ष तो शादी को हुए ही हैं। इस

वे रस से भरे महेन्द्र और कामिनी!

बीच कैसा परिवर्तन हो गया है। महेन्द्र चिड़चिड़ा, शक्की हो गया है: चेहरे का तेज झड़ गया है; आँखें निस्तेज हो गई हैं; सीना बैठ गया और कमर झुक गई है।

जब मैं पिछले साल उनके यहाँ ठहरा था तो दोनों ने अपने दुखड़े मुझे सुनाये थे। मेरा ख्याल यह है कि इस मामले में महेन्द्र ने अनजाने कुछ भूलें की हैं जिसका यह सब नतीजा है। कैसे

पुरुष की भूल !

आश्चर्य की बात है कि जहाँ आदमी अपने कार-बार की एक-एक बात को बारीकी से देखता है और उसे समझने की पूरी कोशिश करता है वहाँ स्त्री और उसके हृदय, उसके स्वभाव और प्रवृत्ति पर ध्यान देने की आवश्यकता अनुभव नहीं करता। पुरुष की सबसे बड़ी भूल यह है कि वह मान लेता है कि जो स्त्री, प्रेम से या संयोग-वश, उसके घर में आ गई है वह सदा उसीकी बनी रहेगी और उसे सदा अपनी बनाये रखने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी है। घर की मामूली चीजों को भी आदमी सदा झाड़ता-पोंछता रहता है; वे खराब न हो जायँ इसका सदा ध्यान रखता है पर स्त्री है कि चाहे उसके साथ जिस तरह बरत लो, स्त्री ही रहेगी। जिस तरह रख लो, रह जायगी; जो बनालो बन जायगी। वह कच्ची मिट्टी है; जिस रंग और ढाँचे में चाहो रंग और ढाल लो।

पतियों के पक्ष मे यह बहुत बड़ी भूल है। इस विषय में पुरुष की मूर्खता देखकर दया आती है क्योंकि बात ठीक इसकी उलटी है। ब्याही जाकर घर में आने पर स्त्री एक चिन्ता का विषय बन जाती है। आदमी नई जिम्मेदारी लेता है। ब्याह करके निश्चिन्त हो जाने वाला आदमी मूर्ख है।

विवाहित जीवन का प्रथम चरण

जवानी का नशा इस मूर्खता को पक्का कर देता है। दो दिल एक दूसरे के लिए तड़पते होते हैं; एक नयापन होता है; स्त्री के लिए नई जगह, नया घर, मालकिन होने का भाव और अब उसका अपना एक आदमी है, बिल्कुल अपना—यह अनुभूति, नई उमंगें, नया जीवन। इसी

प्रकार पुरुष कुतूहल से भरा, एक नये प्राणी को अपने प्रभुत्व और अधिकार में पाकर फूला, उसके रूप पर आसक्त। बस, एक नशा पैदा हो जाता है; आकर्षण का एक तार बँध जाता है। इसलिए विवाहित जीवन का प्रथम अध्याय तो अक्सर सुखपूर्वक समाप्त हो जाता है।

पर जब कुछ दिन बीत जाते है; बातें पुरानी पड़ने लगती हैं। पुरुष देखता है कि आनन्द के उपभोग के साथ एक ज़िम्मेदारी भी उसके गले पड़ गई है; स्त्री को कमाकर खिलाना भी

बादलों का घिरना! है और कमाने के लिए दुनिया मे भटकना, और दर-दर अपमानित होना भी है। और आज की ज़िन्दगी मे कमाना कुछ वैसा सरल नही रह गया है। यहाँ कलेजा छलनी हो जाता है, दिलों को कदम-कदम पर ऐसी ठोकर लगती है कि होश ठिकाने आ जाते हैं। इस बीच बच्चे आते हैं; शुरू में आनन्द-मंगल होता है पर फिर उनकी झंझटें बढती जाती है। अगर घर बड़ा हुआ तो एक न एक बात रोज पैदा हुआ करती है। झझटों से भागने वाले आदमी के लिए यह अनुभव कुछ अजीब होता है। जो बहू सास के लिए चन्द्रमुखी थी वह कलूटी हो जाती है और जो सास बहू के लिए माँ से अधिक थी वह 'आफत की पुड़िया' बन जाती है। जो दिन हँसी के प्रकाश से चमकते थे उनपर दुःख के बादलों की अँधियारी छा जाती है। पति देखता है कि जो स्त्री सदा हँसते हुए उसका स्वागत करती थी वह ठंडी पड़ती जा रही है। प्रेम की गरमी कम हो रही है। घर के किसी एकान्त कोने में कभी-कभी गृहलक्ष्मी की आँखों से बूँदा-बाँदी हो जाती है। फिर खुली वर्षा भी होने लगती है। अनुभवहीन और चातक-सा प्यासा, जीविका पर से थक कर लौटनेवाला पति हक्का-बक्का होकर यह सब देखता है और समझ नहीं पाता कि उसे क्या करना चाहिए।

बच्चे होते है—बच्चे जो वर्षों तक अपनी हर एक आवश्यकता के लिए माँ पर निर्भर करते हैं। वैसे भी बच्चा माँ के कलेजे का टुकड़ा है। वह उसके खून से बना है। उसको देखकर माता का हृदय नाच उठता

है। अगर बच्चा सुन्दर, स्वस्थ, हँसमुख हुआ तो भरी-पूरी गोदवाली बहू का मन भी बढ़ जाता है। स्वभावतः माता का अधिक समय बच्चे या बच्चों के साथ बीतता है। रात-दिन उसके प्राण अपने बच्चे में टँगे रहते हैं।

स्त्री ठंडी हो रही है?

इसलिए भी स्त्री पति के प्रति अब उतनी उत्सुक नहीं रह जाती; न उतना ध्यान या समय ही दे पाती है। शरीर में भी थोड़ी थकान बढ़ जाती है। मतलब शारीरिक दृष्टि से भी, और परिस्थिति तथा आवश्यकता-वश भी, पत्नी अब पति की ओर उतना ध्यान नहीं देती। पहले उसके कर्त्तव्य और मनोरंजन का केन्द्र केवल पति होता है पर बाद में पति और बच्चे दोनों में वह केन्द्रित होती है। बल्कि यों भी कह सकते हैं कि अक्सर बच्चों में वह ज्यादा केन्द्रित होती है; उसे अपनी दिलचस्पी के लिए एक नया क्षेत्र और नया साधन मिल जाता है। पहले जहाँ वह केवल रमणी थी वहाँ अब वह माता भी हो जाती है। माता होने पर यों भी बच्चे के चुम्बन, आलिंगन इत्यादि से उसकी कामनाओं की आंशिक तृप्ति हो जाती है। बच्चे होने के क्रम में स्त्री की जो शारीरिक क्षति होती है उससे तथा मातृत्व की ज़िम्मेदारी के कारण भी पति के प्रति उसका शारीरिक आकर्षण कुछ कम हो जाता है। विवाह के बाद वह केवल पति पर निर्भर करती है; उसी में निमज्जित होती है। बाद में घर नया नहीं रह जाता; जवानी का तूफ़ान कुछ कम हो जाता है। इसलिए अक्सर पति एक साधारण प्राणी रह जाता है; उसका नयापन नष्ट हो जाता है। वैसे भी आरंभ में पति के हृदय पर अपनी मोहनी डालने के लिए स्त्री हाव-भाव, कटाक्ष, वाणी सब से काम लेती है। बाद में जब जीवन में सामान्यता आ जाती है तो फिर ये बातें शायद जरूरी नहीं समझी जातीं, न अन्दर से इनके लिए उत्साह ही बाकी रहता है।

इधर स्त्री जब इस तरह ठंडी हो रही होती है तब पति भी अपने जीवन-संघर्ष में अधिकाधिक फँसते जाने के कारण स्त्री के प्रति अपने

प्रेम-प्रकाशन में गंभीर होता जाता है। एक ओर दुनिया की कठिनाइयाँ, दूसरी तरफ परिस्थिति को ठीक समझ न सकने के कारण स्त्री की तरफ से भी निराशा—बस आदमी की खीझ और फलतः उसकी नीरसता बढ़ने लगती है। दिक्कत यहीं से शुरू होती है।

पुरुषों की उदासीनता

गलती तो दोनों से ही होती है। पुरुष तो स्त्री से यह आशा करता है कि वह सदा छैल-छबीली बनी रहे; वही—जिसे प्रथम सोहाग रात को उसने देखा था, वह मुग्धा, प्रणय की आकांक्षा पुरुष की आकांक्षा से पूरित, भावोद्वेग से भरी पर अबोली, पति में ही सिमटकर रह जाने को उत्सुक और भगवान् के प्रति कृतज्ञ, कि उसने ऐसा पति देकर उसका जीवन सफल कर दिया! पति चाहता है कि वह सदा स्त्री के जीवन का प्रधान नायक बना रहे, स्त्री सदा उसका ध्यान रखे; उसके प्रति अपने प्रेम का विज्ञापन करती रहे। थकावट के समय उसके पाँव दबा दे; शिथिलता और दुःख की घड़ियों में हँस कर दो, मीठे बोल बोलकर, सहानुभूति प्रकट करके उसको हल्का कर दे, बीमारी मे उसको यों सँभाल ले जैसे माता बच्चे को सँभाल लेती है। यही नही, बार-बार उसके स्वास्थ्य के प्रति अपनी चिन्ता प्रकट करती रहे; न केवल प्रेम करे बल्कि उसे अपने प्रेम का निरन्तर विश्वास दिलाती रहे। वह सुनना चाहता है कि 'तुमको पाकर मेरा जीवन धन्य हो गया है और मै भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि वह जन्म-जन्म में मुझे तुम्हारे चरणों की सेवा का अवसर दे।' इन बातों से उसके अहंकार की तृप्ति होती रहती है।

वस्तुतः यह पुरुष की मूर्खता है। सच्ची बात यह है कि गृहस्थ-जीवन में पुरुष मूर्ख ही होता है और स्त्री दो-चार बातों से ही उसे अँगुली पर नचा सकती है। यह मूर्खता नही तो और क्या है कि यह पुरुष औरत को तो उस नववधूटी के रूप में देखना चाहता है पर खुद अपने यौवन,

पुरुष की मूर्खता

रूप और स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह होता है। हर पुरुष चाहता है कि उसकी स्त्री साफ़-सुथरी रहे, सुन्दर साड़ी पहने, बाल सँवारे, खूबसूरत और मनमोहनी बनी रहे जिससे उसके प्रति आकर्षण बना रहे पर खुद अपने को स्त्री के आकर्षण के अनुरूप बनाये रखने का यत्न नहीं करता। जैसे नारी किसी भी अवस्था में पुरुष की अनुगामिनी बनी रहेगी।

भूल यहीं होती है। जैसे पुरुष सुन्दरी, स्वस्थ, मृदुभाषिणी और मोहनी डालने वाली स्त्री की तरफ़ लुब्ध दृष्टि से, ललचाई आँखों से देखता है, उसकी तरफ़ खिंचता है वैसे ही स्त्री भी सुन्दर, स्वस्थ, वीर, पुरुषार्थी और सबसे बढ़ कर उसको बढ़ावा देने वाले पुरुष की तरफ़ आकर्षित होती है। स्त्री की बहुत बड़ी कमजोरी यही है कि चाटुकारिता के आगे बहुत जल्द वह शिथिल हो जाती है। होते तो सभी हैं पर स्त्री अपनी प्रशंसा से बड़ी प्रभावित होती है। स्त्री प्रेम से भरे सम्बोधन—मेरी रानी, प्राणाधिके इत्यादि सुनने को सदा प्यासी रहती है। मीठी बातों से वह जल्द पिघल जाती है।

चाटुकारिता का नशा

यौवन की सन्ध्या इसलिए बड़े खतरे से भरी होती है। कुछ शारीरिक थकावट, कुछ संघर्ष, कुछ मानसिक शिथिलता, कुछ पुरानेपन की अनुभूति, बच्चे, घर के मसले, पति-पत्नी के हृदय की गरमी को कम करते रहते हैं। अतृप्ति की इन घड़ियों में स्त्री को अपने पुराने दिन याद आते हैं। वे सहेलियाँ और उनकी चुहल, वे बहिनें और उनका प्यार, वह लड़कपन, वे जवानी के आरम्भ के दिन और उनकी मस्ती, वह कंचन तन और उत्साह से पूर्ण मन। विवाहित जीवन के प्रारम्भिक दिवस, जब दिन अपना घर सँभालने में बीत जाते थे और रातें एक दूसरे के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने में, अपने प्रेम के प्रदर्शन में बीत जाती थीं, जब 'वह' केवल उसी को पाकर तृप्त थे और जब कामों के बोझ का बहाना उनके मिलन में बाधक न था। इन दिनों में तिल तिल

वे जवानी के फूल से सुगंधित दिन !